महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय

(संसद द्वारा पारित अधिनियम 1997, क्रमांक 3 के अंतर्गत स्थापित केंद्रीय विश्वविद्यालय)

Mahatma Gandhi Antarrashtriya Hindi Vishwavidyalaya

(A Center University Established by Parliament by Act No. 3 of 1997)

ज्ञान शांति मैत्री

एम.ए. समाजशास्त्र

पाठ्यक्रम कोड : एम.ए.एस. - 015

द्वितीय सेमेस्टर

पाठ्यचर्या कोड : 08

पाठ्यचर्या का शीर्षक : समाज मनोविज्ञान

दूर शिक्षा निदेशालय

महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय

पोस्ट- हिंदी विश्वविद्यालय, गांधी हिल्स, वर्धा - 442001 (महाराष्ट्र)

मार्गदर्शन समिति

प्रो. गिरीश्वर मिश्र
कुलपति
म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

प्रो. आनंद वर्धन शर्मा
प्रतिकुलपति
म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

प्रो. कृष्ण कुमार सिंह
प्रभारी निदेशक (दूर शिक्षा निदेशालय)
म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

पाठ्यचर्या निर्माण समिति

प्रो. आनंद वर्धन शर्मा
प्रतिकुलपति
म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

प्रो. एस.एन. चौधरी
प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग
बरकतउल्लाह विश्वविद्यालय, भोपाल

प्रो. शैलजा दुबे
प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग उच्च
शिक्षा उत्कृष्टता संस्थान, भोपाल

श्री अभिषेक त्रिपाठी
असिस्टेंट प्रोफेसर एवं पाठ्यक्रम संयोजक
दूर शिक्षा निदेशालय, म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

संपादक मंडल

प्रो. एस.एन. चौधरी
प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग
बरकतउल्लाह विश्वविद्यालय, भोपाल

प्रो. मनोज कुमार
निदेशक , म.गां.फ्यू. गु. समाज कार्य
अध्ययन केंद्र, म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

डॉ. शंभु जोशी
असिस्टेंट प्रोफेसर
दूर शिक्षा निदेशालय, म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

डॉ. मिथिलेश कुमार
असिस्टेंट प्रोफेसर
म.गां.फ्यू. गु. समाज कार्य अध्ययन केंद्र,
म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

श्री अभिषेक त्रिपाठी
असिस्टेंट प्रोफेसर एवं पाठ्यक्रम संयोजक
दूर शिक्षा निदेशालय, म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

इकाई लेखन

खंड -1
इकाई 1 – श्री महेश कुमार तिवारी
इकाई 2 - श्री महेश कुमार तिवारी
इकाई 3 - श्री महेश कुमार तिवारी
इकाई 4 - श्री महेश कुमार तिवारी

खंड - 2
इकाई 1- डॉ. अमित त्रिपाठी
इकाई 2- डॉ. अमित त्रिपाठी
इकाई 3- डॉ. अमित त्रिपाठी
इकाई 4- डॉ. अमित त्रिपाठी

खंड - 3
इकाई 1- श्री. कौशल किशोर
इकाई 2 - श्री. कौशल किशोर
इकाई 3 - श्री. कौशल किशोर

खंड - 4
इकाई 1- श्री महेश कुमार तिवारी
इकाई 2 - श्री महेश कुमार तिवारी
इकाई 3 - श्री महेश कुमार तिवारी

कार्यालयीन एवं संपादकीय सहयोग

श्री विनोद वैद्य
सहायक कुलसचिव, दू.शि. निदेशालय

श्री अरविन्द कुमार
टेक्निकल असिस्टेंट, दू.शि. निदेशालय

सुश्री राधा ठाकरे
टंकण/फार्मेटिंग/इंडिटींग
दू.शि. निदेशालय

श्री सचिन सोनी
सॉफ्टवेयर स्पेशलिस्ट, दू.शि. निदेशालय

श्री गुड्डू यादव
कंप्यूटर ऑपरेटर, दू.शि. निदेशालय

विषय कोड : एमएएस- 08

विषय का नाम : समाज मनोविज्ञान

क्रेडिट्स : 04 क्रेडिट

शिक्षण उद्देश्य :

इस पाठ्यक्रम के अध्ययन के उपरांत विद्यार्थी –

- समाज मनोविज्ञान के स्वरूप एवं उपागम से छात्र परिचित होंगे।
- संज्ञान एवं संज्ञानात्मक अभिप्रेरणा को समझने में छात्र सक्षम होंगे।
- समूह निर्माण प्रक्रिया एवं नेतृत्व से छात्र परिचित होंगे।
- मनोवृत्ति निर्माण एवं परिवर्तन को छात्र समझ सकेंगे।

मूल्यांकन के मानदंड :

1. सत्रांत परीक्षा : 70 %
2. सतत आंतरिक मूल्यांकन : 30 %

समाज मनोविज्ञान

खण्ड (1) सामाजिक मनोविज्ञान का परिचय

इकाई : 1 सामाजिक मनोविज्ञान की परिभाषा एवं प्रकृति

इकाई : 2 समाज मनोविज्ञान की विधियां

इकाई : 3 समकालीन सामाजिक परिवर्तन एवं वर्तमान सामाजिक समस्याएं

इकाई : 4 पर्यावरण, मनोविज्ञान अंतर-समूह द्वंद्व एवं स्वास्थ्य

खण्ड (2) सामाजिक संज्ञान

इकाई : 1 सामाजिक संज्ञान

इकाई : 2 आत्म प्रत्यक्षीकरण

इकाई : 3 व्यक्तिक प्रत्यक्षीकरण

इकाई : 4 गुणारोपन

खण्ड (3) मनोवृत्ति

इकाई : 1 मनोवृत्ति : परिभाषा, अवधारणा एवं विशेषताएँ

इकाई : 2 मनोवृत्ति निर्धारक तत्त्व एवं मानव मूल्य

इकाई : 3 मनोवृत्ति परिवर्तन एवं मनोवृत्ति के सिद्धांत

खण्ड (4) समूह एवं नेतृत्त्व

इकाई : 1 समूह : परिभाषा, प्रकृति एवं कार्य

इकाई : 2 समूह प्रभाव एवं समूह मनोबल

इकाई : 3 नेतृत्त्व : अर्थ, प्रकृति, विशेषताएँ एवं कार्य

इकाई : 4 नेतृत्त्व के प्रकार एवं सिद्धांत

अनुक्रम

क्र.सं.	खंड का नाम	पृष्ठ संख्या
1	**खंड - 1 – सामाजिक मनोविज्ञान का परिचय**	
	इकाई –1 सामाजिक मनोविज्ञान की परिभाषा एवं प्रकृति	4-15
	इकाई –2 समाज मनोविज्ञान की विधियां	16-32
	इकाई –3 समकालीन सामाजिक परिवर्तन एवं वर्तमान सामाजिक समस्याएं	33-50
	इकाई –4 पर्यावरण, मनोविज्ञान अंतर-समूह द्वंद्व एवं स्वास्थ्य	51-66
2	**खंड - 2 सामाजिक संज्ञान**	
	इकाई -1 सामाजिक संज्ञान	67-79
	इकाई -2 आत्म प्रत्यक्षीकरण	80-92
	इकाई -3 व्यक्तिक प्रत्यक्षीकरण	93-103
	इकाई – 4 गुणारोपण	104-117
3	**खंड - 3 – मनोवृत्ति**	
	इकाई -1 मनोवृत्ति: परिभाषा, अवधारणा एवं विशेषताएँ	118-129
	इकाई -2 मनोवृत्ति निर्धारक तत्व एवं मानव मूल्य	130-140
	इकाई –3 मनोवृत्ति परिवर्तन एवं मनोवृत्ति के सिद्धांत	141-155
4	**खंड - 4 – समूह एवं नेतृत्व**	
	इकाई –1 समूह : परिभाषा, प्रकृति एवं कार्य	156-168
	इकाई –2 समूह प्रभाव एवं समूह मनोबल	169-187
	इकाई –3 नेतृत्व : अर्थ, प्रकृति, विशेषताएँ एवं कार्य	188-199
	इकाई –4 नेतृत्व के प्रकार एवं सिद्धांत	200-211

खंड-1 सामाजिक मनोविज्ञान का परिचय

इकाई 1: सामाजिक मनोविज्ञान की परिभाषा एवं प्रकृति

इकाई की रुपरेखा

1.1.0. उद्देश्य
1.1.1. प्रस्तावना
1.1.2. समाज मनोविज्ञान का संक्षिप्त इतिहास
1.1.3. समाज मनोविज्ञान की परिभाषा
1.1.4. समाज मनोविज्ञान का महत्त्व
1.1.5. समाज मनोविज्ञान की प्रकृति
1.1.6. समाज मनोविज्ञान के कार्य क्षेत्र
1.1.7. समाज मनोविज्ञान का समाजशास्त्र, मानवशास्त्र से सम्बन्ध
1.1.8. सारांश
1.1.9. स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न
1.1.10. शब्दावली
1.1.11. संदर्भ ग्रंथ सूची

1.1.0. उद्देश्य कथन

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरांत आप :

- समाज मनोविज्ञान के ऐतिहासिक दृष्टिकोण से परिचित हो जायेंगे।
- सामाजिक मनोविज्ञान की परिभाषित, महत्त्व, तथा समाज मनोविज्ञान की प्रकृति को समझ सकेंगे।
- समाजिक व्यवहार के अन्तरगत, मनोवृत्ति, पूर्वाग्रह, सामाजिक प्रत्यक्षण, सामाजिक प्रभाव तथा नेतृत्त्व आदि को समझ सकेंगे।
- सामाजिक समस्याओं की समझ में बिस्तार होगा तथा समाज में स्वास्थ्य भूमिका की ओर उन्मुखता बढ़ेगी।

1.1.1. प्रस्तावना

मानव व्यवहार संसार में सबसे जटिल प्रक्रिया है, समाज मनोविज्ञान में इसी जटिल प्रक्रिया का वैज्ञानिक अध्ययन समग्रता में किया जाता है। सामाजिक मनोविज्ञान, मनोविज्ञान कि एक शाखा है किसके नाम से ही पता चलता है कि यह जीवन के विभिन्न पक्षों से संबंधित है। लोग एक दूसरे के साथ परस्पर क्रिया कैसे करते हैं? दूसरों के बारे में हम कैसे सोचते हैं? हमारा व्यवहार दूसरों को कैसे प्रभावित

करता है तथा हम दूसरों के व्यवहार से किस हद तक प्रभावित होते हैं आदि बिंदुओं पर सामाजिक मनोविज्ञान गहन दृष्टि रखता। समाज की संरचना प्रारंभ से ही काफी जटिल है। हमारी विभिन्न क्रियाएं एकांकी न होकर परस्पर निर्भर होती हैं। सामाजिक व्यवहार भी विज्ञान से अछूता नहीं है समय के साथ तकनीकी विकास ने अनेक नई सामाजिक समस्याओं को जन्म दिया है। नित नई-नई उत्पन्न हो रही समस्याओं के समाधान करने के लिए समाज मनोविज्ञान का ज्ञान होना वर्तमान समाज के लिए अत्यंत आवश्यक हो गया है। आज मनोविज्ञान में हम विभिन्न शोध प्रवृतियों के माध्यम से समाज की विभिन्न समस्याओं के बारे में अध्ययन करते हैं तथा उनके स्थाई उपचार का मार्ग प्रशस्त करते हैं।

1.1.2. समाज मनोविज्ञान का संक्षिप्त इतिहास

दार्शनिक विचारधारा समाज (Philosophical viewpoints) :- मनोविज्ञान के इतिहास में कुछ पुराने दार्शनिकों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। इनमें से प्लेटो(Plato) तथा अरस्तु(Aristotle) का नाम काफी मशहूर है। इन लोगों ने सामाजिक व्यवहार के अध्ययन में काफी रुचि दिखालाई थी। बाद में कुछ हाल के दार्शनिकों जैसे हॉब्स(Hobbes, 1651), लॉक(locke, 1690), ह्यूम(Hume, 1739) तथा कामटे(Comte) जिन्हें समाजशास्त्र का जनक(Father of Sociology) भी कहा जाता है, की विचारधारा से समाज मनोविज्ञान की उत्पत्ति में काफी सहायता मिली। फ्रेंच क्रांति(French revolution) के बाद इन्हें ऐसा ज्ञात हुआ कि समाज में व्यक्तियों का व्यवहार किसी नियम द्वारा निर्देशित होना चाहिए। ऐसा होने से विभिन्न सामाजिक परिस्थितियों में व्यक्तियों के व्यवहारों का पूर्वकथन(Prediction) करना आसान हो सकता है। 18 वीं शताब्दी तथा 19 वीं शताब्दी में सामाजिक व्यवहार से संबंधित दार्शनिक विचारों की महत्ता धीरे-धीरे बढ़ने लगी। इस समय के कुछ प्रमुख दार्शनिक जैसे जेरेमी बेंथम(Jeremy Bentham), जॉन स्टुअर्ट मिल(John Stuart Mill), हरबर्ट स्पेंसर(Herbert Spencer) ने इस क्षेत्र में संयुक्त रूप से कुछ महत्वपूर्ण योगदान किए। आलपोर्ट(Allport, 1968) ने समाज मनोविज्ञान के इतिहास का पुनरीक्षण (Review) करते हुए कहा कि इस संयुक्त योगदान के फलस्वरुप सामाजिक व्यवहार का साधारण एवं सार्वभौमिकता सिद्धांतों(Simple and Sovereign theories of social behavior) का जन्म हुआ। इसमें कई अलग-अलग सिद्धांत थे जिनके सहारे एक विशेष प्रकार की सामाजिक व्यवहार की व्याख्या होती थी।

आजकल सामाजिक व्यवहार के संबंध में प्रतिपादित इन ऐकिक दार्शनिक सिद्धांतों की मान्यता करीब-करीब समाप्त हो गई है। अब यह माना जाने लगा कि मानव अंतःक्रियाएं(Human interaction) एक जटिल प्रक्रिया है, जिनकी व्याख्या साधारण एवं ऐकिक सिद्धांतों द्वारा नहीं की जा सकती है। फिर भी इतना तो स्पष्ट है कि इन ऐकिक दार्शनिक सिद्धांतों के प्रतिपादन के फलस्वरुप समाज मनोविज्ञान(Social psychology) को दो कारणों से एक स्वतंत्र एवं वैज्ञानिक शाखा के रूप में उभरने में काफी मदद मिली। पहला कारण तो यह था कि इन सिद्धांतों के प्रतिपादन से यह स्पष्ट हो गया कि सामाजिक अंतः क्रिया की व्याख्या साधारण बोलचाल की भाषा में न होकर एक ठोस एवं यथार्थ(Precise) तथ्य के रूप में हो सकता है। दूसरा कारण यह था कि सामाजिक अंतर्क्रिया अन्य

स्वाभाविक घटनाओं(Natural events) के समान पूर्वानुमेय(Predictable) तथा विधिसंगत(Lawful) होती है।

जैसे-जैसे सामाजिक अंतः क्रिया उपर्युक्त दोनों कारणों को बल मिलता गया समाज मनोविज्ञान दार्शनिक चिंतन से दूर हटकर मनोविज्ञान की एक वैज्ञानिक शाखा के रूप में उभरता गया और 19वीं शताब्दी के अंतिम दशक में यह करीब-करीब दार्शनिक चिंतन से पूर्णरूपेण स्वतंत्र होकर मनोविज्ञान की एक शाखा के रूप में लोगों के सामने आ गया। इस नई शाखा का रूप प्रयोगात्मक अधिक था तथा दार्शनिक बहुत ही कम। ट्रिप्लेट(Triplet) ने 1897 में समाज मनोविज्ञान के क्षेत्र मैं सबसे पहला प्रयोगशाला प्रयोग(Laboratory experiment) किया इस प्रयोग में उन्होंने प्राकल्पना(Hypothesis) की जांच की कि जब व्यक्ति एक दूसरे के साथ प्रतियोगिता की भावना से किसी कार्य को करता है तो उसका निष्पादन(Performance) उस परिस्थिति से अच्छा होता है जब वह उसी कार्य को अकेले बिना किसी प्रतियोगिता की भावना के करता है।

समाज मनोविज्ञान का प्रारंभिक काल :- समाज मनोविज्ञान का प्रारंभिक काल 1908-39 माना जाता है. समाज मनोविज्ञान के क्षेत्र में सबसे पहला प्रयोग ट्रिपलेट(Triplet) द्वारा 1897 में किया गया, फिर भी आधुनिक समाज मनोविज्ञान के वैज्ञानिक अध्ययन की शुरुआत 1908 से मानी जाती है जब मैकडूगल(McDougall) ने अपनी पुस्तक के माध्यम से यह बताया था की प्राणी का सामाजिक व्यवहार जन्मजात प्रवृत्तियों द्वारा निर्धारित होता है। 1930-40 वाले दशक में समाज मनोविज्ञान के क्षेत्र महत्त्वपूर्ण कार्य समाज मनोवैज्ञानिकों द्वारा किये गए जिससे समाज मनोविज्ञान के कार्यक्षेत्र में काफी वृद्धि हुयी.इसी समय लिकर्ट (Likert, 1932) ने मनोवृत्ति मापनी विधि का निर्माण किया. मोरेनो (Moreno, 1934) ने अंतर्वैयक्तिक पसंदों (interpersonal Preferences) का अध्ययन करने के लिए समाजमिति (Sociometry) का प्रतिपादन किया।

1940 से 1970 के बीच का समाज मनोविज्ञान :- तत्कालिन परिस्थितियों में द्वितीय विश्वयुद्ध का बहुत ही व्यापक प्रभाव पड़ा. कोई भी विषय इस प्रभाव से अछूते नहीं थे वैसे ही समाज मनोविज्ञान में भी इसका काफी प्रभाव पड़ा। प्रभाव का ही परिणाम था की मनोवैज्ञानिकों के अध्ययन के मुख्य विषय प्रचार (propaganda), पूर्वाग्रह (prejudice), अनुनय (persuation), मनोवृत्ति मापन, अंतर्राष्ट्रीय सम्बन्ध (international relation) तथा जनसम्पर्क (mass communication) का वैज्ञानिक अध्ययन करना प्रारंभ कर दिए। 1941 में विलियम वाइट (William White, 1941) ने बच्चों के समूह का अध्ययन करके उनकी सामाजिक अंतःक्रिया के पैटर्न के बारे में बतलाया। कार्ल होवलैंड एवं उनके सहयोगियों(Carl Hovland et.al.) ने इसी काल में अनेकों ऐसे अध्ययन किये जिनमे सामाजिक मनोवृत्ति पर विश्वासोत्पादक या प्रभाक संचारण (persuasive communication) के पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन किया गया। इसी दशक में सबसे महत्त्वपूर्ण अध्ययन फेस्तिंगेर(Leon Festinger) ने 1957 में किया। अपने अध्ययन के आधार पर इन्होने संज्ञानात्मक विसंवादिता का सिद्धांत (theory of cognitive dissonance) जिसके अनुसार जब व्यक्ति का व्यवहार तथा उसकी वर्तमान मनोवृत्ति एक

दुसरे के असंगत होते हैं तो व्यक्ति में एकक प्रकार की अप्रिय एवं तनाव की स्थिति उत्पन्न होती है. इसे कम करने के वह अपनी मनोवृत्ति में परिवर्तन कर व्यवहार को अनुकूल बना लेता है।

1.1.3. समाज मनोविज्ञान की परिभाषा :- "समाज मनोविज्ञान एक ऐसा वैज्ञानिक क्षेत्र है जो सामाजिक परिस्थित में व्यक्ति के व्यवहार एवं चिंतन के स्वरुप एवं कारणों को समझने की कोशिश करता है."। Baron & Byrne and Branscombe, 2006 social psychology 1987 p-14

"व्यक्ति दूसरों के बारे किस तरह सोचता है, दूसरे को कैसे प्रभावित करता है तथा एक-दूसरे को किस तरह सम्बंधित करता है, का वैज्ञानिक अध्ययन ही समाज मनोविज्ञान है"। Myers, Social Psychology 1988 P.3 समाज मनोवैज्ञानिकों ने समाज मनोविज्ञान को अपने दृष्टिकोण के अनुसार परिभाषित किया है। एक समानता सभी में पायी जाती है। करीब-करीब सभी लोगों ने समाज मनोविज्ञान के विषयवस्तु के रूप में व्यक्ति द्वारा सामाजिक परिस्थितियों में किये गए व्यवहार को स्वीकृत किया है. न्यूकोंब(Newcomb 1962) ने ऐसे व्यवहारों को अंतःक्रिया की संज्ञा दी है।

इस प्रकार उपरोक्त परिरभाषाओं एवं समानता को दृष्टिगत रखते हुए मनोविज्ञान की सामान्य परिभाषा निम्नवत है।

"समाज मनोविज्ञान व्यक्ति के व्यवहारों तथा अनुभूतियों का सामाजिक परिस्थितियों में अध्ययन करने का विज्ञान है"। इस सामान्य परभाषा का विश्लेषण करने पर निम्न तथ्य प्राप्त होते हैं-

1. समाज मनोविज्ञान एक विज्ञान(Science) है तथा मनोविज्ञान की एक शाखा है.
2. समाज मनोविज्ञान में व्यक्ति व्यवहारों एवं अनुभूतियों को अध्ययन किया जाता है।
3. एक समाज मनोवैज्ञानिक इन व्यवहारों एवं अनुभूतियों का अध्ययन सामाजिक परिस्थितियों में करता है।

1.1.4. समाज मनोविज्ञान का महत्त्व

सामाजिक मनोविज्ञान का महत्व वैश्वीकरण के इस दौर में निरन्तर बढ़ता ही जा रहा है। उदारीकरण, निजीकरण तथा वैश्वीकरण ने जो सामाजिक आर्थिक प्रभाव उत्पन्न किए हैं, उनके परिप्रेक्ष्य में देखा जाये तो हम यह पाते हैं कि सामाजिक मनोविज्ञान उस समस्त परिस्थितियों, घटनाओं एवं समस्याओं का अध्ययन करता है, जो इनके कारण उत्पन्न हुई है।

सामाजिक मनोविज्ञान व्यक्ति के सम्बन्ध में वास्तविक और वैज्ञानिक ज्ञान करवाता है। सामाजिक मनोविज्ञान के द्वारा ही संस्कृति और व्यक्तित्व में सम्बन्ध, सामाजीकरण, सीखने की प्रक्रिया, सामाजिक व्यवहार, वैयक्तिक विभिन्नताएँ, उद्वेगात्मक व्यवहार, स्मरण शक्ति, प्रत्यक्षीकरण, नेतृत्व क्षमता इत्यादि से सम्बन्धित वास्तविक जानकारी प्राप्त होती है। व्यक्ति से सम्बन्धित अनेकों भ्रान्त धारणाएँ इसके द्वारा समाप्त हो गई। समाज और व्यक्ति के अन्तर्सम्बन्धों तथा अन्तर्निर्भरता को उजागर करके सामाजिक मनोविज्ञान ने यह प्रमाणित कर दिया कि दोनों की पारस्परिक अन्तर्क्रियाओं के आधार

पर ही व्यक्ति के व्यवहारों का निर्धारण होता है। समाज विरोधी व्यवहार के सामाजिक तथा मानसिक कारणों को उजागर करके उन व्यक्तियों के उपचार को सामाजिक मनोविज्ञान ने सम्भव बनाया है। वैयक्तिक विघटन से सम्बन्धित विविध पक्षों की जानकारी भी इसके द्वारा प्राप्त होती है। इतना ही नहीं उपयुक्त सामाजीकरण तथा व्यक्ति और समाज के सम्बन्धों के महत्व को भी सामाजिक मनोविज्ञान ने अभिव्यक्त करके योगदान किया है। परिवार सामाजिकरण की प्रथम पाठशाला है, वही विद्यालय द्वैतीयक सामाजीकरण की भूमिका अदा करता है। आज मानव विकास में शिक्षा का महत्वपूर्ण स्थान है। प्राथमिक शिक्षा के लिए सरकार विविध प्रावधानों के द्वारा व्यापक प्रयास कर रही है। शिक्षा के अधिकार अधिनियम द्वारा अधिक से अधिक बच्चों को विद्यालयी शिक्षा प्रदान करने की कोशिश की जा रही है। शिक्षकों से अधिकांश छात्रों के पंजीकरण, उनसे समुचित व्यवहार, उचित अध्यापन इत्यादि अपे क्षाएँ हैं। सामाजिक मनोविज्ञान द्वारा शिक्षा क्षेत्र की समस्याओं तथा उनके निदान के उपायों की व्यापक जानकारी प्राप्त होती है। आज उद्योगों में भी सामाजिक मनोविज्ञान के विविध पक्षों के जानकारों को रखा जा रहा है ताकि औद्योगिक सम्बन्ध शान्त तथा सौहार्द्रपूर्ण बना रहें श्रमिकों तथा कर्मचारियों की समस्याओं का भी सामाजिक-मनोवैज्ञानिक तरीकों से समाधान किया जा रहा है। सामाजिक मनोवैज्ञानिक तकनीकों एवं प्रविधियों के प्रयोग द्वारा औद्योगिक उत्पादन को बढ़ाने में सफलता प्राप्त की जा रही है। नौकरशाहों में, प्रबन्धकों में तथा नेताओं में नेतृत्व की क्षमता वृद्धि के लिए भी इसका विशेष महत्व स्वीकार किया जा रहा है। यह कहना कदापि अनुचित न होगा कि मानवीय क्रियाकलापों की पहेली को मनोवैज्ञानिक दृष्टि से सुलझाना आज की अनिवार्यता है।

समाज में व्याप्त विविध कुरीतियों, बुराईयों, विचलित व्यवहारों एवं आपराधिक गतिविधियों, समस्याओं, सामाजिक तनावों, साम्प्रदायिक दंगों, जातिगत दंगो, वर्ग संघर्षों इत्यादि के कारणों तथा उनको रोकने के उपायों की जानकारी सामाजिक मनोविज्ञान के अध्ययन के द्वारा समाज सुधारकों तथा प्रशासकों को होती है, जिसके द्वारा उन्हें इन समस्याओं को दूर करने में सहायता मिलती है।

1.1.5. समाज मनोविज्ञान की प्रकृति

सामाजिक मनोविज्ञान की प्रकृति वैज्ञानिक है। जब हम किसी भी विषय को वैज्ञानिक कहते हैं, तो उसकी कुछ विशेषताएँ (मूल्य) होती हैं, और उन विशेषताओं के साथ ही साथ उस विषय के अध्ययन के अन्तर्गत विभिन्न विधियाँ होती हैं, जिनका प्रयोग सम्बन्धित विषयों के अध्ययन में किया जाता है रौबर्ट ए. बैरन तथा डॉन बायर्न (Baron & Byrne, 2004) ने इन विशेषताओं को इस प्रकार बताया है, किसी भी विषय के वैज्ञानिक होने के लिए वे आवश्यक हैं-

(1) यथार्थता

(2) विषयपरकता

(3) संशयवादिता और

(4) तटस्थता।

इन चारों को स्पष्ट करते हुए उनका कहना है कि – यथार्थता से अभिप्राय दुनिया (जिसके अन्तर्गत सामाजिक व्यवहार व विचार आता है) के बारे में यथासम्भव सावधानीपूर्वक, स्पष्ट व त्रुटिरहित तरीके से जानकारी हासिल करने एवं मूल्याँकन करने के प्रति वचनबद्धता से है। विषयपरकता से तात्पर्य यथासम्भव पूर्वाग्रहरहित जानकारी प्राप्त करने एवं मूल्यांकन करने के प्रति वचनबद्धता से है। संशयवादिता से तात्पर्य तथ्यों का सही रूप में स्वीकार करने के प्रति वचनबद्धता ताकि उसे बार-बार सत्यापित किया जा सके, से है। तटस्थता का अभिप्राय अपने दृष्टिकोण, चाहे वो कितना भी दृढ़ हो, को बदलने के प्रति वचनबद्धता से है, यदि मौजूदा साक्ष्य यह बताता है कि ये दृष्टिकोण गलत है। सामाजिक मनोविज्ञान एक विषय के रूप में उपरोक्त मूल्यों से गहन रूप से सम्बद्ध है। विविध विषयों से सम्बन्धित अध्ययनों के लिए इसमें वैज्ञानिक तरीकों को अपनाया जाता है।

हमने शुरू में(1.4) सामाजिक मनोविज्ञान की परिभाषाएँ दी हैं, उनसे स्पष्ट होता है कि यह विज्ञान समाजशास्त्र और मनोविज्ञान दोनों ही की विशेषताओं से युक्त है। वास्तव में व्यक्ति के व्यवहारों का अध्ययन करने वाला यह एक महत्वपूर्ण विज्ञान है। इस सन्दर्भ में क्रच और क्रचफील्ड (Krech, & Crutchfield, 1948) के अनुसार, ‘‘समाज का अध्ययन करने वाले विज्ञानों में केवल सामाजिक मनोविज्ञान ही मुख्यतया सम्पूर्ण व्यक्ति का अध्ययन करता है। अर्थशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, समाजशास्त्र तथा अन्य सामाजिक विज्ञानों की अध्ययन वस्तु सामाजिक संगठन की संरचना एवं प्रकार्य तथा सीमित एवं विशिष्ट प्रकार की संस्थाओं के अन्तर्गत लोगों द्वारा प्रदर्शित संस्थागत व्यवहार ही है। दूसरी ओर सामाजिक मनोविज्ञान का सम्बन्ध समाज में व्यक्ति के व्यवहार के प्रत्येक पक्ष से है। अतः मोटे तौर पर सामाजिक मनोविज्ञान को समाज में व्यक्ति के व्यवहार का विज्ञान कहकर परिभाषित किया जा सकता है।’’

इसकी वास्तविक प्रकृति और वैज्ञानिकता की पुष्टि शेरिफ और शेरिफ (Sherriff & Sherriff, 1956) के इस कथन से होती है कि, ‘‘सामाजिक मनोविज्ञान केवल विभिन्न प्रकार की अवधारणाओं को अपना लेने के कारण ही ‘सामाजिक’ नही हो गया है, अपितु वास्तविकता तो यह है कि सामान्य मनोविज्ञान की प्रामाणिक अवधारणाओं को सामाजिक क्षेत्र में विस्तृत करके या उपयोग में लाकर ही सामाजिक मनोविज्ञान ‘सामाजिक’ विज्ञान बन पाया है।’’

वास्तव में देखा जाये तो सामाजिक मनोविज्ञान में विज्ञान की सभी अवधारणाएँ, शर्तें या विशेषताएँ पायी जाती है, जैसे इसमें विषय वस्तु का क्रमबद्ध एवं व्यवस्थित तरीके से वैज्ञानिक पद्धति से अध्ययन किया जाता है। आवश्यकतानुसार प्रयोशाला अध्ययन, क्षेत्रीय अध्ययन या क्षेत्रीय प्रयो ग किया जाता है। इसमें कार्य-कारण सम्बन्धों की खोज की जाती है। वस्तुगतता के स्थान पर वस्तुनिष्ठता पर जोर दिया जाता है। सम्बन्धित उपकल्पनाओं को निर्मित किया जाता है तथा उसकी सत्यता की जाँच प्राप्त तथ्यों के

आधार पर की जाती है तथा उसी के आधार पर वैज्ञानिक सिद्धान्त का निर्माण किया जाता है तथा उसका प्रमाणीकरण भी होता है।

इस तरह से स्पष्ट है कि सामाजिक मनोविज्ञान की प्रकृति वैज्ञानिक प्रकृति है, क्योंकि यह विज्ञान के अन्य विषयों की तरह ही मूल्यों एवं विधियों को अपनाता हैं। यह एक आनुभविक विज्ञान (इम्पीरिकल साइंस) है। सामाजिक मनोविज्ञान शोध के चार मुख्य लक्ष्य होते हैं (टेलर तथा अन्य 2006)

(1) कारक

(2) कार्य-कारण विश्लेषण

(3) सिद्धान्त निर्माण, और

(4) उपयोग (एप्लीकेशन)

1.1.6. समाज मनोविज्ञान के कार्य क्षेत्र

सामाजिक परिस्थिति में किये जाने वाले व्यवहारों को सामाजिक व्यवहार कहा जाता है। समाज मनोविज्ञान में सामाजिक व्यवहार के बहुत से पहलुओं का अध्ययन किया जाता है। अतः सामाजिक व्यवहार के भिन्न-भिन्न पहलू आपस में मिल कर समाज मनोविज्ञान के कार्यक्षेत्र का निर्माण करते हैं। सामाजिक व्यवहार के प्रमुख ऐसे पहलुओं की जो आधुनिक समाज मनोविज्ञान के मुख्य कार्य क्षेत्र हैं, की व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है-

1.1.6.1. मनोवृत्ति- आलपोर्ट(1968) के अनुसार मनोवृत्ति समाज मनोविज्ञान के कार्यक्षेत्र का प्रमुख अंग है जिसमे तीन प्रमुख घटक होते हैं- 1. संवेगात्मक तत्त्व, 2. व्यवहारपरक तत्त्व तथा 3. संज्ञानात्मक तत्त्व. इन तीनों को मिलकर मनोवृत्ति का 'ABC'(ABC of attitude) कहा जाता है. मनोवृत्ति को मापने के लिए मनोवैज्ञानिकों ने भिन्न-भिन्न प्रकार की मापनी विधियाँ जैसे थर्स्टन मापनी, लिकर्ट मापनी, गटमैन मापनी, बोगार्डस मापनी आदि का विकास किया गया है.

1.1.6.2. पूर्वाग्रह एवं विभेद- पूर्वाग्रह (prejudice) का अर्थ 'पूर्व-निर्णय' है, अर्थात् किसी मामले के तथ्यों की जाँच किये बिना ही राय बना लेना या मन में निर्णय ले लेना। इस शब्द का उस स्थिति में प्रयोग किया जाता है जब किसी व्यक्ति या लोगों के किसी समूह के विरुद्ध निर्णय दिया गया हो और वह व्यक्ति या लोग किसी विशेष लिंग, राजनैतिक विचार, वर्ग, उम्र, धर्म, जाति, भाषा, राष्ट्रीयता के हों। विभेद वो भाव है जो पूर्वाग्रह के आधार पर लोगों से सामाजिक भागीदारी या मानव अधिकारों से इनकार करते हैं। यह एक प्रकार का नकारात्मक व्यवहार का उदाहरण है.

1.1.6.3. सामाजिक प्रत्यक्षण- सामाजिक प्रत्यक्षण आधुनिक समाज मनोवैज्ञानिकों के कार्यक्षेत्र का दूसरा प्रमुख पहलू है दुसरे व्यक्तियों की प्रेरणा, इच्छाओं, मनोवृत्ति आदि से अवगत होकर तत्संबंधित ज्ञान प्राप्त करने की क्षमता को सामाजिक प्रत्यक्षण की संज्ञा डी जाती है. इस कार्यक्षेत्र में समस्त

मनोवैज्ञानिको का ध्यान मूलतः तीन पहलुओं पर अधिक गया है- वैयक्तिक प्रत्यक्षण, गुणारोपण तथा अशब्दिक संचार या सम्प्रेषण.

1.1.6.4. नेतृत्व (leadership)- जॉर्ज आर. टेरी ने नेतृत्व को उस योग्यता के रूप में परिभाषित किया है जो उद्देश्यों के लिए स्वेच्छा से कार्य करने हेतु प्रभावित करता है। मूरे नेतृत्व को एक ऐसी योग्यता मानते हैं जो व्यक्तियों कोनेता द्वारा अपेक्षित विधि के अनुसार कार्य करने के लिए प्रेरित करती है।ओसवाल्ड स्पैगलर ने अपनी पुस्तक 'मैन ऐण्ड टेक्निक्स' (Man and Techniques) में लिखा है कि ''इस युग में केवल दो प्रकार की तकनीक ही नहीं है वरन् दो प्रकार के आदमी भी हैं। जिस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति में कार्य करने तथा निर्देशन देने की प्रवृति है उसी प्रकार कुछ व्यक्ति ऐसे हैं जिनकी प्रकृति आज्ञा मानने की है। यही मनुष्य जीवन का स्वाभाविक रूप है। यह रूप युग परिवर्तन के साथ कितना ही बदलता रहे किन्तु इसका अस्तित्व तब तक रहेगा जब तक यह संसार रहेगा।''

1.1.6.5. अफवाह- अफवाह किसी व्यक्ति या घटना के बारे में एक अप्रमाणित कहानी है यह एक ऐसा कार्यक्षेत्र है जिसमे आधुनिक समाज मनोविज्ञानकों की रूचि प्रारंभिक समाज मनोवैज्ञानिकों की रूचि की अपेक्षा थोड़ा कम है। आल्पोर्ट तथा पोस्टमैन(1947) ने अफवाह के स्वरुप की व्याख्या करते हुए कहा की "अफवाह का होना दो बातों पर निर्भर करता है- पहला परिस्थिति में अस्पष्टता तथा दूसरी, परिस्थिति की महत्ता।"

1.1.7. समाज मनोविज्ञान तथा समाजशास्त्र के मध्य सम्बन्ध

फिशर (Fisher, 1982) ने समाज मनोविज्ञान को समाजशास्त्र तथा मनोविज्ञान दोनों को ही एक उपविषय माना है. तब यह बिल्कुल ही स्वाभाविक है की समाज मनोविज्ञान का सम्बन्ध अपने पैत्रविषय यानि समाजशास्त्र तथा मनोविज्ञान दोनों के साथ अधिक हो. वास्तव में समाज मनोविज्ञान अपनी विषय वस्तु का वैज्ञानिक अध्ययन करने के लिए समाजशास्त्र तथा मनोविज्ञान दोनों की सहायता लेता है.

समाजशास्त्र और मनोविज्ञान को हम एक दूसरे के पूरक विषयों के रूप में अध्ययन कर सकते हैं. समाजशास्त्र सम्पूर्ण समाज का व्यवस्थित एवं क्रमबद्ध अध्ययन करता है. इनमे सामाजिक संरचनाओं तथा सामाजिक संबंधों का अध्ययन किया जाता है. एल.एफ. वार्ड(L.F. Ward) ने समाज के वैज्ञानिक अध्ययन को समाजशास्त्र कहा है. उसी तरह से गिडिंग्स (Giddings) के अनुसार "समाजशास्त्र समग्र रूप से समाज का क्रमबद्ध वर्णन एवं व्याख्या है." इन परिभाषाओं से स्पष्ट है की समाजशास्त्र में समाज का समग्र रूप से अध्ययन किया जाता है. सचमुच में समाज कोई एक अखंड तंत्र नहीं है उसके अंतर्गत परिवार, समुदाय, नगर, गाँव, संस्कृति, सभ्यता, जाति, आर्थिक संस्थाएं, राजनैतिक संस्थाए एवं भिन्न-भिन्न प्रकार की समितियों का समावेश होता है. इस तरह समाजशास्त्र समाज के भिन्न-भिन्न पहलुओं का अध्ययन करके एक खास सामाजिक परिस्थिति को जन्म देता है. एक समाजशास्त्रीय इन परिस्थितियों में भिन्न-भिन्न तरह के अध्ययन कर समाज मनोवैज्ञानिकों को उनके स्वरुप के बारे में विशेष रूप से

वैज्ञानिक जानकारी प्रदान करते है जिसका उपयोग करके समाज मनोवैज्ञानिक उन विभिन्न सामाजिक परिस्थितियों में व्यक्तियों के व्यवहार का अध्ययन करते है. इस तरह से समाजशास्त्र समाज मनोविज्ञान को अपनी विषय वस्तु समझने में मदद करता है. दूसरी तरफ समाजशास्त्र जिन सामाजिक संबन्धों अन्तःक्रियायों आदि का अध्ययन करता है उनका कोई न कोई मनोवैज्ञानिक आधार होता है. समाज मनोविज्ञान उन मनोवैज्ञानिक आधार की विस्तृत व्याख्या कर समाजशास्त्र को अपनी विषयवस्तु को समझने में मदद करता है. इस तरह से हम देखते हैं की समाज में मनुष्य द्वारा की गयी अन्तःक्रियायों एवं उनके भिन्न-भिन्न तरह के सामाजिक संबंधों को समझने के लिए एक समाजशास्त्री को समाज मनोविज्ञान द्वारा प्रदत्त आकड़ों एवं सिद्धांतों का सहारा लेना पड़ता है. अतः समाजशास्त्र तथा समाज मनोविज्ञान एक दूसरे से सम्बंधित हैं क्योंकि एक बिना किसी दूसरे को सही से समझना संभव नहीं है. इन दोनों के संबंधों पर अकोलकर(Akolkar, 1960) ने टिप्पणी करते हुए कहा था "समाज मनोविज्ञान इस तथ्य को स्वीकार करता है कि मानवीय प्रकृति एवं व्यवहारों की एक संतोषजनक व्याख्या के लिए हमें समाज की संरचना, संगठन तथ संस्कृति को समझना चाहिए जिनसे व्यक्ति सम्बंधित होता है." इसी घनिष्ट सम्बन्ध के कारण कुछ समाज मनोवैज्ञानिकों ने यह भी कहा है की समाज मनोविज्ञान तथा समाजशास्त्र को किसी भी तरह से अलग करने का प्रयास एक सफल प्रयास नहीं हो सकता है. क्रेच तथा क्रेचफील्ड (Krutch and crutchfield, 1948) ने इस तथ्य के बारे अपना विचार प्रकट करते हुए कहा है, "समाज मनोवैज्ञानिकों एवं समाजशास्त्रियों को उनके द्वारा किये गए विशिष्ट शोध या तथ्यों की प्रकृति और उनकी विभिन्न धाराओं के सामान्य निष्कर्षों के आधार पर अलग करने का प्रयास असफल ही होगा।"

इन समानताओं के बावजूद समाजशास्त्र तथा समाज मनोविज्ञान में अंतर है. यह भिन्नता मूल रूप से दोनों विज्ञानों की विषयवस्तु एवं उसके अध्ययन की विधियों से सम्बंधित है जैसा की ऊपर कहा गया है की समाजशास्त्र के अध्ययन की विषयवस्तु समग्र समाज है जबकि समाज मनोविज्ञान के अध्ययन की विषयवस्तु समाज में रहने वाले व्यक्तियों के व्यवहार एवं भिन्न-भिन्न तरह की अन्तःक्रियायें हैं। मेयर्स(Myers, 1988) के अनुसार समाज मनोविज्ञान तथा समाजशास्त्र में दूसरा अंतर इन दोनों विज्ञानों द्वारा अपनाई गयी विधियों से सम्बंधित है समाज मनोवैज्ञानिक व्यक्ति के सामाजिक व्यवहार से सम्बंधित समस्यायों का अध्ययन करने के लिए प्रायः प्रयोगात्मक विधि का उपयोग करते हैं। इस विधि में वे कुछ चरों में जोड़-तोड़ करके उसका प्रभाव दूसरे चरों पर देखते हैं और तब दोनों चरों के बीच कारण-प्रभाव सम्बन्ध के बारे में वे एक निश्चित निष्कर्ष पर पहुचते हैं।

मनोविज्ञान का मानवशास्त्र से सम्बन्ध समाज मनोविज्ञान का संबंध मानव शास्त्र से भी है. मानवशास्त्र एक न है, इसमें मानव जाति के शारीरिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, पहलुओं का अध्ययन किया जाता है। इस संक्षिप्त परिभाषा से यह स्पष्ट है कि मानवशास्त्र में मानव जीवन के मूल पक्षों के अध्ययन पर अधिक बल डाला जाता है। शारीरिक, समाजिक एवं सांस्कृतिक यह तीनों पक्ष ऐसे हैं जिन पर भिन्न-भिन्न तरह के मनोवैज्ञानिक प्रभाव स्पष्ट रूप से दीख पड़ते हैं। लिंटन 1936 के अनुसार मानव शास्त्र की मुख्य दो शाखाएं हैं शारीरिक मानव शास्त्र तथा सांस्कृतिक मानवशास्त्र। इन दोनों शाखाओं की विषयवस्तु के अध्ययन में समाज मनोविज्ञान एक वैज्ञानिक आधार प्रदान करता है। शारीरिक मानवशास्त्र में प्रजाति

विभेद (racial differentiation), संकरण(hybridization), व्यक्तित्व पेटर्न्स(personality patterns), आदि का अध्ययन किया जाता है। शारीरिक मानवशास्त्र के इन सारे पहलुओं का प्रभाव व्यक्तियों के व्यवहार पर पड़ता है परिणामस्वरूप व्यक्तियों में अंतःक्रियाएं होती हैं जो समाज मनोविज्ञान के अध्ययन का विषय वस्तु बनता है। दूसरी तरफ शारीरिक मानवशास्त्री अपनी विषय वस्तु जैसे प्रजातीय विभेद, तथा मूल व्यक्तित्व पेटर्न को समझने के लिए समाज मनोविज्ञान के सिद्धांतों नियमों का विशेष रूप से सहारा लेते हैं, इस तरह दोनों विज्ञान आपस में संबंधित हैं। सांस्कृतिक मानवशास्त्र में मानव के सांस्कृतिक पक्षों के अध्ययन पर अधिक बल डाला जाता है। मानव संस्कृति की उत्पत्ति कैसे होती है? उसमें कौन-कौन से ऐसे कारक उत्पन्न हो जाते हैं जिनसे सांस्कृतिक परिवर्तन में तीव्रता आ जाती है। मानव के धर्म, विश्वास, रीति-रिवाज, आदि का कैसे विकास होता है? का अध्ययन सांस्कृतिक मानवशास्त्र में होता है। सांस्कृतिक मानवशास्त्र के सभी पक्ष कुछ ऐसे हैं जिनका प्रभाव व्यक्तियों के व्यवहारों पर पड़ता है। इस तरह से सांस्कृतिक मानवशास्त्र अपनी विषय वस्तु के भिन्न-भिन्न पक्षों का अध्ययन करके समाज मनोविज्ञान के लिए महत्वपूर्ण आंकड़ा प्रदान करते हैं। दूसरी ओर समाज मनोविज्ञानिक भी सांस्कृतिक मानवशास्त्री को व्यक्तियों के स्वाभाव के बारे में अध्ययन करके उसे संस्कृति के मूल तत्वों से अवगत कराते हैं।

किसी भी समाज की यथार्थता को तब तक नहीं समझा जा सकता है जब तक की उस समाज के व्यक्तियों के व्यवहारों के मूल तत्व को ना समझा जाए। इस तरह से सांस्कृतिक मानवशास्त्र एवं मनोविज्ञान एक दूसरे से काफी संबंधित हैं अर्थात कहा जा सकता है कि समाज मनोविज्ञान का संबंध समाजशास्त्र था मानव शास्त्र दोनों से ही गहरा है। वर्तमान समय में समाज मनोविज्ञान उतना ही महत्वपूर्ण है जितना की शिक्षा की अन्य प्रयुक्त क्या वैज्ञानिक विषय इकाइयां। एक प्रयुक्त विज्ञान के रूप में समाज में विज्ञान का संबंध वास्तविक परिस्थिति में किए जाने वाले ऐसे सामाजिक मनोवैज्ञानिक शोध तथा अभ्यासों से होता है इसका उद्देश्य मानव सामाजिक व्यवहार को समझना तथा सामाजिक समस्याओं के लिए समुचित समाधान प्रदान करना होता है। समाज मनोवैज्ञानिक प्रमुख सामाजिक समस्याओं का अध्ययन कर समुचित समाधान का प्रयत्न करते हैं, उनमें गरीबी, बढ़ती जनसंख्या की समस्या, अंतर समूह संघर्ष, अपराध, पूर्वाग्रह, तथा विभेद, आक्रामकता, वैश्यावृत्ति आदि ही प्रधान है। प्रयुक्त समाज मनोविज्ञान के रूप में समाज मनोविज्ञान के मुख्य दो मूलाधार हैं। सभी मानवी समस्याओं में कोई ना कोई मानसिक तत्व सम्मिलित होता है दूसरे शब्दों में सभी मानवीय समस्याओं में सामाजिक अंतःक्रिया के तत्व सम्मिलित होते हैं। समाज में मानवीय संबंधों को उन्नत बनाने के लिए धीरे-धीरे इनके सामूहिक प्रयासों की भूमिका जोर पकड़ते जा रही हैं। इन दोनों मूलाधार के संदर्भ में समाज मनोविज्ञान एक प्रयुक्त विज्ञान के रूप में विकसित हो रहा है और सामाजिक समस्याओं को समझने तथा उसका समुचित समाधान ढूंढने में निरंतर प्रयत्नशील है। अपने इस प्रयास में समाज मनोविज्ञान मानवीय मूल्यों पर अधिक बल डाल रहे हैं, अधिकतर समाज मनोवैज्ञानिक यह मान कर चलते हैं कि व्यक्ति में आलोचनात्मक तर्कणा की क्षमता होती है जो उन्हें सामाजिक समस्याओं के समाधान में मदद करता है।

1.1.8. सारांश

उपरोक्त समस्त विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि मनोविज्ञान का इतिहास वर्षों पुराना है इसके विकास माजशास्त्र और मनोविज्ञान दोनों का ही पर्याप्त योगदान है. सामाजिक मनोविज्ञान का केंद्र बिंदु व्यक्ति व्यवहार क्षेत्र है. रॉबर्ट ए. बैरन और डॉन बायर्न (Rober A. Baron and Don Byrne, 2004) के शब्दों में कहा जाए तो कह सकते हैं कि सामाजिक मनोविज्ञान मुख्य रूप से सामाजिक व्यवहार एवं सामाजिक विचार के कारणों, सामाजिक परिस्थितियों में हमारी भावनाओं, व्यवहार एवं विचार को निर्धारित करने वाले तथ्यों पर जोर देता है. इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए वैज्ञानिक विधियों का प्रयोग करता है. और इस बात का ध्यान रखता है कि समाजिक व्यवहार एवं विचार पर विभिन्न सामाजिक संज्ञानात्मक, वातावरणात्मक, सांस्कृतिक एवं जैविक तथ्यों का प्रभाव पड़ता है. सामाजिक मनोविज्ञान की प्रकृति वैज्ञानिक है, जोकि यथार्थता, विषय परकता, संशयवादिता, तथा तटस्थता से युक्त है. सामाजिक मनोविज्ञान में विभिन्न विधियों के द्वारा प्रमाणिक अध्ययन किया जाता है. एक मनोवैज्ञानिक शोध के चार मुख्य लक्ष्य होते हैं व्याख्या, कार्य-कारण विश्लेषण, सिद्धांत निर्माण और उसका उपयोग. विविध नीति निर्माण या समस्या समाधान हेतु सामाजिक मनोविज्ञान का विषय क्षेत्र अत्यंत विस्तृत है. मनोविज्ञान की अन्य विषय शाखाओं की भी बहुत सी सामग्रियां इसमें समाहित हैं. व्यक्ति व्यवहार संगठित अथवा असंगठित, समाजीकरण की प्रक्रिया, समूह तथा समूह व्यवहार, नेतृत्व तथा उसके पक्ष, मनोवृति, रूढ़िया, पूर्वाग्रह, भीड़ बहार, अभिप्रेरणा, संज्ञान, प्रत्यक्षीकरण, प्रचार, जनमत, भाषा, अफवाह, भूमिका संघर्ष, फैशन आदि अनेकों विषयों का अध्ययन इसके अंतर्गत किया जाता है. वैश्वीकरण के इस दौर में विज्ञान का महत्व जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में अत्यधिक बढ़ गया है. जीवन हो या संपूर्ण राष्ट्र का हित हो, सभी को यह प्रभावित करता है।

1.1.9. अभ्यास प्रश्न

1. सामाजिक मनोविज्ञान के अर्थ को समझाइए?
2. सामाजिक मनोविज्ञान की प्रकृति का वर्णन कीजिए?
3. सामाजिक मनोविज्ञान के उद्देश्य एवं महत्व का वर्णन कीजिए?
4. सामाजिक मनोविज्ञान का अन्य आज विज्ञानों से संबंध समझाइए?
5. सामाजिक मनोविज्ञान के क्षेत्र का वर्णन कीजिए?

1.1.10. शब्दावली

समाज मनोविज्ञान, अफवाह,नेतृत्व, सामाजिक प्रत्यक्षण, पूर्वाग्रह एवं विभेद, मनोवृत्ति

1.1.11. संदर्भ ग्रंथ सूची

- बैरन एंड बैरनी(2000). सोशल साइकोलॉजी. पियर्सन एजुकेशन.एनडी
- सिंह, ए.के.(2008). समाज मनोविज्ञान की रुपरेखा. मोतीलाल बनारसीदास पब्लिकेशन.एनडी.
- जैकोन, जे.एम.(1993). सोशल साइकोलॉजी, पास्ट एंड प्रेजेंट. हिल्सडेल,एनजे
- सेमिन,जी. एंड फिडलर, के.(1996). एप्लाइड सोशल साइकोलॉज.सीए: सेज

इकाई-2 समाज मनोविज्ञान की विधियाँ

इकाई की रूपरेखा

1.2.0. उद्देश्य

1.2.1. प्रस्तावना

1.2.2. प्रयोगात्मक विधि

1.2.3. प्रेक्षण विधि

1.2.4. व्यक्ति अध्ययन

1.2.5. सर्वे /सर्वेक्षण विधि

1.2.6. क्षेत्र अध्ययन विधि

1.2.7. समाजमिति शोध प्रविधि

1.2.8. सारांश

1.2.9. स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1.2.10. शब्दावली

1.2.11. संदर्भ ग्रंथ सूची

1.2.0. उद्देश्य कथन

प्रयोगात्मक प्रविधि को जान पाएंगे.

1. प्रयोगात्मक प्रविधि के अन्तरगत आने वाली समस्त विधियों से परिचित हो जायेंगे.
2. प्रेक्षण विधि, प्रेक्षण विधि की प्रक्रिया तथा प्रेक्षण विधि के अंतर्गत आने वाले विभिन्न प्रकारों को समझ सकेंगे
3. व्यक्ति अध्ययन प्रविधि की प्रक्रिया, स्वरुप एवं प्रकारों का विस्तित ज्ञान प्राप्त कर पाएंगे.
4. सर्वे /सर्वेक्षण विधि एवं इसकी सभी व गुण दोष से रूबरू हो पाएंगे.
5. क्षेत्र अध्ययन विधि के स्वरुप गुण, दोष एवं इसकी प्रक्रिया को समझने में मदद मिलेगी
6. समाजमिति विधि का परिचय, एवं इसके अंतर्गत आने समस्त विधियों के साथ-साथ इसकी प्रक्रिया को जान सकेंगे.

1.2.1. प्रस्तावना

मनोविज्ञान की अन्य शाखाओं के सामान समाज मनोविज्ञान की भी अपनी कुछ विधियां हैं जिनके सहारे समाज मनोवैज्ञानिक समाज मनोविज्ञान के कार्य क्षेत्र के विषय वस्तु का अध्ययन करते हैं। समाज मनोविज्ञानक का कार्य क्षेत्र बढ़ता जा रहा है, वैसे ऐसे समाज मनोविज्ञान की विधियां विकसित होती जा रही हैं।इनमें से कुछ सरल है परंतु कुछ काफी जटिल है। इन्ही विधियों के माध्यम से अनुसंधानकर्ता अपने शोध उद्देश्यों की प्राप्ति करता है।

1.2.2. प्रयोगात्मक विधि- (Experimental Method)

समाज मनोविज्ञान में प्रयोगात्मक विधि का महत्व काफी है। इस विधि में मनोवैज्ञानिक किसी सामाजिक व्यवहार को समझने के लिए एक प्रयोग करते हैं। प्रयोग से तात्पर्य किसी नियंत्रित परिस्थिति में किया गया निरीक्षण से होता है। किसी भी मनोवैज्ञानिक प्रयोग की विशेषता यह होती है कि उसे जब चाहे तब दोहराया जा सकता है। मनोविज्ञान में जब भी कोई प्रयोग किया जाता है तो उसका मुख्य उद्देश्य देखना होता है कि वे कारक से अध्ययन किए जाने वाला कारक प्रभावित होता है या नहीं। इसके लिए समाज मनोवैज्ञानिक उस कारक या चर में कुछ हेरफेर करता है और फिर उस हेरफेर का प्रभाव अध्ययन किए जाने वाले सामाजिक व्यवहार पर देखता है। क्या उस कारक या चर में हेरफेर करने से असामाजिक व्यवहार में भी परिवर्तन आता है ? जिस घर में हेरफेर किया जाता है, उसे समाज मनोवैज्ञानिकों ने स्वतंत्र चर की संज्ञा दी है तथा वह सामाजिक व्यवहार जिस पर उस हेर फेर के प्रभाव का अध्ययन किया जाता है, उसे इन लोगों ने आश्रित चर की संज्ञा दी है।

समाज मनोविज्ञान के अधिकतर प्रयोगों में स्वतंत्र चर के प्रायः कई स्तर होते हैं और प्रत्येक स्तर में प्रयोज्य का एक एक समूह तैयार किया जाता है। दूसरे शब्दों में, प्रयोग के लिए चुने गए व्यक्तियों या प्रयोजनों को यादृच्छिक रूप से स्वतंत्र चर के स्तर की संख्या के अनुसार कई समूहों में बांट दिया जाता है इसे यादृच्छिक विभाजन कहा जाता है। इस तरह के विभाजन का सबसे बड़ा लाभ यह होता है कि ऐसा करने से यह विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि आश्रित चर में उत्पन्न परिवर्तन स्वतंत्र चर में किए गए परिवर्तन या हेरफेर के कारण हुआ है। इसका दूसरा लाभ यह होता है कि इस तरह के यादृच्छिक विभाजन द्वारा बहुत से वैसे चर जैसे - यौन , उम्र , बुद्धि आदि जिनसे भी आश्रित चर में अंतर आ सकता है, अपने आप नियंत्रित हो जाते हैं। ऐसे चरो को प्रयोगकर्त इसलिए नियंत्रित करके रखता है क्योंकि उनका वह अध्ययन नहीं कर रहा है, बहीरंग चर् या संगत चर कहा जाता है।

समाज मनोविज्ञान में सामाजिक व्यवहार का अध्ययन करने के लिए निम्नांकित तीन तरह की प्रयोग विधि अपनाई गई है -

1. प्रयोगशाला प्रयोग विधि (laboratory experiment method)
2. क्षेत्र प्रयोग विधि (field experiment method)
3. स्वाभाविक प्रयोग विधि (natural experiment method)

1. **प्रयोगशाला प्रयोग विधि -** प्रयोगशाला प्रयोग विधि वह है जिसमें समाजविज्ञानी किसी सामाजिक व्यवहार का अध्ययन प्रयोगशाला में प्रयोग करके करते हैं। इस विधि में प्रायः प्रयोज्य की एक सीमित संख्या का यादृच्छिक रूप से चयन करके उसे आवश्यकतानुसार भिन्न भिन्न समूह जैसे प्रयोगात्मक समूह तथा नियंत्रित समूह में बांटकर करते हैं। स्वतंत्र चर में जोड़-तोड़ या हेरफेर कर उसका प्रभाव आश्रित चर पर देखा जाता है। अन्य चरो को जिसका प्रभाव आश्रित चर पर पड़ सकता है परंतु उसके प्रभाव के अध्ययन में प्रयोगकर्ता की कोई रुचि नहीं होती है, नियंत्रित करके रखा जाता है इसे वहिरंग चर कहा जाता है। यदि स्वतंत्र चर में जोड़-तोड़ करने से आश्रित चर में भी कुछ परिवर्तन आ जाता है, तो समाज मनोविज्ञान इन दोनों चरो में कारण परिणाम संबंध के बारे में एक निश्चित निष्कर्ष पर पहुंच जाते हैं। इस तरह से समाज मनोवैज्ञानिक जब प्रयोगशाला विधि द्वारा किसी सामाजिक व्यवहार का अध्ययन करते हैं, तो वे एक सीमित प्रयोज्यो का यादृच्छिक रूप से चयन करके प्रयोगशाला में एक कृतिम परिस्थिति सृजन करते हैं और फिर स्वतंत्र चर तथा आश्रित चर मेक कारण परिणाम संबंध स्थापित करते हैं। समाज मनोविज्ञान में इस विधि द्वारा किए गए शोध को उद्दीपन अनुक्रिया शोध भी कहा जाता है। यहां उद्दीपन से मतलब स्वतंत्र चर तथा अनुक्रिया से मतलब आश्रित चर से होता है। प्रयोगशाला विधि के कुछ गुण दोष है। इस विधि के प्रमुख गुण निम्नलिखित हैं-

प्रयोगशाला विधि के गुण-

(i) प्रयोगशाला प्रयोग विधि में प्रयोग एक काफी नियंत्रित अवस्था में किया जाता है, अत: इसके परिणाम की आंतरिक वैधता काफी अधिक होती है।

(ii) इस में प्रयोग की अवस्था काफी नियंत्रित होती है, अतः चाहकर भी प्रयोगकरता किसी प्रकार का पक्षपात तथा पूर्वाग्रह आदि नहीं दिखला पाता है।

(iii) प्रयोगशाला प्रयोग विधि में चरों में जोड़ तोड़ संभव है, अतः प्रयोग करता हर तरह से अपने आप को संतुष्ट कर प्रयोग को अधिक विश्वसनीय बना लेता है।

(iv) क्योंकि इसमें शाला प्रयोग के परिणाम का सांख्यिकीय विश्लेषण किया जाता है, अतः इसका परिणाम अधिक वस्तुनिष्ठ होता है।

प्रयोगशाला प्रयोग विधि के अवगुण -

(i) इस विधि में सामाजिक व्यवहार का अध्ययन एक कृत्रिम अवस्था में किया जाता है क्योंकि इसमें प्रयोगशाला की परिस्थिति कृतिम होती है जिसका संबंध कभी-कभी जीवन की वास्तविक परिस्थिति से ना के बराबर होता है, अतः इससे प्राप्त परिणाम इन वास्तविक हालातों के लिए प्राय: सही नहीं होता है।

(ii) प्रयोगशाला प्रयोग विधि में बाहरी वैधता के कमी का एक दूसरा कारण प्रयोज्य की एक सीमित संख्या होती है।

(iii) प्रयोगशाला प्रयोग विधि द्वारा सभी तरह के सामाजिक व्यवहारो का अध्ययन करना संभव नहीं है। जैसे -यदि कोई समाज मनोवैज्ञानिक भीड़, क्रांति, युद्ध आदि का प्रभाव व्यक्ति के व्यवहार पर कैसे पड़ता है, का अध्ययन इस विधि द्वारा करना चाहता है तो शायद वह ऐसा करने में समर्थ नहीं हो पाएगा क्योंकि प्रयोगशाला में भीड़, क्रांति तथा युद्ध की स्थिति पैदा नहीं की जा सकती है।

इन अवगुणों के बावजूद भी समाज मनोविज्ञान में प्रयोगशाला प्रयोग विधि का उपयोग आधुनिक समाज मनोवैज्ञानिकों द्वारा काफी किया जा रहा है।

2. **क्षेत्र प्रयोग विधि-** क्षेत्र प्रयोग विधि प्रयोगात्मक विधि कि दूसरी प्रमुख प्रविधि है जिसका प्रयोग मनोवैज्ञानिकों द्वारा अधिक किया गया है । इस विधि की आवश्यकता कुछ ऐसे सामाजिक व्यवहार के अध्ययन में महसूस की गई है जिसे प्रयोगशाला प्रयोग विधि द्वारा अध्ययन सामान्यतः नहीं किया जा सकता था। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है भीड़ , क्रांति, राजनैतिक आंदोलन कुछ ऐसी सामाजिक समस्याएं हैं जिन्हें प्रयोगशाला में अध्ययन नहीं किया जा सकता है। फिर भी समाज मनोवैज्ञानिक इन समस्याओं का अध्ययन करना चाहते थे फलत: वे लोग क्षेत्र प्रयोग विधि का प्रतिपादन किए हैं। इस विधि में किसी सामाजिक व्यवहार का अध्ययन प्रयोगशाला में न कर के वास्तविक परिस्थिति में जिसे समाज मनोवैज्ञानिकों ने क्षेत्र कहा है , किया जाता है। प्रयोग करता इसी वास्तविक परिस्थिति में स्वतंत्र चर में जोड़ तोड़ करता है तथा उसका प्रभाव आश्रित चर पर देखता है । फिशर(1982) ने क्षेत्र विधि को परिभाषित करते हुए कहा कि "क्षेत्र प्रयोग में शोधकर्ता वास्तविक सेटिंग में स्वतंत्र चर को देकर या उसमें जोड़ तोड़ कर एक तरफ से हस्तक्षेप करता है और बाद में आश्रित चर पर पड़ने वाले प्रभावों की माप करता है।" क्षेत्र प्रयोग विधि के कुछ गुण तथा दोष है निम्नलिखित हैं-

क्षेत्र प्रयोग विधि प्रमुख गुण

(i) इस विधि में प्रयोग चुकी वास्तविक परिस्थिति मे किया जाता है, अतः इससे प्राप्त परिणाम जीवन के वास्तविक हालातों के लिए अधिक सही होता है।

(ii) इस विधि में प्रयोगशाला प्रयोग विधि के ही समान स्वतंत्र चरों को जोड़-तोड़ किया जाता है तथा यथासंभव बहिरंग चरो को भी नियंत्रित करके रखा जाता है।

इस विधि के कुछ प्रमुख दोष निम्नांकित हैं-

(i) क्योंकि क्षेत्र प्रयोग वास्तविक परिस्थिति में किया जाता है, अतः प्रयोग करता सभी तरह के बहिरंग का नियंत्रण उस सीमा तक नहीं कर पाता जिस सीमा तक एक प्रयोगशाला प्रयोग करता प्रयोगशाला में कर पाता है।

(ii) क्षेत्र प्रयोग विधि में कभी-कभी स्वतंत्र चरणों में तोड़ करना कठिन हो जाता है। फलस्वरूप प्रयोग करता को लाचार होकर इस विधि का परित्याग कर प्रयोगशाला प्रयोग विधि अपनाना पड़ता है।

3. **स्वाभाविक प्रयोग विधि-** समाज मनोविज्ञान में स्वाभाविक प्रयोग विधि का भी प्रयोग किया जाता है। हां, इतना अवश्य है कि इस विधि का प्रयोग प्रथम दो विधियों के सामान बहुत नहीं हुआ है। कभी कभी समाज में वैज्ञानिकों को कुछ इस प्रकार के सामाजिक व्यवहार ओं का भी अध्ययन करना पड़ता है जिस में स्वतंत्र चर तो होते हैं परंतु कुछ नैतिक तथा कानूनी प्रतिबंध के कारण उसमें जोड़ तोड़ ना तो प्रयोगशाला में किया जा सकता है और ना ही क्षेत्र में। जैसे- महामारी, छुआछूत की बीमारियां, स्कूल या कॉलेज में असफलता, परिवार में किसी महत्वपूर्ण सदस्य की मृत्यु, बाढ़, भूकंप, पदोन्नति आदि कुछ इस प्रकार के कारक हैं जिन्हें कोई भी प्रयोग करता व्यक्तियों के व्यवहार ओं पर के प्रभावों का अध्ययन करने के लिए अपनी ओर से उत्पन्न नहीं कर सकता है। अतः वह एक ऐसे समय तक इंतजार करता है जब इस प्रकार के प्राकृतिक कारक अपने आप उत्पन्न हो जाए ताकि उस समय वह व्यक्तियों के सामाजिक व्यवहार पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन कर सके तथा उससे संबंधित आंकड़ों का संकलन कर सके। इसे ही स्वाभाविक प्रयोग विधि संज्ञा दी जाती है।

स्वाभाविक प्रयोग विधि के गुण -

(i) इस विधि में प्रयोग बिल्कुल ही वास्तविक परिस्थिति में किया जाता है। अतः इसके परिणाम की वैधता पर किसी प्रकार का कोई शक नहीं किया जा सकता।

(ii) इस प्रयोग विधि में प्रयोग करता को प्रयोजन कम करनी होती है तथा साथ ही साथ कोई विशेष नियंत्रण की जरूरत नहीं पड़ती है।

इस प्रयोग विधि के प्रमुख दोष निम्नलिखित हैं -

(i) इस विधि में प्रयोग करता को एक खास समय के लिए इंतजार करना पड़ता है जब तक कोई स्वाभाविक घटना घट नहीं जाती वह प्रयोग नहीं कर सकता।

(ii) इस तरह के प्रयोज्य का चयन कोई वैज्ञानिक विधि द्वारा प्रायः नहीं होता है। जो कोई भी मिल जाता है, उसे प्रयोज्य बना लिया जाता है इससे परिणाम दोषपूर्ण हो सकता है।

इस तरह से हम देखते हैं कि समाज मनोविज्ञान में प्रयोगात्मक विधि का उपयोग 3 उप विधियों के रूप में किया गया है। यद्यपि तीनों उप विधियों के अपने अपने गुण दोष हैं, फिर भी आधुनिक सामाजिक मनोवैज्ञानिक प्रयोगशाला प्रयोग को सबसे ज्यादा पसंद करते हैं।

1.2.3. प्रेक्षण विधि- (Observation Method)

समाज मनोविज्ञान में प्रेक्षण विधि द्वारा भी सामाजिक व्यवहार का अध्ययन किया जाता है। समाज मनोवैज्ञानिक जब अध्ययन किए जाने वाले चर में जोड़ तोड़ नहीं कर पाते, तो वे इस विधि का सहारा लेते हैं। एक समाज मनोवैज्ञानिक दुश्चिंता के प्रभाव का अध्ययन करने के लिए प्रयोज्यो को एक ऐसी परिस्थिति में रखें जहां यह कहा जाए कि उनके पिता या मृत्यु हो गई है तो यह प्रयोगात्मक नैतिकता के

विरुद्ध होगा। इसी तरह के अनेक ऐसे चर है जिन्हें छोड़ कर के उनके प्रभाव का अध्ययन नहीं किया जा सकता है। फलस्वरूप ऐसी परिस्थिति में दैनिक प्रेक्षण विधि का सहारा अक्सर लेते हैं। प्रेक्षण विधि में प्रेक्षक व्यक्तियों के व्यवहार ओं का प्रेक्षण प्रायः एक स्वाभाविक परिस्थिति में करता है। प्रश्न यह उठता है कि प्रेक्षण किसे कहते हैं ? "प्रेक्षण वह प्रक्रिया है जिसमें प्रेक्षक व्यक्तियों के व्यवहार ओं को एक खास समय तक कभी हल्का हस्तक्षेप करते हुए तथा कभी बिना किसी तरह के हस्तक्षेप किए ही देखता तथा सुनता है, उनका एक रिकॉर्ड तैयार करता है जिनकी बाद में विश्लेषणात्मक व्याख्या की जाती है।"

समाज मनोवैज्ञानिकों ने प्रेक्षण के कई प्रकार जैसे- क्रमबद्ध प्रेक्षण तथा अक्रमबद्ध परीक्षण तथा असहभागी प्रेक्षण बतलाया है।

बिकमैन (1976) के अनुसार प्रेक्षण तीन पहलू निम्नांकित है -

(i) छिपाव की मात्रा (Degree of concealment) - किसी भी समाज मनोवैज्ञानिक को प्रेक्षण विधि द्वारा सामाजिक व्यवहार के अध्ययन करने में इस बात का निर्णय करना होता है कि प्रेक्षक का परिचय तथा अन्य व्यक्तियों से जिन का परीक्षण किया जाने वाला है, गुप्त रखा जाए या बता दिया जाए।

(ii) प्रेक्षक की भूमिका (Role of observor)- समाज मनोवैज्ञानिक को या शोधकर्ता को यह भी निर्णय करना होता है कि प्रेक्षक को अन्य व्यक्तियों जिनका परीक्षण किया जाने वाला है, अंतः क्रियाओं के साथ हस्तक्षेप करना चाहिए या नहीं।

(iii) प्रेक्षण प्रक्रिया में संगठन की मात्रा (Degree of structure in observational processes) - शोधकर्ता को यह भी निर्णय लेना पड़ता है कि प्रेक्षण का स्वरूप संगठित होगा या असंगठित होगा। असंगठित प्रेक्षण में प्रेक्षक के लिए अन्य व्यक्तियों जिनका परीक्षण किया जाने वाला है, के साथ हुए अनुभव द्वारा प्राप्त विचार ही काफी होते हैं। परंतु संगठित परीक्षण में व्यक्तियों के व्यवहार ओं की सार्थकता की जांच प्रेक्षक अन्य ढंग से भी करता है। रिस (1971) ने प्रेक्षण को वैज्ञानिक सूचनाएं उत्पन्न करने की क्षमता के आधार पर दो भागों में बांटा है - अक्रमबद्ध प्रेक्षण तथा क्रमबद्ध प्रेक्षण।

अक्रमबद्ध प्रेक्षण में प्रेक्षक व्यक्तियों के व्यवहारो का अध्ययन मात्र अपने दिन-प्रतिदिन के अनुभव के आधार पर कर लेता है। प्रेक्षण करने में वह ना तो कोई स्पष्ट नियम को ही अपनाता है और न ही किसी वैज्ञानिक तार्किक क्रम पर अपने प्रेक्षण को आधारित करता है। जैसे- शोधकर्ता बस में बैठे व्यक्तियों के भीड़ व्यवहार का अचानक प्रेक्षण करना शुरू कर देता है तो यह अक्रमबद्ध प्रेक्षण का एक उदाहरण होगा। इस तरह के परीक्षण का उपयोग समाज मनोविज्ञान में बहुत कम किया जाता है। प्रेक्षक द्वारा किए गए भूमिका के अनुसार समाज मनोवैज्ञानिकों ने प्रेक्षण विधि को दो भागों में बांटा है- सहभागी प्रेक्षण तथा असहभागी प्रेक्षण। समाज मनोविज्ञान इको द्वारा इन दोनों तरह की प्रेक्षण विधियों पर काफी बढ़ डाला गया है तथा सामाजिक व्यवहार के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन इन दोनों विधियों द्वारा खुलकर किया गया है। इन दोनों विधियों का वर्णन इस प्रकार है-

1. **सहभागी प्रेक्षण (Participant observation)** - इस तरह के परीक्षण में शिक्षक व्यक्तियों के समूह की क्रियाओं में स्वयं हाथ बटाता है और उनके व्यवहारों का प्रेक्षण भी करता जाता है। सचमुच में यहां प्रेक्षक का उद्देश्य व्यवहारों का ठीक से वस्तुनिष्ठ प्रेक्षण करना होता है और इस

ख्याल से ही वह समूह की क्रियाओं में हाथ बंटाता है। प्राय: प्रेक्षक व्यक्तियों के व्यवहार के हर पहलू के बारे में अपना विस्तृत रिकॉर्ड तैयार करता है और बाद में उसका विश्लेषण करता है। इस विधि में प्रेक्षक व्यक्तियों के समूह का पूर्व कालीन सदस्य भी बन कर कार्य कर सकता है यह अंशकालीन सदस्य बन कर भी कार्य कर सकता है। चाहे उनकी सदस्यता जिस प्रकार की हो, वह सक्रिय रूप से समूह की क्रियाओं में भाग लेता है। जब प्रेक्षक की भूमिका के बारे में व्यक्तियों को पता नहीं होता है, तो उसे प्रच्छन्न सहभागी प्रेक्षण और जब लोगों को प्रेक्षक की भूमिका के बारे में पता होता है तो उसे अतिप्रच्छन्न सहभागी प्रेक्षण कहा जाता है। सहभागी प्रेक्षण प्राय: असंरचित या और संगठित होता है। दूसरे शब्दों में, इस विधि में प्रेक्षक को इस बात की छूट होती है कि वह स्वयं ही यह निश्चित करें कि उसे क्या प्रेक्षण करना है उसे कैसे रिकॉर्ड करना है आदि - आदि। इस तरह की प्रेक्षण विधि में प्रेक्षक अपना परिचय सदस्यों से प्राय : छिपाकर रखता है या वह कोई ऐसी भूमिका अपनाकर समूह में प्रवेश करता है जिससे प्रेक्षण किए जाने वाले सामाजिक व्यवहार का पैटर्न प्रभावित न हो। लेकिन यह कोई जरूरी नहीं है कि वह अपना परिचय हमेशा छिपाकर ही रखें। ऐसा करने से उसे कुछ लाभ अवश्य होता है, इसलिए प्रायः वह अपना परिचय छिपाकर ही रखता है। सबसे बड़ा लाभ यह है कि जब व्यक्तियों को यह पता नहीं होता है कि उनके बीच कोई एक प्रेक्षक भी है जो उनके व्यवहारों का प्रेक्षण कर रहा है तो वह बिल्कुल ही स्वाभाविक ढंग से व्यवहार करता है।

रोसेंहान, (1973) द्वारा सहभागी प्रेक्षण के सहारे एक महत्वपूर्ण अध्ययन किया गया जिसमें सहभागी परीक्षकों ने एक मनिचिकित्सीय अस्पताल में रोगी बन कर कुछ दिनों तक प्रेक्षण किया और उस अस्पताल के सामान्य कार्यों के बारे में महत्वपूर्ण जानकारी दी।

सहभागी प्रेक्षण के कुछ गुण तथा दोष है इसके प्रमुख गुण निम्नांकित है-

(i) इस तरह के परीक्षण में प्रेक्षक व्यक्तियों के व्यवहारों का प्रेक्षण एक स्वाभाविक संदर्भ में करता है। फलस्वरूप वह व्यक्तियों के प्रत्येक व्यवहारिक पहलू जिससे किसी व्यवहार का विशेष अर्थ समझा जा सकता है, को सही-सही रिकॉर्ड कर उसका विश्लेषण करने में समर्थ होता है। इससे उसके परिणाम की सार्थकता काफी बढ़ जाती है ।

(ii) प्राय: यह देखा गया है कि सहभागी प्रेक्षण कई दिनों तक चलता है। परिणाम स्वरूप, इससे जो सूचनाएं प्राप्त होती हैं, वे काफी विस्तृत तथा अर्थ पूर्ण होती है।

इस विधि के कुछ प्रमुख अवगुण निम्नांकित है -

(i) क्योंकि प्रेक्षक इस विधि में समूह की क्रिया में सक्रिय भाग लेता है, इसलिए धीरे धीरे वह समूह में अपना एक विशेष पद बना लेता है और अपनी सक्रियता कम कर देता है। परिणाम स्वरूप, वह वास्तव में बहुत सी सामाजिक अंतर क्रियाओं को रिकॉर्ड करना ही भूल जाता है और इस तरह से उसका प्रेक्षण दोषपूर्ण हो जाता है।

(ii) प्रेक्षक धीरे धीरे अपनी मानवीय कमजोरियों को दिखाना शुरू कर देता है।

(iii) सहभागी प्रेक्षण से प्राप्त आंकड़ों में मानकीकरण कम होता है।

2. **असहभागी प्रेक्षण (Nonparticipant Observation)-** असहभागी प्रेक्षण द्वारा भी समाज मनोवैज्ञानिकों ने भिन्न-भिन्न तरह के सामाजिक अंतर क्रियाओं का अध्ययन किया है। असहभागी प्रेक्षण वह विधि है जिसमें प्रेक्षक किसी भी सामाजिक व्यवहार का परीक्षण स्वभाविक परिस्थिति में करता है परंतु परीक्षण किए जाने वाले व्यवहार और क्रियाओं को करने में वह हाथ नहीं बटाता है। इस तरह का परीक्षण संगठित या संरक्षित होता है। फल स्वरुप, प्रेक्षक पहले से इस बात की पूरी योजना कर लेता है कि स्वाभाविक परिस्थिति का स्वरूप कैसा होगा, प्रेक्षको की उपस्थिति से उत्पन्न होने वाले समस्याओं का समाधान कैसे किया जा सकता है, आंकड़ों में कहां तक सादृश्यमूलता होगी, आदि। इस तरह से हम देखते हैं कि असहभागी प्रेक्षण सहभागी प्रेक्षण से भिन्न है इन दोनों में प्रमुख में विभिन्नता निम्नांकित है -

(i) यद्यपि सहभागी प्रेक्षण तथा असहभागी प्रेक्षण दोनों ही स्वाभाविक परिस्थितियों में ही किए जाते हैं, फिर भी पहले तरह के परीक्षण में प्रेक्षक व्यक्तियों की क्रियाओं के साथ सक्रिय भाग लेता है जबकि दूसरे तरह के प्रेक्षण में वह ऐसी क्रियाओं के साथ भाग नहीं लेता है। निष्क्रिय रूप से वह इन क्रियाओं का मात्र परीक्षण करता है।

(ii) सहभागी प्रेक्षण में प्रेक्षक का परिचय प्रायः छिपा रहता है परंतु असहभागी प्रेक्षण में प्रेक्षक प्रायः व्यक्तियों के समूह के बीच बैठकर उनके व्यवहारों का प्रेक्षण करता है,अतः उनका परिचय छिपा रहने का प्रश्न ही नहीं उठता है।

(iii) सहभागी प्रेक्षण और संगठित किया और संरक्षित होता है जबकि असहभागी प्रेक्षण संगठित या संरचित होता है।

असहभागी प्रेक्षण के कुछ गुण तथा दोष है। इसके प्रमुख गुण निम्नांकित है-

(i) असहभागी प्रेक्षण चुंकि संरचित या संगठित होता है, इसलिए इससे प्राप्त आंकड़े अधिक विश्वसनीय निरुपक अलीगढ़ तथा निर्भर योग्य होते हैं। संरचित होने से प्रेक्षक पर चढ़ के भिन्न-भिन्न पहलुओं के बारे में अच्छी तरह से सोच विचार करता है और उससे संबंधित सभी प्रक्रियाओं के बारे में पहले से एक निर्णय कर रखता है।

(ii) असहभागी प्रेक्षण में प्रेक्षक सामाजिक व्यवहार के किसी विशेष पहलू पर अधिक ध्यान दे पाता है तथा उससे संबंधित जांच प्रश्नों का समाधान ढूंढने के लिए उसे अधिक से अधिक अवसर भी मिलता है। इसलिए कुछ समाज में वैज्ञानिकों ने इसे सहभागी प्रेक्षण की तुलना में अधिक वैज्ञानिक माना है।

असहभागी प्रेक्षण के प्रमुख अवगुण निम्नांकित हैं-

(i) असहभागी प्रेक्षण का सबसे बड़ा दोष जो कुछ समाज मनोवैज्ञानिकों ने बतलाया है, वह यह है कि इस तरह के परीक्षण में व्यक्तियों का व्यवहार जिसका परीक्षण किया जा रहा है, बिल्कुल स्वाभाविक नहीं होता है क्योंकि व्यक्तियों के मन में हमेशा यह बात रहती है कि उनके व्यवहार का प्रेक्षण किया जा रहा है।

(ii) कुछ समाज मनोवैज्ञानिकों ने यह भी कहा है कि जिस तरह सहभागी प्रेक्षण में परिस्थिति बिल्कुल ही स्वाभाविक होता है, उसी तरह की परिस्थिति असहभागी प्रेक्षण में नहीं हो पाता है। इस परिस्थिति में

उपस्थित सभी व्यक्ति इस बात से काफी सचेत रहते हैं कि कोई अजूबा व्यक्ति उनके बीच है जो पता नहीं क्या क्या देख रहा है, सुन रहा है तथा समझ रहा है।

इस तरह से हम देखते हैं कि प्रेक्षण विधि का प्रयोग समाज मनोवैज्ञानिक सामाजिक व्यवहार के अध्ययन में सहभागी या असहभागी रूप में करते हैं। इस विधि की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि प्रेक्षक उचित विधि अपनाकर सामाजिक व्यवहार का अध्ययन करता है या नहीं। सामान्यत: समाज मनोवैज्ञानिक सहभागी प्रेक्षण का उपयोग उसी परिस्थिति में अधिक करते हैं जब वे किसी दूसरे स्रोत से आंकड़ों का संग्रहण नहीं कर सकते हैं।

1.2.4. व्यक्ति अध्ययन विधि-

व्यक्ति अध्ययन विधि एक ऐसी विधि है जिसमें किसी सामाजिक इकाई के जीवन की घटनाओं का अन्वेषण तथा विश्लेषण किया जाता है। सामाजिक इकाई के रूप में किसी एक व्यक्ति, एक परिवार, एक संस्था, एक समुदाय आदि के बारे में अध्ययन किया जा सकता है। व्यक्ति-अध्ययन का उद्देश्य वर्तमान को समझना, उन भूतकालीन घटनाओं का पहचानना जिनके कारण वर्तमान स्थिति पैदा हुई तथा उन कारकों को जानना जो भविष्य में परिवर्तन लाने के लिए आवश्यक है।

व्यक्ति-अध्ययन विधि में किसी एक व्यक्ति के बारे में अध्ययन न होकर बल्कि एक प्रकार के व्यक्ति के बारे में अध्ययन होता है। अध्ययन के बाद समान प्रकार के केस में इसका सामान्यीकरण किया जा सकता है।

व्यक्ति अध्ययन की प्रकृति

व्यक्ति-अध्ययन का मूलत: प्रयोग मेडिकल के क्षेत्र में शुरू हुआ था। किसी रोगी के पूर्व-विकास, स्वास्थ्य आदि के सम्बन्ध में अध्ययन किया जाता है। फ्रायड ने अपने प्रयोज्यों के व्यक्तित्व सम्बन्धी समस्याओं के समाधान में उनकी सहायता के लिए व्यक्ति-अध्ययन का प्रयोग किया। परामर्शदाता तथा सामाजिक कार्यकर्ता किसी विशेष समस्या के निदान तथा उसके समाधान के लिए व्यक्ति- अध्ययन का प्रयोग करते हैं।

व्यक्ति-अध्ययन गुणात्मक प्रकार का शोध है। इसमें किसी एक व्यक्ति, एक परिवार, एक संस्था, एक समुदाय आदि का गहन तथा विस्तृत अध्ययन किया जाता है। इस प्रकार के शोध में लम्बवत उपागम (Longitudinal Approach) का अनुसरण किया जाता है। इस प्रकार के शोध में आंकड़ो का संकलन अवलोकन, साक्षात्कार, प्रश्नावली, रिकार्ड किये गये साक्ष्यों (प्राथमिक तथा द्वितीयक स्रोतों) आदि के द्वारा किया जाता है।

व्यक्ति-अध्ययन के पद

1. सबसे पहले प्रत्यक्ष अवलोकन के द्वारा किसी व्यक्ति या सामाजिक इकाई के वर्तमान स्थिति के बारे में निश्चय किया जाता है। इस पद में अवलोकनकर्ता केवल सतही अवलोकन करके उसके बारे में विवरण प्रस्तुत करता है। यदि किसी अपराधी बालक का व्यक्ति-अध्ययन किया जाता है तो उसकी शारीरिक रचना, संज्ञानात्मक तथा गैर-संज्ञानात्मक कारकों का अध्ययन प्रत्यक्ष अवलोकन तथा

मानवीकृत परीक्षणों जैसे बुद्धि, अभिक्षमता, अभिवृत्ति, मूल्यों, व्यक्तित्व, रूचि आदि का अध्ययन किया जाता है।

2. प्रयोज्य की समस्या के लिए सबसे अधिक जिम्मेदारी सम्भावित कारणों को निश्चित किया जाता है या पहचान की जाती है। इसके बाद एक या आवश्यकता होने पर एक से अधिक परिकल्पनाएं बनायी जाती है। यह परिकल्पनाएं दूसरे समान समस्या के ग्रसित प्रयोज्यों के आधार पर बनायी जाती है । यदि हम किसी पिछड़े बालक का व्यक्ति-अध्ययन करना है तो इसके कई कारण हो सकते हैं - जैसे घर के वातावरण का ठीक न होना, स्कूल में सही पढ़ाई न होना, मानसिक क्षमता में कमी होना। इन कारणों के आधार पर परिकल्पनाओं का निर्माण किया जा सकता है।
3. इस पद में परिकल्पनाओं का परीक्षण किया जाता है। उन सम्भावित कारणों को दूर किया जाता है जिसके कारण समस्या पैदा हुयी है। अनुसंधानकर्ता प्रयोज्य की वर्तमान स्थिति तथा उसके बीते हुए समय (इतिहास) के बारे में जानने का प्रयास किया जाता है। व्यक्तिगत अभिलेखों जैसे डायरी तथा पत्रों का प्रयोग किया जा सकता है। साक्षात्कार तथा प्रश्नावली के द्वारा वर्तमान स्थिति का पता लगाया जाता है। षिक्षकों, मित्रों, अभिभावकों, भाई-बहनों तथा दूसरे परिवार के लोगों के द्वारा आंकड़ो को एकत्रित किया जा सकता है।
4. परिकल्पनाओं के परीक्षण के बाद कारणों का निदान किया जाता है। इन कारणों को ध्यान में रखते हुये कुछ उपचारात्मक तरीकों को सुझाया जाता है।
5. अन्त में प्रयोज्य के लिए अनुगामी सेवाओं ;थ्वससवू.नचद्ध को दिया जाता है । प्रयोज्य का दूसरी बार परीक्षण किया जाता है तथा यह देखने का प्रयास किया जाता है कि जो उपचारात्मक सुझाव दिये गये थे उसके प्रयोग से समस्या का समाधान हुआ कि नहीं। यदि परिवर्तन सकारात्मक होते हैं तो समस्या का निदान सही समझा जाता है। यदि समस्या का समाधान नहीं होता हेै तो फिर से दूसरे सम्भावित कारणों के आधार पर परिकल्पनाओं का निर्माण किया जाता है। इसके बाद परिकल्पनाओं का परीक्षण किया जाता है तथा कारणों का निदान किया जाता है तथा उपचार सुझाए जाते हैं।

व्यक्ति-अध्ययन के गुण एवं दोष

व्यक्ति-अध्ययन के गुण

1. व्यक्ति अध्ययन में लम्बवत उपागम (Longitudinal Approach) का प्रयोग किया जाता है। अध्ययन के लिए चयन किए गये प्रयोज्य का गहन रूप से अध्ययन संभव होता है क्योकि इसमें एक समय में किसी एक व्यक्ति या सामाजिक इकाई का ही अध्ययन किया जाता है।
2. व्यक्ति अध्ययन विधि से प्राप्त तथ्यों को शोधकर्ता विश्वास के साथ सामान्यीकृत तो नहीं कर पाता है लेकिन इन तथ्यों के आधार पर वह आसानी से कुछ परिकल्पनाओं का सृजन कर पाता है।

3. व्यक्ति अध्ययन विधि प्राप्त तथ्यों के आधार पर भविष्य में किए जाने वाले अध्ययनों में उत्पन्न होने वाले कठिनाइयों को पहले से ही समझा जा सकता है तथा उसे दूर करने के उपायों का वर्णन किया जा सकता है। व्यक्ति अध्ययन विधि के कई दोष भी है जो निम्नलिखित हैं –

व्यक्ति अध्ययन के दोष -

1. व्यक्ति अध्ययन विधि में आत्मनिष्ठता अधिक पायी जाती है, इस कारण निश्कर्ष की वैधता प्रभावित होती है। इस विधि में शोधकर्ता तथा अध्ययन के लिए चुने गये व्यक्ति तथा सामाजिक इकाई के बीच अधिक घनिष्ठता होने के कारण जो भी तथ्य प्राप्त किए जाते हैं उनका सही सही तथा वस्तुनिष्ठ मूल्यांकन नहीं हो पाता है।
2. व्यक्ति-अध्ययन विधि में शोधकर्ता की पूर्ण जवाबदेही इस बात की होती है कि वह व्यक्ति या सामाजिक इकाई का पूरा इतिहास तैयार करे। शोध् ाकर्ता सामाजिक इकाई के बारे में बहुत सारी सूचनाओं की तैयारी करता है तथा उनका विश्लेषण करता है। शोधकर्ता द्वारा प्राप्त की गयी सूचनाओं की वैधता की जांच करने का कोई तरीका इस विधि में नहीं बतलाया गया है। इस कारण यह विधि पूर्णरूप से वैज्ञानिक विधि नहीं मानी जा सकती है।
3. इस विधि में समय बहुत लगता है क्योंकि शोधकर्ता को प्रयोज्य के सभी पहलुओं भूत, वर्तमान तथा भविश्य को ध्यान में रखकर अध्ययन करना होता है। यह एक खर्चीली विधि भी है क्योंकि इसमें धन की बर्बादी बहुत होती है।
4. इस विधि में शोधकर्ता व्यक्ति से उनके गत अनुभूतियों एवं घटनाओं के बारे में पूछकर इतिहास तैयार करता है। बाद में इन अनुभूतियों का विश्लेषण का निश्कर्श पर पहु ॅचा जाता है। व्यक्ति अपने गत अनुभूतियों को विशेषकर उन अनुभूतियों जो काफी पहले घटित हुयी है उनको सही तरीके से नहीं बतला पाता है। सूचनाएं वैध नहीं हो पाती है।
5. शोधकर्ता किसी एक व्यक्ति या सामाजिक इकाई का अध्ययन कर निष्चित निश्कर्श पर पहु ॅच जाना चाहता है। किसी एक केस के अध्ययन के आधार पर लिया गया निष्कर्ष सही नहीं होता। इस प्रकार से किए गये अध्ययन से प्राप्त निष्कर्षों का सामान्यीकरण नहीं किया जा सकता है।

किसी समुदाय का अध्ययन यदि हम व्यक्ति-अध्ययन से करें तो इसको इस प्रकार से किया जा सकता है। एक साथ एक भौगोलिक स्थान में रहने वाले समूह के व्यक्तियों के बारे मे गहन अवलोकन तथा विश्लेषण किया जाता है। इस प्रकार के अध्ययन में किसी समुदाय के लोगों के विभिन्न तथ्यों जैसे रहने का स्थान, आर्थिक क्रियाकलाप, जलवायु तथा प्राकृति संसाधनों के बारे में, ऐतिहासिक विकास, जीवन शैली, सामाजिक संरचना, जीवन मूल्यों तथा ऐसे लोगों का अध्ययन जिनका उस समुदाय पर प्रभाव हो आदि का अध्ययन किया जाता हे। इसमें उन सामाजिक संस्थाओं का मूल्यांकन भी किया जाता है जो मनुष्यों की मौलिक आवश्यकताओं को पूरा करती है।

1.2.5. सर्वे विधि-

सर्वे विधि को सर्वेक्षण विधि भी कहा जाता है। इस विधि का प्रयोग समाज मनोवैज्ञानिकों द्वारा सर्वाधिक किया जाता है। आजकल इसका प्रयोग मीडिया जगत द्वारा भी राजनैतिक परिणामों जैसे कि चुनाव परिणाम अथवा लोकप्रिय नेता कौन है? जैसे उद्देश्यों के लिए भी किया जा रहा है। सर्वे विधि का प्रयोग मनोवैज्ञानिक प्रमुख रूप से मनोवृत्ति के अध्ययन हेतु करते हैं। समाज में विभिन्न मुद्दों पर लोगों की राय लेने के रूप में इस विधि की शुरूआत हुई थी। कानून व्यवस्था, आरक्षण, पठन-पाठन विधि, बच्चों का पालन-पोषण, दहेज प्रथा, धार्मिक भावनाए आदि जैसे मुद्दों पर लोगों की मनोवृत्ति के विश्लेषण हेतु सर्वे विधि द्वारा ऑंकड़े इकट्ठा किये जाते हैं एवं एक खास निष्कर्ष पर पहुचा जाता है।

सर्वे विधि का प्रयोग करने से पूर्व जिस समस्या अथवा विषय पर अध्ययन किया जा रहा है। उससे संबंधित जनसंख्या को परिभाषित कर लिया जाता है तथा इस जनसंख्या के एक बड़े समूह को, जिसमें उस परिभाषित जनसंख्या के समस्त गुण विशेषताए विद्यमान होती हैं को प्रतिनिधिक समूह मानकर प्रतिदर्श चयन कर लिया जाता है। तथा प्रतिदर्श में सम्मिलित लोगों की राय उपयुक्त विधि द्वारा संग्रहित का ली जाती है। संग्रहित जानकारी एवं ऑंकड़ों का उपयुक्त विधि द्वारा विश्लेषण कर निष्कर्ष निकाला जाता है। उदाहरण के लिए यदि कोई अध्ययनकर्ता 'बच्चों को मोबाइल की सुविधा उपलब्ध कराना' विषय पर शिक्षक, माता-पिता, राजनीतिज्ञ, समाजशास्त्री, मनोवैज्ञानिक आदि की राय जानना चाहता है तो वह इन श्रेणियों के लोगों के प्रतिनिधिक समूहों का चयन कर उनसे इस विषय पर राय लेकर ऑंकड़े संग्रहित कर तदनुपरान्त विश्लेषण कर एक खास निष्कर्ष पर पहुंच सकता है।

सर्वे विधि की ऑंकड़ा संग्रहण विधियां

सर्वे विधि में विभिन्न प्रकार के ऑंकड़ों के संग्रहण की प्रमुख रूप से पॉच विधियॉ हैं।

- साक्षात्कार सर्वे
- मेल सर्वे
- पैनल सर्वे
- टेलीफोन/मोबाइल सर्वे
- इन्टरनेट सर्वे

1. **साक्षात्कार सर्वे विधि -** इस विधि में किसी समस्या के बारे में ऑंकड़े संग्रह करने के लिए प्रतिदर्श में सम्मिलित किये गये सभी प्रतिभागियों का एका-एक करके अध्ययनकर्ता साक्षात्कार लेता है। साक्षात्कार एक उद्देश्यपूर्ण बातचीत होती है। इसमें प्रमुख रूप से अध्ययनकर्ता प्रतिभागी से कुछ पूर्व निर्धारित प्रश्न पूछता है। इन प्रश्नों के उत्तरों को संग्रहित कर लिया जाता है। सभी व्यक्तियों द्वारा दिये गये उत्तर के आधार पर अध्ययनकर्ता एक निश्चित निष्कर्ष पर पहुंचता है।

2. **मेल सर्वे विधि -** इस विधि में अध्ययनकर्ता अध्ययन विषय से संबंधित प्रश्नों की एक पुस्तिका छपवाकर उसे डाक द्वारा प्रतिभागियों के घर भेज देता है। इस पुस्तिका में प्रश्नों के उत्तर देने का तरीका एवं निर्देश छपा हुआ होता है। प्रतिभागियों प्रश्नों के उत्तर देकर इस पुस्तिका को पुन: डाक द्वारा अध्ययनकर्ता को लौटा देते हैं। इस प्रकार अध्ययन हेतु ऑंकड़ों का संग्रह हो जाता है।
3. **पैनल सर्वे विधि-** इस विधि में व्यक्तियों के एक प्रतिनिधिक समूह जिसे कि प्रतिदर्श कहा जाता है का कई बार विभिन्न समय अन्तराल पर साक्षात्कार लिया जाता है। इस विधि की खास विशेषता यह है कि प्रतिनिधिक समूह से एक ही समस्या से संबंधित प्रश्नों के उत्तर अलग-अलग समय अन्तराल पर हूबहू पूछे जाते हैं एवं प्राप्त उत्तरों को ऑंकड़ों के रूप में सम्मिलित कर लिया जाता है। इस विधि से एक अतिरिक्त लाभ यह होता है कि अध्ययनकर्ता को यह स्पष्ट रूप से ज्ञात हो जाता है कि वे कौन से कारक हैं जो समस्या के प्रति व्यक्तियों की मनोवृत्ति में अन्तर लाते हैं।
4. **टेलीफोन/मोबाइल सर्वे विधि -** इस विधि में अध्ययकर्ता अध्ययन में सम्मिलित किये गये व्यक्तियों द्वारा ही प्रश्नों के उत्तर टेलीफोन पर पूछ लेता है। इस विधि द्वारा सर्वाधिक शीघ्रता से ऑंकड़ा संग्रहण का कार्य पूर्ण हो जाता है। परन्तु देखा गया है कि टेलीफोन पर व्यक्ति प्रश्नों का सही-सही जवाब विशेषकर वैसे प्रश्नों का जवाब जिसका सम्बंध नैतिकता से होता है, नहीं दे पाता है। वे देश जहॉं टेलीफोन अथवा मोबाइल की सुविधा बहुत कम व्यक्तियों के पास उपलब्ध है इस विधि का उपयोग नहीं हो पाता है।
5. **इन्टरनेट सर्वे विधि -** इस विधि में मोबाइल एवं मेल सर्वे विधि दोनों ही की विशेषताए सम्मिलित हैं। इन्टरनेट पर मेल के साथ ही चैट की सुविधा सहज ही उपलब्ध है। तथा इसमें प्रश्नों को छपे हुए फार्मेट में लोगों के पास भेज पाना अत्यन्त ही सहज है। इस विधि द्वारा समय एवं श्रम दोनों की ही बचत होती है। इस विधि का दोष यह है कि यह सुविधा भी सभी देशों के सभी नागरिकों के पास उपलब्ध नहीं होने के कारण प्रतिनिधिक ऑंकड़ों का संग्रह इस विधि से भी पूरी तरह संभव नहीं है।

सर्वे विधि के गुण एवं दोष

इस विधि द्वारा प्राप्त परिणामों में सामान्यीकरण का गुण पाया जाता है क्योंकि चयनित प्रतिदर्श आकार में बड़े होने के कारण उन पर प्राप्त निष्कर्षो को जनसंख्या के बड़े समूह पर लागू किया जा सकता है। इस विधि से जसे ऑंकड़े संग्रह किये जाते हैं उसकी वैधता पर लोगों को शक बना रहता है। उदाहरण के लिए मेल सर्वे द्वारा प्राप्त सूचनायें सही हैं इस पर निश्चिंत होना संभव नहीं है क्योंकि हो सकता है कि प्रश्नों के जवाब उचित व्यक्ति द्वारा न दिया जा कर किसी और द्वारा दिया गया हो। ऐसा भी संभव है कि व्यक्ति कुछ ही प्रश्नों का जवाब देकर प्रश्न पुस्तिका को लौटा दें। अत: यह कहा जा सकता है कि सर्वे विधि द्वारा प्राप्त ऑंकड़ों की वैधता बहुत अधिक नहीं होती है। इसके बावजूद इसके महत्व को नकारा नहीं जा सकता है।

1.2.6. क्षेत्र अध्ययन विधि -

प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक करलिंगर ने क्षेत्र अध्ययन को परिभाषित करते हुए कहा है कि 'क्षेत्र अध्ययन एक ऐसा अप्रयोगात्मक अनुसंधान है जिसका उद्देश्य वास्तविक सामाजिक संरचना में समाजशास्त्रीय, मनोवैज्ञानिक एवं शैक्षिक चरों में अन्त:क्रियाओं एवं उसके संबंधों की खोज करना है' ('Field studies are non-experimental scientific inquires aimed at discovering the relations and interactions among sociological, psychological and educational variables in real social structure.' - Kerlinger, 1986)। सामान्य रूप में क्षेत्र अध्ययन विधि का मूल अर्थ उसके नाम 'क्षेत्र' में ही विद्यमान है। इस विधि में क्षेत्र से तात्पर्य अध्ययन की वास्तविक परिस्थिति से होता है। उदाहरण के लिए यदि कोई अध्ययनकर्ता स्कूल के विद्यार्थियों के उनके शिक्षक के साथ की जा रही बातचीत के पैटर्न का अध्ययन स्कूल की वास्तविक परिस्थिति में जाकर करता है तो वह क्षेत्र अध्ययन विधि का एक उपयुक्त उदाहरण होगा। इसी प्रकार इस विधि में मानव व्यवहारों का कॉलेज, फैक्टरी, ऑफिस आदि में स्वाभाविक परिस्थिति में किया जाता है। इसका मतलब यह हुआ कि मनोविज्ञान की इस विधि में व्यवहार के जिन पहलुओं के बारे में मनोवैज्ञानिक अध्ययन करते हैं, उनमें अपनी ओर से किसी तरह का जोड़-तोड़ नहीं किया जाता है बल्कि उसका हू-ब-हू ठीक उसी रूप में अध्ययन किया जाता है जिस रूप में वह घटित होता है।

क्षेत्र अध्ययन विधि के गुण एवं दोष

इस अध्ययन विधि द्वारा प्राप्त निष्कर्ष अधिक वैध होते हैं क्योंकि अध्ययन स्वाभाविक एवं वास्तविक क्षेत्र-परिस्थिति में किया गया होता है। इसका दोष यह है कि अध्ययन परिस्थिति पर अध्ययनकर्ता का कोई नियंत्रण नहीं होने के कारण वह अध्ययन के दौरान उपस्थित होने वाले विघ्नों को नियंत्रित करना संभव नहीं हो पाता है, यदि अध्ययनकर्ता परिस्थिति को नियंत्रित करने की कोशिश करता है तो वह परिस्थिति अवास्तविक हो जाती है उसकी स्वाभाविकता समाप्त हो जाती है।

1.2.7. समाजमितीय विधि

समाजमिति प्रविधि के निर्माण का प्रसिद्ध श्रेय समाजशास्त्री मोरेनो को जाता है। तकनीकी के मूल रूप का विवरण प्रस्तुत करते हुए मेरोने ने बताया कि इस तकनीकी के छः आवश्यक अवयव या पक्ष हैं-

1. इस तकनीकी के माध्यम से किसी समूह के सदस्यों से प्रोडक्ट संग्रह सदस्य के समक्ष समूह की सीमा को परिभाषित करने के बाद किया जाता है।
2. व्यक्ति के समूह की किसी एक या अथवा सीमित संख्या वाली क्रियाओं जैसे पढ़ने कार्यालय में कार्य करने, सिनेमा जाने, यात्रा करने का उल्लेख मापदंड के रूप में किया जाता है।
3. प्रत्येक व्यक्ति को यह चुनाव करना पड़ता है कि वह किन किन व्यक्तियों के साथ मापदंडईय क्रिया करना स्वीकार करेगा और किन किन व्यक्तियों के साथ इन क्रियाओं को करना नहीं

चाहेगा। व्यक्तियों की स्वीकृति और अस्वीकृति के संबंध में सदस्य को मनचाहे संख्या में चुनने की स्वतंत्रता दी जाती है।

4. यह चुनाव सदस्य एकांत में निजी तौर पर गोपनीयता के साथ करता है और अनुसंधानकर्ता के अतिरिक्त अन्य किसी को उसके द्वारा चुने गए नाम या नामों की जानकारी नहीं दी जाती।
5. चुनाव के समय उसके समक्ष जो प्रश्न प्रस्तुत किया जाता है उसे ऐसी भाषा में व्यक्त किया जाता है कि प्रयोज्य को वह आसानी से समझ में आ जाए।
6. इन स्वीकृति और अस्वीकृति यों का उपयोग उस समूह को पुनर गठित करने के लिए किया जाता है।

समाजमिति किस मूल रूप का उपयोग जिस रूप में किया जाता है वह मुरैनो द्वारा प्रतिपादित रूप से भिन्न है। आज कहीं भी समाजमिति से प्राप्त शुद्ध तत्वों के आधार पर समूह को पुनरगठित नहीं किया जाता, क्योंकि ऐसा करना अधिकांश स्थितियों में असंभव है। दूसरी ओर बहुत कम अनुसंधानों में व्यक्ति की सीमित संख्या में दूसरों को स्वीकार और अस्वीकार करने का विकल्प समाजमिती प्रक्रिया के अंतर्गत प्रस्तुत किया जाता है। आजकल इस तकनीकी से किए जाने वाले अनुसंधान में एक, दो या तीन लोगों को किसी क्रिया के लिए स्वीकार करने और उतने ही लोगों को अस्वीकृत करने का विकल्प किया जाता है। तीसरी बात यह है कि समाजमिती तकनीकी के उपयोग के लिए यह भी अनिवार्य नहीं माना जाता कि चुनने वाले के समक्ष समूह की सीमा स्पष्ट कर दी जाए, और साथ ही साथ यह भी आवश्यक नहीं माना जाता की आमने-सामने अंतरक्रिया करने वाले और छोटे आकार के समूह को ही लिया जाए। बड़ी संख्या वाले समूहों में भी इस तकनीक द्वारा व्यक्तियों के स्वीकृत या अस्वीकृत विकल्पों का उपयोग किया जाता है। इस तरह समाजमिती तकनीक के वर्तमान रूप में किसी भी क्रिया के लिए किसी भी प्रकार के समूह में पाए जाने वाले व्यक्तियों द्वारा अन्य व्यक्तियों को गोपनीय ह्रदय से स्वीकार और अस्वीकार करने का विकल्प देकर प्रदत्त प्राप्त किया जाता है। इसीलिए कालिंजर ने समाजमिति की परिभाषा करते हुए बताया है कि इस तकनीकी में किसी समूह के प्रत्येक सदस्य दी हुई संख्या में, गोपनीय रूप से उन व्यक्तियों के नामों की जानकारी की जाती है जिनको वह किसी निर्धारित संकृत्य में सहभागी बनाने के लिए उद्धत है और साथ ही साथ दी हुई संख्या में से उन लोगों के भी नाम जानने की कोशिश की जाती है जिन के साथ वह उस संकृत्य में सहभागी बनने के लिए उद्दत नहीं है। समूह कैसा हो, सहभागी होने के लिए कैसी क्रिया हो और कितने लोगों के नाम संस्कृतय के लिए स्वीकृत और कितने को अस्वीकृत करने का विकल्प दिया जाए, अनुसंधानकर्ता के उद्देश्य और अभिकल्प पर निर्भर करता है। इस प्रकार इस तकनीकी से किसी संकृत्य में सहभागी होने की वरीयता और सहभागी न होने की वरीयता की सूचना प्राप्त होती है।

समाजमिति विधि की विशेषताएं :

समाजमिति एक ऐसी तकनीक है जिसमें किसी समूह के प्रत्येक व्यक्ति से व्यक्ति के आत्मनिष्ठ अनुभवजन्य मापदंड के आधार पर निर्मित उसकी उन भावनाओं को ज्ञात किया जाता है जो वह दूसरे व्यक्तियों के बारे में गोपनीय रीति से रखता है। यह तकनीकी सीमित सामाजिक परिवेशों में बहुत सीमित

संख्या वाले सामाजिक समूहों के अध्ययन के लिए उपयोगी है। अंतर वैयक्तिक संबंधों का अध्ययन करने के लिए ही इस विधि का उपयोग किया जा सकता है। व्यक्ति प्रत्यक्षीकरण के अध्ययन में व्यक्ति के गुणों की विशेषताओं की रेटिंग कराकर प्रोडक्ट प्राप्त करने की इस तकनीकी से मिलती जुलती है।

यह तकनीकी अनुसंधानकर्ता के दृष्टिकोण से अत्यंत सरल, कम खर्चीली और थोड़े समय में प्रचुर मात्रा में प्रदत्त संकलित कराने वाली है। प्रयोग के दृष्टिकोण से उसके विकल्पों की गोपनीयता बने रहने का आश्वासन मिल जाने के बाद अत्यंत रुचिकर और अध्ययन में भाग लेने के लिए प्रेरणादायी है। मात्र यही एक ऐसी तकनीक है जिसके माध्यम से एक ही समय किसी समूह के अंतर क्रियात्मक प्रतिरूप और उस समूह में प्रत्येक व्यक्ति के रोगात्मक संक्रत्य का निरूपण करने के लिए प्रदत्त प्राप्त किया जा सकता है।

समाजमिति तकनीक का प्रयोजन समूह में व्यक्ति विशेष के सामाजिक सम्बन्धों का अध्ययन करना है। इसके द्वारा विशेषकर, एकाकी और उपेक्षितों तथा अस्वीकृत व्यक्तियों की व्यक्तित्व सम्बन्धी समस्याओं का पता लगाने के लिए किया जाता है। व्यक्तियें के सामाजिक व्यवहार का आकलन करने हेतु यह तकनीक सूचना प्राप्त करने का एक उपयुक्त माध्यम है। इस तकनीक में यह प्रयास किया जाता है कि समूह के सदस्यों में, उनसे यह पूछकर कि वे विभिन्न स्थितियों में किसे चुनेंगे या नहीं चुनेंगे। इस तकनीक का प्रयोग विभिन्न शिक्षण स्थितियों में, सामाजिक समायोजन, सामूहिक गतिकीय, अनुशासन तथा अन्य सामाजिक सम्बन्धों की समस्याओं के अध्ययन में प्रयोग किया जाता है। समूहों के अन्दर सामाजिक सम्बन्धों के मापन के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार की तकनीकों का प्रयोग किया जाता है। शिक्षा के क्षेत्र में निम्नलिखित तकनीकों का प्रयोग मुख्य रूप से किया जाता है।

1.2.8. सारांश

उपरोक्त अनुसंधान विधियों का प्रयोग कक्षा-कक्षीय गतिविधियों में अध्यापक व्यवहार, अनुशासन, अभिप्रेरणा आदि के मापन में अधिक किया जा रहा है. उपरोक्त समस्त विधियाँ सामाजिक विज्ञानों के लिए अंत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं. जिनके प्रयोग का ज्ञान किये बिना कोई भी शोधकर्ता एक समाजोपयोगी शोध नहीं कर सकता है.दैनिक जीवन में हम इन प्रविधियों का प्रयोग जाने अनजाने प्रतिदिन करते रहते हैं. किसी व्यक्ति की रैंकिंग या उसके पसंद अथवा नापसंद की जाने वाली वस्तुओं, व्यक्तियों या स्थानों को क्रम में रखते समय हम इन्ही विधियों का उपयोग करते हैं.

1.2.9. स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. प्रयोगात्मक प्रविधि को समझाईये ?
2. प्रयोगात्मक प्रविधि के अन्तरगत आने वाली समस्त विधियों का उदाहरण सहित वर्णन करें?
3. प्रेक्षण विधि, प्रेक्षण विधि की प्रक्रिया तथा प्रेक्षण विधि के अंतर्गत आने वाले विभिन्न प्रकारों का वर्णन करें?
4. व्यक्ति अध्ययन प्रविधि की प्रक्रिया, स्वरुप एवं प्रकारों का विस्तित वर्णन करें?

5. सर्वे /सर्वेक्षण विधि एवं इसकी विशेषता, गुण एवं दोष का वर्णन करें?
6. क्षेत्र अध्ययन विधि के स्वरुप गुण, दोष एवं इसकी प्रक्रिया को समझाईये?
7. समाजमिति विधि का परिचय, एवं इसके अंतर्गत आने समस्त विधियों के साथ-साथ इसकी प्रक्रिया का भी वर्णन करें?

1.2.10. शब्दावली :

प्रयोगात्मक, प्रेक्षण, समाजमिति, सोसिओग्राम, क्षेत्र अध्ययन, व्यक्ति अध्ययन, सर्वेक्षण विधि

1.2.11. संदर्भ ग्रंथ सूची :

सिंह, ए.के.(2008). सामाजिक विज्ञान में शोध विधियाँ. मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली.

रावत, एच.(2013). सामाजिक शोध की विधियाँ.रावत प्रकाशन. जयपुर.

त्रिपाठी, एल.बी.(2012). मनोवैज्ञानिक अनुसंधान पद्धतियाँ. एचपी भार्गव बुक हाउस, आगरा.

कपिल, एच.के.(2004). व्यवहारिक अनुसंधान में शोध विधियाँ. विनोद पुस्तक मंदिर. आगरा.

आर, *मुखर्जी. (1969).* सामाजिक शोध एवं सांख्यिकी. सरस्वती सदन, नई दिल्ली.

इकाई-3 समकालीन सामाजिक परिवर्तन एवं वर्तमान सामाजिक समस्याएं

इकाई की रुपरेखा

1.3.0. उद्देश्य
1.3.1. प्रस्तावना
1.3.2. सामाजिक परिवर्तन एवं विशेषताएं
1.3.3. सामाजिक परिवर्तन के महत्वपूर्ण स्रोत
1.3.4. सामाजिक परिवर्तन की अवधारणाएं
1.3.5. सामाजिक परिवर्तन के सिद्धांत
1.3.6. सामाजिक परिवर्तन के प्रकार या प्रारूप एवं कारक
1.3.7. सारांश
1.3.8. स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न
1.3.9. शब्दावली
1.3.10. संदर्भ ग्रंथ सूची

1.3.0. उद्देश्य कथन

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरांत आप :

- सामाजिक परिवर्तन एवं उनकी विशेषताओं से परिचित हो जायेंगे।
- सामाजिक परिवर्तन के महत्वपूर्ण स्रोतों को जान जायेंगे।
- सामाजिक परिवर्तन की विभिन्न अवधारणाओं से परिचित हो जायेंगे।
- सामाजिक परिवर्तन के सिद्धांतों का ज्ञान हो जायेगा।
- सामाजिक परिवर्तन के प्रकार या प्रारूपों एवं कारको का ज्ञान हो जायेगा।

1.3.1. प्रस्तावना

मानव व्यवहार संसार में सबसे जटिल प्रक्रिया है, समाज मनोविज्ञान में इसी जटिल प्रक्रिया का वैज्ञानिक अध्ययन समग्रता में किया जाता है। सामाजिक मनोविज्ञान, मनोविज्ञान कि एक शाखा है किसके नाम से ही पता चलता है कि यह जीवन के विभिन्न पक्षों से संबंधित है। लोग एक दूसरे के साथ परस्पर क्रिया कैसे करते हैं? दूसरों के बारे में हम कैसे सोचते हैं? हमारा व्यवहार दूसरों को कैसे प्रभावित करता है तथा हम दूसरों के व्यवहार से किस हद तक प्रभावित होते हैं आदि बिंदुओं पर सामाजिक मनोविज्ञान गहन दृष्टि रखता। समाज की संरचना प्रारंभ से ही काफी जटिल है। हमारी विभिन्न क्रियाएं एकांकी न होकर परस्पर निर्भर होती हैं। सामाजिक व्यवहार भी विज्ञान से अछूता नहीं है समय के साथ

तकनीकी विकास ने अनेक नई सामाजिक समस्याओं को जन्म दिया है। नित नई-नई उत्पन्न हो रही समस्याओं के समाधान करने के लिए समाज मनोविज्ञान का ज्ञान होना वर्तमान समाज के लिए अत्यंत आवश्यक हो गया है। आज मनोविज्ञान में हम विभिन्न शोध प्रवृतियों के माध्यम से समाज की विभिन्न समस्याओं के बारे में अध्ययन करते हैं तथा उनके स्थाई उपचार का मार्ग प्रशस्त करते हैं।

1.3.2. सामाजिक परिवर्तन एवं विशेषताएं

सामाजिक परिवर्तन के अन्तर्गत हम मुख्य रूप से तीन तथ्यों का अध्ययन करते हैं- (क) सामाजिक संरचना में परिवर्तन, (ख) संस्कृति में परिवर्तन एवं (ग) परिवर्तन के कारक। सामाजिक परिवर्तन के अर्थ को स्पष्ट करने के लिए कुछ प्रमुख परिभाषाओं-

मकीवर एवं पेज (R.M. MacIver and C.H. Page) ने अपनी पुस्तक Society में सामाजिक परिवर्तन को स्पष्ट करते हुए बताया है कि “समाजशास्त्री होने के नाते हमारा प्रत्यक्ष संबंध सामाजिक संबंधों से है और उसमें आए हुए परिवर्तन को हम सामाजिक परिवर्तन कहेंगे।”

डेविस (K. Davis) के अनुसार, “सामाजिक परिवर्तन का तात्पर्य सामाजिक संगठन अर्थात् समाज की संरचना एवं प्रकार्यों में परिवर्तन है।”

एच0एम0 जॉनसन (H.M. Johnson) ने सामाजिक परिवर्तन को बहुत ही संक्षिप्त एवं अर्थपूर्ण शब्दों में स्पष्ट करते हुए बताया कि “मूल अर्थों में सामाजिक परिवर्तन का अर्थ संरचनात्मक परिवर्तन है। जॉनसन की तरह गिडेन्स ने बताया है कि सामाजिक परिवर्तन का अर्थ बुनियादी संरचना (Underlying Structure) या बुनियादी संस्था (Basic Institutions) में परिवर्तन से है।”

उपरोक्त परिभाषाओं के संबंध में यह कहा जा सकता है कि परिवर्तन एक व्यापक प्रक्रिया है। समाज के किसी भी क्षेत्र में विचलन को सामाजिक परिवर्तन कहा जा सकता है। विचलन का अर्थ यहाँ खराब या असामाजिक नहीं है। सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, नैतिक, भौतिक आदि सभी क्षेत्रों में होने वाले किसी भी प्रकार के परिवर्तन को सामाजिक परिवर्तन कहा जा सकता है। यह विचलन स्वयं प्रकृति के द्वारा या मानव समाज द्वारा योजनाबद्ध रूप में हो सकता है। परिवर्तन या तो समाज के समस्त ढाँचे में आ सकता है अथवा समाज के किसी विशेक्ष पक्ष तक ही सीमित हो सकता है। परिवर्तन एक सर्वकालिक घटना है। यह किसी-न-किसी रूप में हमेशा चलने वाली प्रक्रिया है। परिवर्तन क्यों और कैसे होता है, इस प्रश्न पर समाजशास्त्री अभी तक एकमत नहीं हैं। इसलिए परिवर्तन जैसी महत्वपूर्ण किन्तु जटिल प्रक्रिया का अर्थ आज भी विवाद का एक विषय है। किसी भी समाज में परिवर्तन की क्या गति होगी, यह उस समाज में विद्यमान परिवर्तन के कारणों तथा उन कारणों का समाज में सापेक्षिक महत्व क्या है, इस पर निर्भर करता है। सामाजिक परिवर्तन के स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए यहाँ इसकी प्रमुख विशेषताओं की चर्चा अपेक्षित है।

सामाजिक परिवर्तन की विशेषताएं

सामाजिक परिवर्तन एक विश्वव्यापी प्रक्रिया (Universal Process) है। अर्थात् सामाजिक परिवर्तन दुनिया के हर समाज में घटित होता है। दुनिया में ऐसा कोई भी समाज नजर नहीं आता, जो लम्बे समय तक स्थिर रहा हो या स्थिर है। यह संभव है कि परिवर्तन की रफ्तार कभी धीमी और कभी तीव्र हो, लेकिन परिवर्तन समाज में चलने वाली एक अनवरत प्रक्रिया है। सामुदायिक परिवर्तन ही वस्तुत: सामाजिक परिवर्तन है। इस कथन का मतलब यह है कि सामाजिक परिवर्तन का नाता किसी विशेष व्यक्ति या समूह के विशेष भाग तक नहीं होता है। वे ही परिवर्तन सामाजिक परिवर्तन कहे जाते हैं जिनका प्रभाव समस्त समाज में अनुभव किया जाता है। सामाजिक परिवर्तन के विविध स्वरूप होते हैं। प्रत्येक समाज में सहयोग, समायोजन, संघर्ष या प्रतियोगिता की प्रक्रियाएँ चलती रहती हैं जिनसे सामाजिक परिवर्तन विभिन्न रूपों में प्रकट होता है। परिवर्तन कभी एकरेखीय (Unilinear) तो कभी बहुरेखीय (Multilinear) होता है। उसी तरह परिवर्तन कभी समस्यामूलक होता है तो कभी कल्याणकारी। परिवर्तन कभी चक्रीय होता है तो कभी उद्विकासीय। कभी-कभी सामाजिक परिवर्तन क्रांतिकारी भी हो सकता है। परिवर्तन कभी अल्प अवधि के लिए होता है तो कभी दीर्घकालीन। सामाजिक परिवर्तन की गति असमान तथा सापेक्षिक (Irregular and Relative) होती है। समाज की विभिन्न इकाइयों के बीच परिवर्तन की गति समान नहीं होती है। सामाजिक परिवर्तन के अनेक कारण होते हैं। समाजशास्त्री मुख्य रूप से सामाजिक परिवर्तन के जनसांख्यिकीय (Demographic), प्रौद्योगिक (Technological) सांस्कृतिक (Cultural) एवं आर्थिक (Economic) कारकों की चर्चा करते हैं। इसके अलावा सामाजिक परिवर्तन के अन्य कारक भी होते हैं, क्योंकि मानव-समूह की भौतिक (Material) एवं अभौतिक (Non-material) आवश्यकताएँ अनन्त हैं और वे बदलती रहती हैं।

सामाजिक परिवर्तन की कोई निश्चित भविष्यवाणी नहीं की जा सकती है। इसका मुख्य कारण यह है कि अनेक आकस्मिक कारक भी सामाजिक परिवर्तन की स्थिति पैदा करते हैं।

विलबर्ट इ0 मोर (Wilbert E. Moore, 1974) के अनुसार सामाजिक परिवर्तन की विशेषताओं निम्न हैं-

1. सामाजिक परिवर्तन निश्चित रूप से घटित होते रहते हैं। सामाजिक पुनरुत्थान के समय में परिवर्तन की गति बहुत तीव्र होती है।
2. बीते समय की अपेक्षा वर्तमान में परिवर्तन की प्रक्रिया अत्यधिक तीव्र होती है। आज परिवर्तनों का अवलोकन हम अधिक स्पष्ट रूप में कर सकते हैं।
3. परिवर्तन का विस्तार सामाजिक जीवन के सभी क्षेत्रों में देख सकते हैं। भौतिक वस्तुओं के क्षेत्र में, विचारों एवं संस्थाओं की तुलना में, परिवर्तन अधिक तीव्र गति से होता है।

4. हमारे विचारों एवं सामाजिक संरचना पर स्वाभाविक ढंग और सामान्य गति के परिवर्तन का प्रभाव अधिक पड़ता है।
5. सामाजिक परिवर्तन का अनुमान तो हम लगा सकते हैं, लेकिन निश्चित रूप से हम इसकी भविष्यवाणी नहीं कर सकते हैं।
6. सामाजिक परिवर्तन गुणात्मक (Qualitative) होता है। समाज की एक इकाई दूसरी इकाई को परिवर्तित करती है। यह प्रक्रिया तब तक चलती रहती है, जब तक पूरा समाज उसके अच्छे या बुरे प्रभावों से परिचित नहीं हो जाता।
7. आधुनिक समाज में सामाजिक परिवर्तन न तो मनचाहे ढंग से किया जा सकता है और न ही इसे पूर्णत: स्वतंत्र और असंगठित छोड़ दिया जा सकता है। आज हर समाज में नियोजन (Planning) के द्वारा सामाजिक परिवर्तन को नियंत्रित कर वांछित लक्ष्यों की दिशा में क्रियाशील किया जा सकता है।

1.3.3. सामाजिक परिवर्तन के महत्वपूर्ण स्रोत

1. खोज- मनुष्य ने अपने ज्ञान एवं अनुभवों के आधार पर अपनी समस्याओं को सुलझाने और एक बेहतर जीवन व्यतीत करने के लिए बहुत तरह की खोज की है। जैसे शरीर में रक्त संचालन, बहुत सारी बीमारियों के कारणों, खनिजों, खाद्य पदार्थों, पृथ्वी गोल है एवं वह सूर्य की परिक्रमा करती है आदि हजारों किस्म के तथ्यों की मानव ने खोज की, जिनसे उनके भौतिक एवं अभौतिक जीवन में काफी परिवर्तन आया।

2. आविष्कार- विज्ञान और प्रौद्यागिकी के जगत में मनुष्य के आविष्कार इतने अधिक हैं कि उनकी गिनती करना मुश्किल है। आविष्कारों ने मानव समाज में एक युगान्तकारी एवं क्रान्तिकारी परिवर्तन ला दिया है।

3. प्रसार- सांस्कृतिक जगत के परिवर्तन में प्रसार का प्रमुख योगदान रहा है। पश्चिमीकरण (Westernization), आधुनिकीकरण (Modernization), एवं भूमंडलीकरण (Globalization) जैसी प्रक्रियाओं का मुख्य आधार प्रसार ही रहा है। आधुनिक युग में प्रौद्योगिकी का इतना अधिक विकास हुआ है कि प्रसार की गति बहुत तेज हो गयी है।

4. आन्तरिक विभेदीकरण- (Internal Differentiation)—जब हम सामाजिक परिवर्तन के सिद्धान्तों को ध्यान में रखते हैं, तो ऐसा लगता है कि परिवर्तन का एक चौथा स्रोत भी संभव है- वह है आन्तरिक विभेदीकरण। इस तथ्य की पुष्टि उद्विकासीय सिद्धान्त (Evolutionary Theory) के प्रवर्तकों के विचारों से होती है। उन लोगों का मानना है कि समाज में परिवर्तन समाज के स्वाभाविक उद्विकासीय प्रक्रिया से ही होता है। हरेक समाज अपनी आवश्यकताओं के अनुसार धीरे-धीरे विशेष स्थिति में

परिवर्तित होता रहता है। समाजशास्त्रियों एवं मानवशास्त्रियों ने अपने उद्विकासीय सिद्धान्त में स्वत: चलने वाली आन्तरिक विभेदीकरण की प्रक्रिया पर काफी बल दिया है।

1.3.4. सामाजिक परिवर्तन की अवधारणाएं

सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया कई रूपों में प्रकट होती हैं, जैसे- उद्विकास (Evolution), प्रगति (Progress), विकास (Development), सामाजिक आन्दोलन (Social Movement), क्रांति (Revolution) इत्यादि। चूँकि इन सामाजिक प्रक्रियाओं का सामाजिक परिवर्तन से सीधा संबंध है या कभी-कभी इन संबंधों को सामाजिक परिवर्तन का पर्यायवाची माना जाता है, इसलिए इन शब्दों के अर्थ के संबंध में काफी उलझनें हैं। इनका स्पष्टीकरण निम्नलिखित हैं।

1. उद्विकास- 'उद्विकास' शब्द का प्रयोग सबसे पहले जीव-विज्ञान के क्षेत्र में चार्ल्स डार्विन (Charles Darwin) ने किया था। डार्विन के अनुसार उद्विकास की प्रक्रिया में जीव की संरचना सरलता से जटिलता (Simple to Complex) की ओर बढ़ती है। यह प्रक्रिया प्राकृतिक चयन (Natural Selection) के सिद्धान्त पर आधारित है। आरंभिक समाजशास्त्री हरबर्ट स्पेन्सर ने जैविक परिवर्तन (Biological Changes) की भाँति ही सामाजिक परिवर्तन को भी कुछ आन्तरिक शक्तियों (Internal Forces) के कारण संभव माना है और कहा है कि उद्विकास की प्रक्रिया धीरे-धीरे निश्चित स्तरों से गुजरती हुई पूरी होती है। उद्विकास की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए मकीवर एवं पेज ने लिखा है कि उद्विकास एक किस्म का विकास है। पर प्रत्येक विकास उद्विकास नहीं है क्योंकि विकास की एक निश्चित दिशा होती है, पर उद्विकास की कोई निश्चित दिशा नहीं होती है। किसी भी क्षेत्र में विकास करना उद्विकास कहा जाएगा। मकीवर एवं पेज ने बताया है कि उद्विकास सिर्फ आकार में नहीं बल्कि संरचना में भी विकास है। यदि समाज के आकार में वृद्धि नहीं होती है और वह पहले से ज्यादा आन्तरिक रूप से जटिल हो जाता है तो उसे उद्विकास कहेंगे।

2. प्रगति- परिवर्तन जब अच्छाई की दिशा में होता है तो उसे हम प्रगति (Progress) कहते हैं। प्रगति सामाजिक परिवर्तन की एक निश्चित दिशा को दर्शाता है। प्रगति में समाज-कल्याण और सामूहिक-हित की भावना छिपी होती है। ऑगबर्न एवं निमकॉफ ने बताया है कि प्रगति का अर्थ अच्छाई के निमित्त परिवर्तन है। इसलिए प्रगति इच्छित परिवर्तन है। इसके माध्यम से हम पूर्व-निर्धारित लक्ष्यों को पाना चाहते हैं। मकीवर एवं पेज आगाह करते हुए कहा है कि हम लोगों को उद्विकास और प्रगति को एक ही अर्थ में प्रयोग नहीं करना चाहिए। दोनों बिल्कुल अलग-अलग अवधारणाएँ हैं।

3. विकास- जिस प्रकार उद्विकास के अर्थ बहुत स्पष्ट एवं निश्चित नहीं हैं, विकास की अवधारणा भी बहुत स्पष्ट नहीं है। समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य में विकास का अर्थ सामाजिक विकास से है। प्रारंभिक समाजशास्त्रियों विशेषकर कौंत, स्पेन्सर एवं हॉबहाउस ने सामाजिक उद्विकास (Social Evolution),

प्रगति (Progress) एवं सामाजिक विकास (Social Development) को एक ही अर्थ में प्रयोग किया था। आधुनिक समाजशास्त्री इन शब्दों को कुछ विशेष अर्थ में ही इस्तेमाल करते हैं। आज समाजशास्त्र के क्षेत्र में विकास से हमारा तात्पर्य मुख्यत: सामाजिक विकास से है। इसका प्रयोग विशेषकर उद्योगीकरण एवं आधुनिकीकरण के चलते विकसित एवं विकासशील देशों के बीच अन्तर स्पष्ट करने के लिए होता है। सामाजिक विकास में आर्थिक विकास का भी भाव छिपा होता है और उसी के तहत हम परम्परागत समाज (Traditional Society), संक्रमणशील समाज (Transitional Society) एवं आधुनिक समाज (Modern Society) की चर्चा करते हैं। आधुनिक शिक्षा का विकास भी एक प्रकार का सामाजिक विकास है। उसी तरह से कृषि पर आधारित सामाजिक व्यवस्था से उद्योग पर आधारित सामाजिक व्यवस्था की ओर अग्रसर होना भी सामाजिक विकास कहा जाएगा। दूसरे शब्दों में, सामन्तवाद (Feudalism) से पूँजीवाद (Capitalism) की ओर जाना भी एक प्रकार का विकास है।

4. सामाजिक आन्दोलन- सामाजिक आन्दोलन सामाजिक परिवर्तन का एक बहुत प्रमुख कारक रहा है। विशेषकर दकियानूसी समाज में सामाजिक आन्दोलनों के द्वारा काफी परिवर्तन आए हैं। गिडेन्स के अनुसार सामूहिक आन्दोलन व्यक्तितयों का ऐसा प्रयास है जिसका एक सामान्य उद्देश्य होता है और उद्देश्य की पूर्ति के लिए संस्थागत सामाजिक नियमों का सहारा न लेकर लोग अपने ढंग से व्यवस्थित होकर किसी परम्परागत व्यवस्था को बदलने का प्रयास करते हैं। गिडेन्स ने कहा है कि कभी-कभी ऐसा लगता है कि सामाजिक आन्दोलन और औपचारिक संगठन (Formal Organization) एक ही तरह की चीजें हैं, पर दोनों बिल्कुल भिन्न हैं। सामाजिक आन्दोलन के अन्तर्गत नौकरशाही व्यवस्था जैसे नियम नहीं होते, जबकि औपचारिक व्यवस्था के अन्तर्गत नौकरशाही नियम-कानून की अधिकता होती है। इतना ही नहीं दोनों के बीच उद्देश्यों का भी फर्क होता है। उसी तरह से कबीर पंथ, आर्य समाज, बह्मो समाज या हाल का पिछड़ा वर्ग आन्दोलन (Backward Class Movement) को सामाजिक आन्दोलन कहा जा सकता है। औपचारिक व्यवस्था नहीं।

5. क्रांति

सामाजिक आन्दोलन से भी ज्यादा सामाजिक परिवर्तन का सशक्त माध्यम क्रांति है, इसलिए यहाँ इसकी भी चर्चा आवश्यक है। क्रांति के द्वारा सामाजिक परिवर्तन के अनगिनत उदाहरण मौजूद हैं। लेकिन पिछली दो-तीन शताब्दियों में मानव इतिहास में काफी, बड़ी-बड़ी क्रांतियाँ आई हैं, जिससे कुछ राष्ट्रों में राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक क्षेत्रों में युगान्तकारी परिवर्तन हुए हैं। इस संदर्भ में 1775-83 की अमेरिकी क्रांति एवं 1789 की फ्रांसीसी क्रांति विशेष रूप से उललेखनीय हैं। इन क्रांतियों के चलते आज समस्त विश्व में स्वतंत्रता (Liberty), सामाजिक समानता (Social Equality) और प्रजातंत्र (Democracy) की बात की जाती है। उसी तरह से रूसी और चीनी क्रांति का विश्व स्तर पर अपना ही महत्व है। अब्राम्स (Abrams, 1982) ने बताया है कि विश्व में अधिकांश क्रांतियाँ मौलिक सामाजिक पुनर्निमाण के लिए हुई हैं। अरेंड (Nannah Arendt, 1963) के अनुसार क्रांतियों का मुख्य उद्देश्य

परम्परागत व्यवस्था से अपने-आपको अलग करना एवं नये समाज का निर्माण करना है। इतिहास में कभी-कभी इसका अपवाद भी देखने को मिलता है। कुछ ऐसी भी क्रांतियाँ हुई हैं, जिनके द्वारा हम समाज को और भी पुरातन समय में ले जाने की कोशिश करते हैं।

1.3.5. सामाजिक परिवर्तन के सिद्धांत

उद्विकासवादी के प्रमुख प्रवर्तक हर्बर्ट स्पेन्सर हैं जिनके अनुसार सामाजिक परिवर्तन धीरे-धीरे, सरल से जटिल की और कुछ निश्चित स्तरों से गुजरता हुआ होता है। संरचनात्मक कार्यात्मक सिद्धांत के प्रवर्तकों में दुर्खीम, वेबर, पार्सन्स, मर्टन आदि विद्वानों का उल्लेख किया जा सकता है। इन विद्वानों के मतानुसार सामाजिक संरचना का निर्माण करने वाली प्रत्येक इकाई का अपना एक प्रकार्य होता है और यह प्रकार्य उसके अस्तित्व को बनाए रखने में महत्वपूर्ण होता है। इस प्रकार सामाजिक सरंचना और इसको बनाने वाली इकाइयों (संस्थाओं, समूहों आदि) के बीच एक प्रकार्यात्मक संबंध होता है और इसीलिए इन प्रकार्यों में जब परिवर्तन होता है तो सामाजिक संरचना भी उसी अनुसार बदल जाती है। सामाजिक ढाँचे में परिवर्तन को ही सामाजिक परिवर्तन कहते हैं। आगर्बन द्वारा प्रस्तुत 'सांस्कृतिक विलम्बना' (Cultural Lag) के सिद्धान्त को भी कुछ विद्वान इसी श्रेणी में सम्मिलित करते हैं। संघर्ष या द्वन्द्व के सिद्धांत के समर्थक कार्ल मार्क्स, कोजर, डेहर डोर्फ़ आदि हैं। इनके सिद्धान्तों का सार-तत्व यह है कि सामाजिक जीवन में होने वाले परिवर्तन का प्रमुख आधार समाज में मौजूद दो विरोधी तत्वों या शक्तियों के बीच होने वाला संघर्ष या द्वन्द्व है। चक्रीय सिद्धान्त के प्रमुख प्रवर्तक स्पेगलट, परेटो आदि हैं जो कि परिवर्तन की दिशा को चक्र की भाँति मानते हैं।

1. चक्रीय सिद्धान्त- सामाजिक परिवर्तन के चक्रीय सिद्धान्त की मूल मान्यता यह है कि सामाजिक परिवर्तन की गति और दिशा एक चक्र की भाँति है और इसलिए सामाजिक परिवर्तन जहाँ से आरम्भ होता है, अन्त में घूम कर फिर वहीं पहुँच कर समाप्त होता है। यह स्थिति चक्र की तरह पूरी होने के बाद बार-बार इस प्रक्रिया को दोहराती है। इसका उत्तम उदाहरण भारत, चीन व ग्रीक की सभ्यताएँ हैं। चक्रीय सिद्धान्त के कतिपय प्रवर्तकों ने अपने सिद्धान्त के सार-तत्व को इस रूप में प्रस्तुत किया है कि इतिहास अपने को दुहराता है'। चक्रीय सिद्धान्त विचारानुसार परिवर्तन की प्रकृति एक चक्र की भाँति होती है। अर्थात् जिस स्थिति से परिवर्तन शुरू होता है, परिवर्तन की गति गोलाकार में आगे बढ़ते-बढ़ते पुन: उसी स्थान पर लौट आती है जहाँ पर कि वह आरम्भ में थी। विल्फ्रेडो परेटो ने सामाजिक परिवर्तन के अपने चक्रीय सिद्धान्त में यह दर्शाने का प्रयत्न किया है कि किस भाँति राजनीतिक, आर्थिक तथा आध्यात्मिक क्षेत्र में चक्रीय गति से परिवर्तन होता रहता है।

परेटो का चक्रीय सिद्धान्त- परेटो के अनुसार प्रत्येक सामाजिक संरचना में जो ऊँच-नीच का संस्तरण होता है, वह मोटे तौर पर दो वर्गों द्वारा होता है- उच्च वर्ग तथा निम्न वर्ग। इनमें से कोई भी वर्ग स्थिर नहीं होता, अपितु इनमें 'चक्रीय गति' (Cyclical Movement) पाई जाती है। चक्रीय गति इस अर्थ में कि

समाज में इन दो वर्गों में निरन्तर ऊपर से नीचे या अधोगामी और नीचे से ऊपर या ऊर्ध्वगामी प्रवाह होता रहता है। जो वर्ग सामाजिक संरचना में ऊपरी भाग में होते हैं वह कालान्तर में भ्रष्ट हो जाने के कारण अपने पद और प्रतिष्ठा से गिर जाते हैं, अर्थात। अभिजात-वर्ग अपने गुणों को खोकर या असफल होकर निम्न वर्ग में आ जाते हैं। दूसरी ओर, उन खाली जगहों को भरने के लिए निम्न वर्ग में जो बुद्धिमान, कुशल, चरित्रवान तथा योग्य लोग होते हैं, वे नीचे से ऊपर की ओर जाते रहते हैं। इस प्रकार उच्च वर्ग का निम्न वर्ग में आने या उसका विनाश होने और निम्न वर्ग का उच्च वर्ग में जाने की प्रक्रिया चक्रीय ढंग से चलती रहती है। इस चक्रीय गति के कारण सामाजिक ढाँचा परिवर्तित हो जाता है या सामाजिक परिवर्तन होता है। परेटो के अनुसार सामाजिक परिवर्तन के चक्र के तीन मुख्य पक्ष हैं- राजनीतिक, आर्थिक तथा आदर्शात्मक। राजनीतिक क्षेत्र में चक्रीय परिवर्तन तब गतिशील होता है जब शासन-सत्ता उस वर्ग के लोगों के हाथों में आ जाती है जिनमें समूह के स्थायित्व के विशिष्ट-चालक अधिक शक्तिशाली होते हैं। इन्हें 'शेर' (Lions) कहा जाता है। समूह के स्थायित्व के विशिष्ट-चालक द्वारा अत्यधिक प्रभावित होने के कारण इन 'शेर' लोगों का कुछ आदर्शवादी लक्ष्यों पर दृढ़ विश्वास होता है और उन आदर्शों की प्राप्ति के लिए ये शक्ति का भी सहारा लेने में नहीं झिझकते। शक्ति-प्रयोग की प्रतिक्रिया भयंकर हो सकती है, इसलिए यह तरीका असुविधाजनक होता है। इस कारण वे कूटनीति का सहारा लेते हैं, और 'शेर, से अपने को 'लोमड़ियों' (foxes) में बदल लेते हैं और लोमड़ी की भाँति चालाकी से काम लेते हैं। लेकिन निम्न वर्ग में भी लोमड़ियाँ होती हैं और वे भी सत्ता को अपने हाथ में लेने की फिराक में रहती हैं। अन्त में, एक समय ऐसा भी आता है जबकि वास्तव में उच्च वर्ग की लोमड़ियों के हाथ से सत्ता निकालकर निम्न वर्ग की लोमड़ियों के हाथ में आ जाती है, तभी राजनीतिक क्षेत्र में या राजनीतिक संगठन और व्यवस्था में परिवर्तन होता है।

जहाँ तक आर्थिक क्षेत्र या आर्थिक संगठन और व्यवस्था में परिवर्तन का प्रश्न है, परेटो हमारा ध्यान समाज के दो आर्थिक वर्गों की ओर आकर्षित करते हैं। वे दो वर्ग हैं- (1) सट्टेबाज (speculators) और (2) निश्चित आय वाला वर्ग (rentiers)। पहले वर्ग के सदस्यों की आय बिल्कुल अनिश्चित होती है, कभी कम तो कभी ज्यादा; पर जो कुछ भी इस वर्ग के लोग कमाते हैं वह अपनी बुद्धिमत्ता के बल पर ही कमाते हैं। इसके विपरीत, दूसरे वर्ग की आय निश्चित या लगभग निश्चित होती है क्योंकि वह सट्टेबाजों की भाँति अनुमान पर निर्भर नहीं है। सट्टेबाजों में सम्मिलन के विशिष्ट-चालक की प्रधानता तथा निश्चित आय वाले वर्ग के समूह में स्थायित्व के विशिष्ट-चालक की प्रमुखता पाई जाती है। इसी कारण पहले वर्ग के लोग आविष्कारकर्ता, लोगों के नेता या कुशल व्यवसायी आदि होते हैं। यह वर्ग अपने आर्थिक हित या अन्य प्रकार की शक्ति के मोह से चालाकी और भ्रष्टाचार का स्वयं शिकार हो जाता है जिसके कारण उसका पतन होता है और दूसरा वर्ग उसका स्थान ले लेता है। समाज की समृद्धि या विकास इसी बात पर निर्भर है कि सम्मिलन का विशिष्ट-चालक वाला वर्ग नए-नए सम्मिलन और आविष्कार के द्वारा राष्ट्र को नवप्रवर्तन की ओर ले जाए और समूह के स्थायित्व के विशिष्ट-चालक वाला वर्ग उन नए सम्मिलनों से मिल सकने वाले समस्त लाभों को प्राप्त करने में सहायता दें। आर्थिक प्रगति या परिवर्तन का रहस्य इसी

में छिपा हुआ है। उसी प्रकार में अविश्वास और विश्वास का चक्र चलता रहता है। किसी एक समय-विशेष में समाज में विश्वासवादियों का प्रभुत्व रहता है परन्तु वे अपनी दृढ़ता या रूढ़िवादिता के कारण अपने पतन का साधन अपने-आप ही जुटा लेते हैं और उनका स्थान दूसरे वर्ग के लोग ले लेते हैं।

2. उतार-चढ़ाव का सिद्धान्त- चक्रीय सिद्धान्त से मिलता-जुलता सोरोकिन का 'सामाजिक-सांस्कृतिक गतिशीलता का सिद्धान्त' (Theory of Socio-cultural Dynamics) या उतार-चढ़ाव का सिद्धान्त है। कतिपय विद्वानों ने इसे चक्रीय सिद्धान्त की श्रेणी में ही रखा है। हैस स्पीयर के शब्दों में, सोरोकिन इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि ऐतिहासिक दृष्टि से देखने पर यह स्पष्ट पता चलता है कि कोई प्रगति नहीं हुई है, न कोई चक्रीय परिवर्तन हुआ है। सोरोकिन के अनुसार जो कुछ भी है वह केवल मात्र उतार-चढ़ाव (Fluctuation) है। संस्कृति के बुनियादी स्वरूपों का उतार-चढ़ाव, सामाजिक संबंधों का उतार-चढ़ाव, शक्ति के केन्द्रीकरण का उतार-चढ़ाव यहाँ तक कि आर्थिक अवस्थाओं में सर्वत्र ही उतार-चढ़ाव है।'' इसी उतार-चढ़ाव में समस्त सामाजिक घटनाओं और परिवर्तनों का रहस्य छिपा हुआ है। सोरोकिन के अनुसार सामाजिक परिवर्तन सांस्कृतिक व्यवस्थाओं के उतार-चढ़ाव में व्यक्त होता है। उतार-चढ़ाव की धारणा सोरोकिन के सिद्धान्त का प्रथम आधार है। यह उतार-चढ़ाव दो सांस्कृतिक व्यवस्थाओं-चेतनात्मक संस्कृति तथा भावनात्मक संस्कृति-के बीच होता है। दूसरे शब्दों में, जब समाज चेतनात्मक सांस्कृतिक व्यवस्था से भावनात्मक सांस्कृतिक व्यवस्था में या भावनात्मक सांस्कृतिक व्यवस्था से चेतनात्मक सांस्कृतिक व्यवस्था में बदलता है, तभी सामाजिक परिवर्तन होता है। अर्थात् तभी विज्ञान, दर्शन, धर्म, कानून, नैतिकता, आर्थिक व्यवस्था, राजनीति, कला, साहित्य, सामाजिक संबंध सब-कुछ बदल जाता है। इस प्रकार सोरोकिन के सामाजिक परिवर्तन के सिद्धान्त का दूसरा आधार चेतनात्मक संस्कृति और भावनात्मक संस्कृति के बीच भेद है।

सोरोकिन के अनुसार जब एक सांस्कृतिक व्यवस्था, उदाहरणार्थ चेतनात्मक संस्कृति व्यवस्था अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाती है तो उसे अपनी गति को विपरीत दिशा, अर्थात् भावनात्मक संस्कृति व्यवस्था की ओर मोड़ना ही पड़ता है। अर्थात् पहले की व्यवस्था के स्थान पर दूसरी व्यवस्था का जन्म होता है; क्योंकि प्रत्येक व्यवस्था की-चाहे वह कितनी ही अच्छी हो या बुरी-पनपने, आगे बढ़ने अथवा विकसित होने की एक सीमा है। यही सोरोकिन का 'सीमाओं का सिद्धान्त' है जो कि सामाजिक परिवर्तन का तीसरा आधार है। इन सीमाओं के सिद्धान्त को बीरस्टीड द्वारा प्रस्तुत एक उदाहरण की सहायता से अति सरलता से समझा जा सकता है। यदि आप प्यानों की एक कुंजी को उँगली मारेंगे तो उससे कुछ ध्वनि उत्पन्न होगी। यदि आप जरा जोर से उँगली मारेंगे तो अवश्य ही ध्वनि भी अधिक जोर की होगी। परन्तु इस प्रकार जोर से उँगली मारने और अधिक जोर से ध्वनि निकालने की एक सीमा है। एक सीमा से अधिक जोर से यदि आप प्यानों पर आघात करेंगे तो अधिक जोर से ध्वनि निकलने की अपेक्षा स्वयं प्यानों ही टूट जाएगा। यही बात सांस्कृतिक व्यवस्थाओं पर भी लागू होती है। एक सांस्कृतिक व्यवस्था एक सीमा तक पहुँच जाने के बाद फिर आगे नहीं बढ़ सकती और तब तक विपरीत प्रभाव उत्पन्न हो

जाता है और टूटे हुए प्यानों की भाँति उस व्यवस्था के स्थान पर एक नवीन सांस्कृतिक व्यवस्था स्वत: उदय होती है। सोरोकिन के सामाजिक परिवर्तन का यह है कि सांस्कृतिक अवस्था से दूसरी अवस्था में परिवर्तन होता तो अवश्य है, परन्तु होता है अनियमित रूप में। दूसरे शब्दों में, सांस्कृतिक व्यवस्थाओं के उतार-चढ़ाव को किन्हीं निश्चित बन्धनों में बाँधा नहीं जा सकता है। यद्यपि यह सच है कि संस्कृति एक गतिशील व्यवस्था है फिर भी हम यह आशा नहीं कर सकते कि एक सांस्कृतिक व्यवस्था किसी एक निश्चित दिशा की ओर स्थायी रूप में गतिशील रहेगी। अब प्रश्न यह उठता है कि चेतनात्मक अवस्था से भावनात्मक अवस्था में या भावनात्मक अवस्था से चेतनात्मक अवस्था में जो परिवर्तन होता है उस परिवर्तन को लाने वाली कौन-सी शक्ति हैं? सोरोकिन ने इस प्रश्न का उत्तर 'स्वाभाविक परिवर्तन का सिद्धान्त' (Principle of Immanent Change) के आधारपर दिया है और यही आपके सामाजिक परिवर्तन के सिद्धान्त का आधार है। 'स्वाभाविक परिवर्तन का सिद्धान्त' है कि परिवर्तन होने का कारण या परिवर्तन लाने वाली शक्ति स्वयं संस्कृति की अपनी प्रकृति में ही अन्तर्निहित है। परिवर्तन लाने वाली कोई बाहरी शक्ति नहीं बल्कि संस्कृति की प्रकृति में ही क्रियाशील आन्तरिक शक्ति या शक्तियाँ हैं। संक्षेप में, सोरोकिन के अनुसार, सामाजिक परिवर्तन एक स्वाभाविक प्रक्रिया है जोकि संस्कृति के अन्दर ही क्रियाशील कुछ शक्तियों का परिणाम होती है। सामाजिक परिवर्तन एक कृत्रिम प्रक्रिया है या किसी बाह्य शक्ति द्वारा प्रेरित होती है- ऐसा सोचना गलत है। चेतनात्मक अवस्था से भावनात्मक अवस्था का या भावनात्मक अवस्था से चेतनात्मक अवस्था का परिवर्तन एक स्वाभाविक तथा आन्तरिक प्रक्रिया है। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि ऐसा होना ही स्वाभाविक है। उदाहरणार्थ, गुलाब का एक बीज केवल गुलाब के ही पौधे में, न कि अन्य प्रकार के पौधे में, इसलिए विकसित होता है क्योंकि यही स्वाभाविक है या वह उस बीज के स्वभाव में अन्तर्निहित है।

3. रेखीय परिवर्तन का सिद्धान्त

यह सामाजिक परिवर्तन का वह स्वरूप है; जिसमें परिवर्तन की दिशा सदैव ऊपर की ओर होती है। परिवर्तन एक सिलसिले या क्रम से विकास की ओर एक ही दिशा में निरन्तर होता जाता है। जो आविष्कार आज हुआ है उससे आगे ही आविष्कार होगा, जैसे रेडियों के बाद टेलीविजन का अविष्कार हुआ उसे और विकसित करके टेलीफोन से बात करते समय दूसरी ओर से बात करने वाले को देखा भी जा सकेगा। कहने का तात्पर्य यह है कि परिवर्तन के इस प्रतिमान में परिवर्तन रेखीय होता है और उसे हम एक रेखा से प्रदर्शित कर सकते हैं। इस परिवर्तन की गति तीव्र या मंद हो सकती है। आदिम समाज में परिवर्तन धीमी गति से था जबकि आधुनिक समाजों में गति तीव्र है, परन्तु दोनों समाजों में परिवर्तन एक रेखा में ही अर्थात आगे बढ़ता हुआ है। सामाजिक परिवर्तन के रेखाीय सिद्धान्त को स्पष्ट रूप से समझने के लिए अगर इसका अन्तर चक्रीय सिद्धान्त से किया जाए तो इसकी प्रकृति को सरलतापूर्वक समझा जा सकता है। दोनों में अन्तर निम्न प्रकार से किया जा सकता है-

- रेखीय सिद्धान्त इस विचार पर आधारित है कि सामाजिक परिवर्तन की प्रवृत्ति एक निश्चित दिशा की ओर बढ़ने की होती है, इसके विपरीत चक्रीय सिद्धान्त के अनुसार सामाजिक परिवर्तन सदैव उतार-चढ़ाव से युक्त होते हैं अर्थात प्रत्येक परिवर्तन सदैव नई दिशा उत्पन्न नहीं करता बल्कि इसके कारण समूह द्वारा कभी नई विशेषताओं और कभी पहले छोड़ी जा चुकी विशेषताओं को पुन: ग्रहण किया जा सकता है।
- रेखीय सिद्धान्त के अनुसार सामाजिक परिवर्तन की दिशा साधारणतया अपूर्णता से पूर्णता की ओर बढ़ने की होती है। चक्रीय सिद्धान्त में परिवर्तन के किसी ऐसे क्रम को स्पष्ट नहीं किया जा सकता, इसमें परिवर्तन पूर्णता से अपूर्णता अथवा अपूर्णता से पूर्णता किसी भी दिशा की ओर हो सकता है।
- रेखीय सिद्धान्त के अनुसार परिवर्तन की गति आरम्भ में धीमी होती है लेकिन एक निश्चित बिन्दु तक पहुँचने के बाद परिवर्तन बहुत स्पष्ट रूप से तथा तेजी से होने लगता है। प्रौद्योगिक विचार से उत्पन्न परिवर्तन इस कथन की पुष्टि करते हैं। जबकि इसके विपरीत चक्रीय सिद्धान्त के अनुसार एक विशेष परिवर्तन को किसी निश्चित अवधि का अनुमान नहीं लगाया जा सकता । परिवर्तन कभी जल्दी-जल्दी हो सकते हैं और कभी बहुत सामान्य गति से।
- रेखीय सिद्धान्त की तुलना में चक्रीय सिद्धान्तों पर विकासवाद (Evolutionism) का प्रभाव बहुत कम है। तात्पर्य यह है कि रेखीय सिद्धान्त के अनुसार परिवर्तन की प्रवृत्ति एक ही दिशा में तथा सरलता से जटिलता की ओर बढ़ने की होती है। इसके विपरीत चक्रीय सिद्धान्त सांस्कृतिक और सामाजिक परिवर्तन में भेद करते हुए यह स्पष्ट करते हैं कि विकासवादी प्रक्रिया अधिक से अधिक सामाजिक परिवर्तन में ही देखने को मिलती है जबकि सांस्कृतिक जीवन और विशेष मूल्यों तथा लोकाचारों में होने वाला परिवर्तन उतार-चढ़ाव से युक्त रहता है।
- रेखीय सिद्धान्त सैद्धान्तिकता (indoctrination) पर अधिक बल देते हैं, ऐतिहासिक साक्षियों पर नहीं। जब कि चक्रीय सिद्धान्त के द्वारा उतार-चढ़ाव से युक्त परिवर्तनों को ऐतिहासिक प्रमाणों के द्वारा स्पष्ट किया गया है इस प्रकार उनके प्रतिपादकों का दावा है कि उनके सिद्धान्त अनुभवसिद्ध हैं।
- रेखीय परिवर्तन व्यक्ति के जागरूक प्रयत्नों से संबंधित है। इतना अवश्य है कि रेखीय परिवर्तन एक विशेष भौतिक पर्यावरण से प्रभावित होते हैं लेकिन भौतिक पर्यावरण स्वयं मनुष्य के चेतन प्रयत्नों से निर्मित होता है। जबकि चक्रीय सिद्धान्त के अनुसार सामाजिक परिवर्तन एक बड़ी सीमा तक मनुष्य की इच्छा से स्वतंत्र है। इसका तात्पर्य यह है कि प्राकृतिक दशाओं, मानवीय आवश्यकताओं तथा प्रवृत्तियों (Attitudes) में होने वाले परिवर्तन के साथ सामाजिक संरचना स्वयं ही एक विशेष रूप ग्रहण करना आरम्भ कर देती है।

- रेखीय सिद्धान्त परिवर्तन के एक विशेष कारण पर ही बल देता है और यही कारण है कि कुछ भौतिक दशाएँ सदैव अपने और समूह के बीच एक आदर्श सन्तुलन अथवा अभियोजनशीलता (Adjustment) स्थापित करने का प्रयत्न करती है। जबकि चक्रीय सिद्धान्त परिवर्तन का कोई विशेष कारण स्पष्ट नहीं करते बल्कि इनके अनुसार समाज में अधिकांश परिवर्तन इसलिए उत्पन्न होते हैं कि परिवर्तन का स्वाभाविक नियम है।
- रेखीय सिद्धान्त इस तथ्य पर बल देते हैं कि परिवर्तन का क्रम सभी समाजों पर समान रूप से लागू होता है। इसका कारण यह है कि एक स्थान के भौतिक अथवा प्रौद्योगिक पर्यावरण में उत्पन्न होने वाले परिवर्तन को शीघ्र ही दूसरे समाज द्वारा ग्रहण कर लिया जाता है। बल्कि चक्रीय सिद्धान्त के अनुसार एक विशेष प्रकृति के परिवर्तन का रूप सर्वव्यापी नहीं होता; अर्थात विभिन्न समाजों और विभिन्न अवधियों में परिवर्तन की प्रक्रिया भिन्न-भिन्न प्रकार से मानव समूहों को प्रभावित करती है।

4. द्वन्द्व या संघर्ष का सिद्धान्त

द्वन्द्व या संघर्ष का सिद्धान्त इस मान्यता पर आधारित है कि समाज में होने वाले परिवर्तनों का प्रमुख आधार समाज में मौजूद दो विरोधी तत्वों व शक्तियों के बीच होने वाला संघर्ष या द्वन्द्व है। इस सिद्धान्त के समर्थक यह मानने से इन्कार करते हैं कि समाज बिना किसी बाधा, गतिरोध या संघर्ष के उद्विकासीय ढंग से सरल से उच्च व जटिल स्तर तक पहुँच जाता या परिवर्तित होता है। उनके अनुसार समाज की प्रत्येक क्रिया, उप-व्यवस्था (sub-system) और वर्ग का विरोधी तत्व अवश्य होता है और इसीलिए उनमें विरोधी प्रतिक्रिया या संघर्ष अवश्य होता है। इस संघर्ष के फलस्वरूप ही सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक परिवर्तन घटित होता है। साथ ही, ये परिवर्तन सदा शान्तिपूर्ण ढंग से होता हो, यह बात भी नहीं है क्योंकि समाज विस्फोटक तत्वों या शक्तियों से भरा हुआ होता है। इसलिए क्रान्ति के द्वारा भी परिवर्तन घटित हो सकता है। क्रान्ति के इस कष्ट को सहन किए बिना नए युग का प्रारम्भ उसी प्रकार सम्भव नहीं जैसे प्रसव पीड़ा को सहन किए बिना नव सन्तान का जन्म सम्भव नहीं।

1.3.6. सामाजिक परिवर्तन के प्रकार या प्रारूप

सभी समाज और सभी कालों में सामाजिक परिवर्तन एक जैसा नहीं होता है। अत: हमें सामाजिक परिवर्तन के स्वरूप के सन्दर्भ में उसके प्रतिरूप (Patterns), प्रकार (Kinds) या प्रारूप (Models) पर विचार करना चाहिए। अर्थ की दृष्टि से तीनों शब्दों में काफी भेद है, पर विषय-वस्तु की दृष्टि से समानता। वे सभी एक ही किस्म की विषय-वस्तु के द्योतक हैं। निम्न विवरण से इस तथ्य की पुष्टि हो जाएगी। सामाजिक परिवर्तन के अनेक प्रतिरूप (Patterns) देखने को मिलते हैं। कुछ विचारकों ने सर्वसम्मत, विरोध मत एवं एकीकृत प्रतिमानों की चर्चा की है। मकीवर एवं पेज ने सामाजिक प्रतिरूप के

मुख्य तीन स्वरूपों की चर्चा की है, जो इस प्रकार हैं- सामाजिक परिवर्तन कभी-कभी क्रमबद्ध तरीके से एक ही दिशा में निरंतर चलता रहता है भले ही परिवर्तन का आरंभ एकाएक ही क्यों न हो। उदाहरण के लिए हम विभिन्न अविष्कारों के पश्चात् परिवर्तन के क्रमों की चर्चा कर सकते हैं। विज्ञान के अन्तर्गत परिवर्तन की प्रकृति एक ही दिशा में निरंतर आगे बढ़ने की होती है, इसलिए ऐसे परिवर्तन को हम रेखीय (Linear) परिवर्तन कहते हैं। अधिकांश उद्विकासीय समाजशास्त्री (Evolutionary Sociologists) एक रेखीय सामाजिक परिवर्तन में विश्वास करते हैं। कुछ सामाजिक परिवर्तनों में परिवर्तन की प्रकृति ऊपर से नीचे और नीचे से ऊपर जाने की होती है, इसलिए इसे उतार-चढ़ाव परिवर्तन (Fluctuating Changes) के नाम से भी हम जानते हैं। उदाहरण के लिए भारतीय सांस्कृतिक परिवर्तन की चर्चा कर सकते हैं। पहले भारत के लोग आध्यात्मवाद (Spiritualism) की ओर बढ़ रहे थे, जबकि आज वे उसके विपरीत भौतिकवाद (Materialism) की ओर बढ़ रहे हैं। पहले का सामाजिक मूल्य 'त्याग' पर जोर देता था, जबकि आज का सामाजिक मूल्य 'भोग' एवं संचय पर जोर देता है। इस प्रतिरूप के अन्तर्गत यह निश्चित नहीं होता कि परिवर्तन कब और किस दिशा की ओर उन्मुख होगा। परिवर्तन के तृतीय प्रतिरूप को तरंगीय परिवर्तन के भी नाम से जाना जाता है। इस परिवर्तन के अन्तर्गत उतार-चढ़ावदार परिवर्तन में परिवर्तन की दिशा एक सीमा के बाद विपरीत दिशा की ओर उन्मुख हो जाती है। इसमें लहरों (Waves) की भाँति एक के बाद दूसरा परिवर्तन आता है। ऐसा कहना मुश्किल होता है कि दूसरी लहर पहली लहर के विपरीत है। हम यह भी कहने की स्थिति में नहीं होते हैं कि दूसरा परिवर्तन पहले की तुलना में उन्नति या अवनति का सूचक है। इस प्रतिरूप का सटीक उदाहरण है फैशन। हर समाज में नये-नये फैशन की लहरें आती रहती हैं। हर फैशन में लोगों को कुछ-न-कुछ नया परिवर्तन दिखाई देता है। ऐसे परिवर्तनों में उत्थान, पतन और प्रगति की चर्चा फिजूल है।

सामाजिक परिवर्तन के कारक

सामाजिक परिवर्तन के अनगिनत कारक हैं। कारकों की प्रमुखता देश और काल से प्रभावित होती है। जिन कारणों से आज सामाजिक परिवर्तन हो रहे हैं, उनमें से बहुत कारक प्राचीन काल में मौजूद नहीं थे। परिवर्तन के जिन कारकों की महत्ता प्राचीन एवं मध्य काल में रही है, आज उसकी महत्ता उतनी नहीं रह गयी है। समय के साथ परिवर्तन का स्वरूप और कारक दोनों बदलते रहते हैं। एच0एम0 जॉनसन ने परिवर्तन के स्रोतों को ध्यान में रखकर परिवर्तन के सभी कारकों को मुख्य रूप से तीन भागों में रखा है।

(1) आन्तरिक कारण -

सामाजिक परिवर्तन कभी-कभी आन्तरिक कारणों से भी होता है। व्यवस्था का विरोध आन्तरिक विरोध (Internal Contradictions) से भी होता है। जब लोग किसी कारणवश अपनी परम्परागत व्यवस्था से खुश नहीं होते हैं तो उसमें फेरबदल करने की कोशिश करते रहते हैं। आमतौर पर एक बन्द समाज में

परिवर्तन का मुख्य स्रोत अंतर्जात (Endogenous/Orthogenetic) कारक ही रहा है। धर्म सुधार आन्दोलन से जो हिन्दू समाज में परिवर्तन आया है, वह अंतर्जात कारक का एक उदाहरण है।

(2) बाहरी कारण -

जब दो प्रकार की सामाजिक व्यवस्था, प्रतिमान एवं मूल्य एक-दूसरे से मिलते हैं तो सामाजिक परिवर्तन की स्थिति का निर्माण होता है। पश्चिमीकरण या पाश्चात्य प्रौद्योगिकी के द्वारा जो भारतीय समाज में परिवर्तन आया है, उसे इसी श्रेणी में रखा जाएगा। साधारणत: युग में परिवर्तन के आन्तरिक स्रोतों की तुलना में बहिर्जात (Exogenous/Heterogenetic) कारकों की प्रधानता होती है।

(3) गैरसामाजिक कारण -

सामाजिक परिवर्तन का स्रोत हमेशा सामाजिक कारण ही नहीं होता। कभी-कभी भौगोलिक या भौतिक स्थितियों में परिवर्तन से भी सामाजिक परिवर्तन उत्पन्न होता है। आदिम एवं पुरातनकाल में जो समाज में परिवर्तन हुए हैं, उन परिवर्तनों से गैरसामाजिक कारकों की बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

सामाजिक परिवर्तन के कारक

1. सांस्कृतिक कारक (Cultural Factors)
2. आर्थिक कारक (Economic Factors)
3. जैविकीय कारक (Biological Factors).

सामाजिक परिवर्तन में अनेक कारक काम करते है जिनमें सांस्कृतिक, प्रौद्योगिक, जैविकीय आर्थिक, भौगोलिक परिवेश सम्बन्धी, मनोवैज्ञानिक तथा विचारधारात्मक कारक मुख्य कारक हैं । भारतवर्ष में सामाजिक परिवर्तन का सर्वेक्षण करने से इन सभी कारकों का प्रभाव स्पष्ट होगा ये सभी कारक परस्पर निर्भर हैं और एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं । किसी भी विशिष्ट परिवर्तन के कारणों का विश्लेषण करने से उसके मूल में अनेक कारक उलझे हुए मिलते हैं । ये सभी कारक मिलकर सामाजिक परिवर्तन उत्पन्न करते है । और विशिष्ट परिवर्तन में किस कारक का कितना योगदान है यह पता लगाना सदैव सरल नहीं होता संक्षेप में भारत में सामाजिक परिवर्तन में निम्नलिखित मुख्य कारक देखे जा सकते है ।

1. सांस्कृतिक कारक (Cultural Factors)- संस्कृति मूल्यों शैलियों भावात्मक लगावों और बौद्धिक अभियानों का क्षेत्र है ये मूल्य, शैलियाँ और विचार आदि सामाजिक परिवर्तन को प्रभावित करते हैं । मूल्य से यहाँ तात्पर्य उस लक्ष्य से है जिसको प्राप्त करने के लिए कोई व्यक्ति अथवा संस्था प्रयत्नशील रहती हैं । उदाहरण के लिए हिन्दू विवाह की संस्था का लक्ष्य धर्म-पालन, प्रजोत्पत्ति और रति हैं । आधुनिक काल में धर्म का महत्व घट जाने से और परिवार नियोजन पर जोर दिए जाने के कारण रति

ही विवाह की संस्था का सबसे महत्वपूर्ण लक्ष्य रह गया है। मूल्यों में इस परिवर्तन से विवाह की संस्था अस्थिर हुई है। इससे पारिवारिक विघटन बड़ा है। प्राचीन परिवारों में पिता का बड़ा सम्मान था। परिवार के सभी सदस्य उसकी आज्ञा मानना अपना परम कर्तव्य समझते थे। आधुनिक काल में पिछली और नई पीढ़ियों के मूल्यों में अत्यधिक अनार होने के कारण उनके सम्बन्ध टूटते जा रहे है। भारतीय समाज में परिवर्तन करने वाले सांस्कृतिक कारकों में मुख्य निम्नलिखित हैं:

(अ) संस्कृतिकरण- भारतीय सामाजिक संरचना जाति-व्यवस्था पर आधारित है। इन जातियों में उतार-चढ़ाव का एक क्रम माना जाता है जिसमें कुछ जातियाँ अन्य जातियों से ऊँची समझी जाती हैं। वर्ण-व्यवस्था के अनुसार ब्राह्मण सामाजिक संरचना में सबसे ऊँचे थे क्योंकि वे ही समाज की संस्कृति को जीवित रखते थे।उनके बाद क्षत्रिय, फिर वैश्य और तब शूद्रों का नम्बर आता था अन्य जातियाँ-वर्ण व्यवस्था से बाहर गिनी जाती थीं। यह वर्ण-व्यवस्था सांस्कृतिक मूल्यों पर आधारित थी। जो वर्ण जितना ऊँचा था वह सांस्कृतिक दृष्टि से भी उतना ही ऊँचा था।जाति-व्यवस्था में वर्ण-व्यवस्था के अनुसार यह सामाजिक क्रम नहीं बना रह सका। कहीं पर ब्राह्मण ऊँचे माने गए तो कहीं आर्थिक और राजनीतिक दृष्टि से शक्तिशाली होने के कारण कोई क्षत्रिय जाति ही प्रमुख जाति मानी गई। प्रमुख जाति जहाँ अन्य जातियों पर सामाजिक नियन्त्रण करती है और उनके परस्पर सम्बन्धों को व्यवस्थित करती है वहाँ अन्य जातियाँ उसका अनुकरण करने का प्रयास करती है। प्रमुख जाति का अनुकरण करने की यह प्रवृत्ति ही संस्कृतिकरण कहलाती है। डॉ. एम.एन. श्रीनिवास के अनुसार संस्कृतिकरण का अर्थ केवल नए रिवाजों और आदतों को ग्रहण करना नहीं है बल्कि नए विचारों और मूल्यों को भी अभिव्यक्त करना है। संस्कृतिकरण से विशिष्ट जाति को सामाजिक संस्तरण में ऊँचा स्थान मिलता है। किन्तु ऊँची जाति का अनुकरण करने में नीची जाति सावधानी से काम लेती है क्योंकि अधिक स्पष्ट रूप से अनुकरण करने के कभी-कभी बुरे परिणाम भी होते हैं जैसा कि डॉ. मजूमदार ने दिखलाया है, भारतीय जातियों में जहाँ एक ओर संस्कृतिकरण की प्रक्रिया दिखलाई पड़ रही है वहाँ दूसरी ओर असंस्कृतिकरण की प्रक्रिया भी देखी जा सकती है।

(ब) पश्चिमीकरण- आधुनिक काल में भारत में पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव से व्यापक सामाजिक परिवर्तन हुए है। इस प्रकार पश्चिमीकरण सामाजिक परिवर्तन का एक महत्वपूर्ण कारक है। पश्चिमीकरण के द्वारा भारतीय समाज में परिवार की संस्था, विवाह की संस्था, समाज के विभिन्न सदस्यों के परस्पर सम्बन्ध यौन-सम्बन्धी मूल्य, स्त्रियों की शिक्षा और गतिशीलता, वेशभूषा, मूल्य और विचार, सामाजिक नियन्त्रण के साधन इत्यादि विभिन्न तत्वों में महत्वपूर्ण परिवर्तन दिखलाई पड़ता है। पश्चिमीकरण के साथ-साथ पश्चिम का भौतिकवाद, विज्ञानवाद, उपयोगितावाद, व्यवहारवाद, व्यक्तिवाद इत्यादि विभिन्न प्रवृतियाँ पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित भारतीय नर-नारियों में देखी जा सकती हैं। फिर भी पाश्चात्य सभ्यता से जितना अधिक ग्रहण किया गया है उसकी तुलना में सांस्कृतिक प्रभाव अभी बहुत कम है। इस क्षेत्र में सांस्कृतिक विडम्बना दिखलाई पड़ती है।

(स) लौकिकीकरण- प्राचीन भारतीय संस्कृति धर्मप्राण संस्कृति कहलाती है किन्तु आधुनिक काल में पश्चिमीकरण के प्रभाव से देश में लौकिकीकरण बढ़ता जा रहा है। लौकिकीकरण से सामाजिक संस्थाओं रीति-रिवाजों और व्यवहारों के तरीकों में धर्म का प्रभाव कम होता जा रहा है और उसके स्थान पर उपयोगिता या व्यक्तिगत रुचि के आधार पर काम होता है। स्वतन्त्रता के बाद से भारत सरकार ने धर्मनिरपेक्षता का आदर्श अपनाया है। इससे भी भारत में लौकिकीकरण की प्रक्रिया तीव्र हुई है।

(द) जनतन्त्रीकरण- आधुनिक काल में पश्चिम के अधिकतर देशों में राजनीतिक व्यवस्था में जनतन्त्र को ही सर्वोत्तम प्रणाली माना जाता है। इसका मुख्य कारण यह है कि जनतन्त्र के मूल तत्व 'स्वतन्त्रता, समानता और भ्रातृत्व' आधुनिक मानव-चेतना के अनुकूल हैं। देश को स्वतन्त्रता मिलने के बाद से भारतवर्ष में भी जनतन्त्रीय सरकार की स्थापना हुई है। यद्यपि अभी सामाजिक क्षेत्र में जनतन्त्रीकरण बहुत दूर की बात है किन्तु फिर भी अनेक क्षेत्रों में इस दिशा में प्रगति हो रही है। राजनीतिक सत्ता के अधिकाधिक विकेन्द्रीकरण और जनतन्त्रीय मूल्यों को मान्यता दिए जाने से जात-पात, धर्म, क्षेत्र, लिंग, आयु आदि के आधार पर व्यक्तियों में भेदभाव कम होता जा रहा है।

जनतन्त्रीय आदर्श के अनुसार भारत सरकार ने अस्पृश्यता को अपराध घोषित कर दिया है तथा समाज के अन्य अंगों के समकक्ष में लाने में सहायता देने के लिए समाज के पिछड़े वर्गों को विशेष अधिकार दिए गए हैं। देश के प्रत्येक नागरिक को कानून की दृष्टि में अन्य नागरिकों के समान माना जाता है। प्रत्येक को व्यवसाय विवाह, शिक्षा, विचारों की अभिव्यक्ति, शासन में भाग लेने, समिति बनाने आदि की पूरी स्वतन्त्रता है। इससे समाज के पिछड़े वर्गों और स्त्रियों की स्थितियों और कार्यों में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए है। स्त्रियों की दशा में सामाजिक परिवर्तन होने से परिवार और विवाह की संस्था में महत्वपूर्ण सामाजिक परिवर्तन हुए हैं।

(य) राजनीतिकरण- भारत को स्वतन्त्रता मिलने के बाद से और देश में वयस्क मताधिकार दिए जाने से छोटे-से-छोटे गाँव से लेकर बड़े-से-बड़े नगर तक सब कहीं राजनीति का बोलबाला है। गाँव-गाँव में रेडियो पहुंच जाने से बहुत से लोग राजनीतिक गतिविधियों में रुचि लेने लगे है। चुनाव के दिनों में यह रुचि और भी बढ़ जाती है। चुनाव जीतने के लिए विभिन्न राजनीतिक दल और उनके द्वारा खड़े किए गए उम्मीदवार समाज में सब प्रकार से अपनी सत्ता बनाए रखने का प्रयास करते है। बड़े-बड़े जमींदारों और रियासतों के राजाओं के समाप्त हो जाने के बाद अब अधिकतर शक्ति राजनीतिक नेताओं के हाथ में आ गई है, इसलिए अब राजनीति ही अनेक सामाजिक परिवर्तनों का निर्णय करती है राजनीतिक कारणों से ही कुछ लोग अस्पृश्यता उन्मूलन के पक्ष में और कुछ विपक्ष में बोलते देखे जाते हैं। राजनीतिक कारणों से ही जातिवाद, सम्प्रदायवाद, क्षेत्रवाद, भाषावाद आदि विभिन्न विघटनकारी शक्तियाँ बड़ी हैं। दूसरी ओर राजनीतिक कारणों से अनेक सामाजिक समूहों में सुदृढ़ता और संगठन भी बढ़ा है। आज देश का इतना राजनीतिकरण हो गया है कि छोटे-से-छोटे गाँव से लेकर बड़े-से-बड़े नगर में अधिकतर गतिविधियाँ राजनीतिक कारणों से निर्धारित होती हैं।

2. आर्थिक कारक (Economic Factors)- समकालीन समाज में सामाजिक परिवर्तन में विभिन्न कारकों में सबसे अधिक महत्वपूर्ण कारक आर्थिक हैं केवल भारत में ही नहीं बल्कि संसार के सभी समाजों में आधुनिक काल में आर्थिक कारकों से ही सबसे अधिक सामाजिक परिवर्तन हुआ है। संक्षेप में ये आर्थिक कारक निम्नलिखित हैं:

(अ) औद्योगीकरण- औद्योगीकरण संसार में सामाजिक परिवर्तन का सबसे अधिक प्रमुख कारण है। औद्योगीकरण ही आधुनिकता का आधार है और संसार का कोई भी देश इसकी अवहेलना नहीं कर सकता क्योंकि इसी से मनुष्य और प्रकृति का सम्बन्ध निश्चित होता है। इस दृष्टि से यह सांस्कृतिक प्रगति का एक मापदण्ड है और बढ़ती हुई जनसंख्या के कारण कोई भी देश इसके बिना प्रगति नहीं कर सकता। सच तो यह है कि जिस देश में औद्योगीकरण जितना ही अधिक हुआ है वह देश अन्य देशों की तुलना में सब प्रकार से उतना ही आगे दिखलाई पड़ता है। भारतवर्ष में औद्योगीकरण से नगरीकरण बढ़ा, व्यापार बढ़ा, लोगों के मिलने-जुलने के अवसर बड़े, आर्थिक क्षेत्र में व्यापक परिवर्तन हुए और सामाजिक तथा सांस्कृतिक क्षेत्र में संस्थाओं और मूल्यों का रूप बदल गया।

(ब) नगरीकरण- यद्यपि नगरों का विकास आर्थिक के अलावा अन्य कारणों से भी हुआ है किन्तु आर्थिक कारण और उनमें भी औद्योगीकरण नगरीकरण का प्रमुख कारण है। संसार में सब-कहीं नगरों की संख्या और बडे-बडे नगरों का विस्तार बढता जा रहा है। भारतवर्ष भी इसका उपवाद नहीं है। नगरों की संख्या और विस्तार बढ़ने से देश में नगरीय समाज की विशेषताएँ जैसे भौतिकवाद व्यक्तिवाद, जीवन की तीव्र गति निर्वैयक्तिक सामाजिक सम्बन्ध, सामाजिक गतिशीलता में वृद्धि, स्त्री-पुरुष का अधिक सामाजिक सम्पर्क, बड़े परिवारों का विघटन और संयुक्त परिवार के स्थान पर केन्द्रक परिवार की स्थापना, विवाह-पूर्व और विवाह से बाहर यौन-सम्बन्धों में वृद्धि इत्यादि अनेक सामाजिक लक्षण दिखलाई पड़ते हैं।

(स) प्रौद्योगिक परिवर्तन- सामाजिक परिवर्तन के कारकों में आधुनिक युग में प्रौद्योगिकी का महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा है। भारतवर्ष में बिजली, भाप तथा पैट्रोल से चलने वाले उत्पादन के यन्त्रों यातायात और सन्देशवहन के साधन तथा दैनिक जीवन के सैकड़ों कामों के लिए नई-नई मशीनों के आविष्कार से समाज का रूप बदलता जा रहा है और परिवार तथा विवाह जैसी संस्थाओं पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा है। औद्योगिक विकास के प्रत्यक्ष प्रभाव श्रम संगठन, श्रम विभाजन, विशेषीकरण, जीवन की तीव्र गति तथा उत्पादन में वृद्धि आदि हैं।

1.3.7. सारांश

सामाजिक परिवर्तन, समाज के आधारभूत परिवर्तनों पर प्रकाश डालने वाला एक विस्तृत एवं कठिन विषय है। इस प्रक्रिया में समाज की संरचना एवं कार्यप्रणाली का एक नया जन्म होता है। इसके अन्तर्गत मूलतः प्रस्थिति, वर्ग, स्तर तथा व्यवहार के अनेकानेक प्रतिमान बनते एवं बिगड़ते हैं।

1.3.8. स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. सामाजिक परिवर्तन एवं उनकी विशेषताओं का वर्णन करें?
2. सामाजिक परिवर्तन के महत्वपूर्ण स्रोतों के बारे में विस्तार में समझाईये?
3. सामाजिक परिवर्तन की विभिन्न अवधारणाओं का वर्णन करें?
4. सामाजिक परिवर्तन के सिद्धांतों का विस्तृत वर्णन करें?
5. सामाजिक परिवर्तन के प्रकार या प्रारूपों एवं कारको रेखांकित करें?

1.3.9. शब्दावली

सामाजिक परिवर्तन

1.3.10. संदर्भ ग्रंथ सूची

1. बैरन एंड बैरनी(2000). सोशल साइकोलॉजी. पियर्सन एजुकेशन.एनडी
2. सिंह, ए.के.(2008). समाज मनोविज्ञान की रुपरेखा. मोतीलाल बनारसीदास पब्लिकेशन.एनडी.
3. जैकोन, जे.एम.(1993). सोशल साइकोलॉजी, पास्ट एंड प्रेजेंट. हिल्सडेल,एनजे
4. सेमिन,जी. एंड फिडलर, के.(1996). एप्लाइड सोशल साइकोलॉज.सीए: सेज

इकाई-4 -: पर्यावरण मनोविज्ञान, अंतर-समूह द्वन्द एवं स्वास्थ्य

इकाई की रूपरेखा

1.4.0. उद्देश्य

1.4.1. प्रस्तावना

1.4.2. पर्यावरण मनोविज्ञान का परिचय

1.4.3. पर्यावरण मनोविज्ञान की परिभाषा

1.4.4. पर्यावरण मनोविज्ञान के सैद्धांतिक उपागम

1.4.5. पर्यावरणीय समस्याएं-

1.4.6. अंतरसमूह द्वंद या संघर्ष

1.4.7. अंतरसमूह द्वंद के प्रकार

1.4.8. अंतरसमूह द्वन्द के निवारण की विधियाँ

1.4.9. स्वास्थ्य

1.4.10. बीमारियों का रोकथाम, उपचार एवं स्वास्थ्य उन्नति

1.4.11. सारांश

1.4.12. स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1.4.13. शब्दावली

1.4.14. संदर्भ ग्रंथ सूची

1.4.0. उद्देश्य कथन

- पर्यावरण मनोविज्ञान की विभिन्न परिभाषाओं को भिन्न-भिन्न चिंतकों के दृष्टिकोणों से समझ सकेंगे.
- पर्यावरण मनोविज्ञान के सैद्धांतिक उपागमों से परिचित हो सकेंगे.
- पर्यावरण सम्बन्धी विभिन्न समस्याओं से रूबरू हो पाएंगे.
- अंतर्समूह द्वन्द को समझने में सहायता मिलेगी.
- अंतर्समूह द्वन्द के के प्रकारों को समझ सकेंगे.
- अंतर्समूह द्वन्द के कारणों को जान सकेंगे.
- अंतर्समूह द्वन्द के समाधान की विधियों से परिचित हो पाएंगे.
- मानव स्वास्थ्य एवं उसके महत्त्व को समझ सकेंगे.
- बिमारियों के रोकथाम के उपायों को जान सकेंगे.

1.4.1. प्रस्तावना

जलवायु परिवर्तन हमारे भविष्य के लिए सबसे बड़ा खतरा के रूप में चिह्नित किया गया है। इस खतरे की मान्यता में, लगभग 200 देशों में इस पर्यावरण मानव व्यवहार से होने वाली समस्या से लड़ने के लिए सहमत हुए। तो पर्यावरण के कारकों की दृष्टि से हानिकारक व्यवहार और क्या हमें प्रो-पर्यावरण की दृष्टि से कार्य करने के लिए प्रेरित नहीं होना चाहिए. यह अध्याय आपको पर्यावरण मनोविज्ञान, स्वास्थ्य एवं अंतर समूह द्वन्द के बारे में सैद्धांतिक ज्ञान और विधिक कौशल प्रदान करता है. आप पर्यावरण और ऊर्जा से संबंधित समस्याओं के मानवीय आयाम समझने के लिए सक्षम हासिल करेंगे। वर्तमान जीवन, मानव निर्मित और प्राकृतिक वातावरण, व पर्यावरण, ऊर्जा समस्याओं के मानवीय आयाम के बीच संबंधों पर केंद्रित है। पर्यावरण से मानव स्वास्थ्य बिना प्रभावित हुए नहीं रह पाता है. वर्तमान भागमभाग जीवन शैली में मनुष्य अपने स्वास्थ्य को नजरंदाज कर रहा है जबकि सबसे बहुमूल्य वस्तु आख़िरकार स्वास्थ्य ही है. मनुष्य द्वारा अर्जित की गयी तमाम सुख सुविधाएँ स्वास्थ्य न होने पर बेमतलब हो जाती हैं. तकनीकीकरण ने मानव जीवन को जहाँ एक तरफ सुलभ बनाया वही तमाम प्रकार के द्वंदों को भी संचालित कर रही है. अंतर्समुह द्वन्द जो कभी जाति, कभी धर्म, कभी, तो कभी क्षेत्र विशेष के कारण विभिन्न प्रकार की हिंसाओं की वजह बनता है.

1.4.2. पर्यावरण मनोविज्ञान का परिचय-

पर्यावरणीय मनोविज्ञान (Environmental psychology) मानव एवं उसके पर्यावरण के अन्तर्सम्बन्धों के अध्ययन पर केन्द्रित एक बहुविषयी क्षेत्र है। यहाँ पर पर्यावरण (environment) शब्द की वृहद परिभाषा में प्राकृतिक पर्यावरण, सामाजिक पर्यावरण, निर्मित पर्यावरण, शैक्षिक पर्यावरण तथा सूचना-पर्यावरण सब समाहित हैं। पर्यावरण व्यक्ति को प्रभावित करता है यदि हम इस उक्ति के अध्ययन में अधिक अभिरुचि दिखाने वाले वैज्ञानिकों का नाम ले तो उसमें डॉ.अलेन बोम्बार्ड (Dr. Alain Bombard, 1953) जो एक फ्रेंच फिजिशियन थे, का नाम सबसे ऊपर आता है। विगत वर्षों में पर्यावरण के विभिन्न पक्षों को लेकर व्यापक शोध कार्य हुए हैं और यह विषय क्रमशः एक समृद्धि अध्ययन क्षेत्र बनता जा रहा है इस विषय में अध्ययन में अनेक विषयों का योगदान रहा है। इसके अध्ययन क्षेत्र के अन्तर्गत वातावरण के प्रकार, उनके, प्रति मनुष्य की अभिवृत्ति, संस्कृति के प्रभाव, पर्यावरण की संरचना और अभिकल्प इत्यादि का विस्तृति विश्लेषण किया जा रहा है।

''पर्यावरण'' के साथ सरोकार मनोवैज्ञानिक अध्ययनों की एक विवशता है अन्यथा मनोवैज्ञानिक परिवर्त्य केवल आंतरिक मानसिक प्रक्रमों को ही संबोधित करते रहेंगे और इस तरह सदैव परोक्ष या अदृश्य ही बने रहेंगे। आन्तरिक प्रक्रियाओं पर से रहस्य का आवरण हटाने के लिए और वास्तविक जगत के साथ सार्थक संवाद स्थापित करने के लिए पर्यावरण को उद्दीपक के रूप में संदर्भ के रूप में या प्रत्यक्षीकरण के रूप में, अपने अध्ययन में शामिल करना आवश्यक हो जाता है। आरंभ में पर्यावरण मनोविज्ञान को ज्यादातर भौतिक पर्यावरण पर केन्द्रित अध्ययन के रूप में लिया गया और बाद में उसके सामाजिक तथा सांस्कृतिक पक्षों को भी जोड़ा गया।

1.4.3. पर्यावरण मनोविज्ञान की परिभाषा

1970 वाले दशक में विभिन्न तरह के वैज्ञानिकों की अभिरुचि एक साथ एक विशेष शिक्षक के तहत एक साथ आ मिली। सरस्वत जो लोगों द्वारा स्वीकृत किया गया, वह था- पर्यावरण मनोविज्ञान जिसकी सामान्य परिभाषा देना यद्यपि कठिन था परंतु फिर भी बेल, फ्रेजर तथा लुमिस (1978) ने इसे इस ढंग से परिभाषित किया- "पर्यावरण मनोविज्ञान " व्यवहार तथा निर्मित एवं स्वाभाविक पर्यावरण के अंतर संबंध का अध्ययन करने वाला विज्ञान है।"

स्टॉक कॉल्स (1978) ने यह बतलाया की मानव पर्यावरण अंतः क्रिया के सामान्य अध्ययन के क्षेत्र में पर्यावरण मनोविज्ञान मौलिक मनोविज्ञान प्रक्रियाओं तथा व्यक्ति एवं सामूहिक स्तर के विश्लेषकों पर अधिक बल डालता है। कल के साथ साथ ऐसी विशेषताएं एवं उन्मुक्त आए भी हैं जो पर्यावरण मनोविज्ञान को खास मनोविज्ञान तथा 1950 एवं 1960 के समाज मनोविज्ञान से अलग करता है। इन विशेषताओं मैं निम्नांकित प्रमुख है -

(i) क्रमबद्धता का दृष्टिकोण - इस उपागम या दृष्टिकोण में व्यवहार पर्यावरण संबंध को एक ऐसी इकाई के रूप में समझा जाता है जिसमें पारस्परिक प्रभाव होता है अर्थात जिसमें व्यवहार पर्यावरण को प्रभावित करता है तथा पर्यावरण व्यवहार को प्रभावित करता है।

(ii) समस्या उन्मुखता- इस दृष्टिकोण से पर्यावरण विचार वस्तु को सामाजिक विचार वस्तु समझा जाता है तथा महत्वपूर्ण पर्यावरण ही विचार वस्तु या समस्या का समाधान को मूल युक्ति संगत कार्य माना जाता है।

(iii) अंतर शास्त्रीय बल- के तहत इस बिंदु पर बल डाला जाता है कि शास्त्रों के सिद्धांतों की जरूरत विश्लेषण के सभी स्तरों पर मानव पर्यावरण अंतः क्रिया को समझने तथा उसके बारे में पूर्वानुमान लगाने के लिए आवश्यक है।

(iv) सामाजिक-मनोविज्ञानिक संदर्भ - इस संदर्भ में इस बात पर बल दिया जाता है कि किस तरह से सामाजिक संबंध तथा सामाजिक अंतर क्रिया आपस में भौतिक पर्यावरण से संबंधित होते हैं।

1.4.4. पर्यावरण का सैद्धांतिक उपागम

पर्यावरण मनोविज्ञान में इस समय तीन प्रमुख सैद्धान्तिक उपागम प्रचलित हैं-

1. अनुकूलन,
2. अवसर की संरचना तथा
3. सामाजिक-सांस्कृतिक प्रतिमान।

1 - अनुकूलन – यह उपागम पर्यावरण को उसकी भौतिक विशेषताओं के रूप में ग्रहण करता है और व्यक्ति को एक जैविक व मनोवैज्ञानिक प्राणी मानता है। इसका उद्देश्य पर्यावरण में विद्यमान खतरों को टालना होता है।

2 - अवसर- संरचना का उपागम पंर्यावरण के उदेश्य और देश काल से जुड़ी हुई विशेषताएँ, उसमें प्राप्त अवसर तथा सुविधाओं पर बल देता है।

3 - सामाजिक सांस्कृतिक प्रतिमान -पर्यावरण की समस्याएँ सामाजिक संरचना द्वारा उत्पन्न मानी जाती है और स्वयं पर्यावरण सामाजिक-सांस्कृतिक रूप से परिभाषित एक व्यवस्था है। अन्तर्विनिमय का उपागम व्यक्ति को परिवेश में स्थापित करके विश्लेषित करता है तथा यह मानता है कि व्यक्ति और पर्यावरण एक-दूसरे को निरन्तर प्रभावित करते रहते हैं।

स्मरणीय है कि इन उपागमो के साथ कुछ विशेष प्रकार के मूल्य तथा अभिग्रह भी जुड़े हुए हैं और शोध की समस्याओं और विधियों का चयन उन्हीं पर निर्भर करता है।

1.4.5. पर्यावरणीय समस्याएं-

आज की समकालीन पर्यावरणीय समस्याएँ एक स्थानीय तथा वैश्विक दोनों ही स्तरों पर उपस्थित हैं। पर्यावरण मनोविज्ञान अपने अध्ययन के प्रयास में पर्यावरण की समस्याओं को सुलझाने और जीवन की गुणवत्ता में वृद्धि लाने के लिए प्रतिबद्ध है। इसके समुचित विकास के लिए वास्तविक जीवन की परिस्थितियों के बारे में निष्कर्ष निकालना अपर्याप्त ही नहीं असंगत भी है। पर्यावरण और व्यावहार का संबंध प्रायः सीधा न होकर अन्य परिवर्त्यों द्वारा प्रभावित होता रहता है। यह मनोवैज्ञानिकों की रुचि का विषय रहा है।

आधुनिक पर्यावरण मनोविज्ञान का एक बड़ा भाग पर्यावरण की उन भौतिक विशेषताओं के अध्ययन से जुड़ा है जो मनुष्य के सामान्य व्यवहारों को बाधित करती है। भीड़, शोर, उच्च तापक्रम, जल तथा वायु प्रदूषण आदि का मनुष्य के स्वाभाव तथा अभियोजनात्मक व्यवहारों पर प्रभाव अध्ययन किया गया है। भारतीय परिवेश में जनसंख्या के दबाव तथा ऊर्जा की समस्या को ध्यान में रखकर कई प्रश्न उपस्थिति होते हैं। भारतीय मनोवैज्ञानिकों ने भीड़ की अनुभूति और उसके मनोवैज्ञानिक परिणामों का विशेष रूप में अध्ययन किया है। गाँव से शहर में पलायन के कारण शहरों में भीड़ बढ़ती जा रही है और इसके फलस्वरूप न केवल भौतिक पर्यावरण बल्कि मनुष्य के स्वास्थ्य, सामाजिक कार्य-कलाप और कार्यकुशलता आदि भी नकारात्मक ढंग से प्रभावित हो रही है।

भीड़ जनसंख्या के घनत्व से जुड़ी है परन्तु भीड़ की अनुभूति के रूप में उसका एक मनोवैज्ञानिक पहलू भी है। जिसको ध्यान में रखे बिना भीड़ के प्राभावों का समुचित विश्लेषण नहीं किया जा सकता। प्रयोगशाला और वास्तविक जीवन में हुए अनेक अध्ययन यह दिखाते हैं कि भीड़ की अनुभूति कार्य निष्पादन, सामाजिक अंतःक्रिया, मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य आदि पर ऋणात्मक प्रभाव डालती है।

मनुष्य की आवश्यकताओं का स्वरूप तथा प्रतिद्वन्द्विता-सहिष्णुता की प्रवृत्ति भीड़ के प्रभाव को परिसीमित करते हैं। स्मरणीय है कि जनसंख्या के घनत्व से निश्चित स्थान में रहने वाले व्यक्तियों की संख्या का बोध होता है और भीड़ स्थान के अभाव की अनुभूति की दशा है। भीड़ कि अनुभूति घर बाहर प्राथमिक तथा द्वितीयक पर्यावरण में अलग-अलग पायी जाती है।

भीड़ के अध्ययन प्रयोगशाला और वास्तविक जीवन दोनों तरह की दशाओं में हुए हैं। प्रयोगशाला में किए गए अध्ययनों में सामान्यीकरण की संभावना अपेक्षाकृत सीमित रहती है। साथ ही भीड़ की अनुभूति भी विभिन्न स्थानों पर एक जैसी नहीं होती। अध्ययनों के परिणामों से यह स्पष्ट होता है कि अनुभूति न केवल परिस्थिति विशिष्ट होती है बल्कि बची जा सकनेवाली दशाओं में भीड़ अपरिहार्य दशाओं की तुलना में अधिक होती है। भीड़ और शोर के कारण जटिल कार्यों का निष्पादन घट जाता है परन्तु जब व्यक्ति इन प्रतिबलों से अनुकूलित रहता है तो भीड़ का ऋणात्मक प्रभाव घट जाता है। घर के अन्दर के पर्यावरण का प्रत्यक्षीकरण शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में अलग-अलग पाया गया है। भीड़ पर हुए अध्ययनों के परिणामों का सामान्यीकरण वस्तुतः एक चुनौती है क्योंकि वास्तविक जीवन की परिस्थितियाँ भिन्न होती हैं। एक ही व्यक्ति अपनी दैनिक जीवनचर्या में भिन्न-भिन्न प्रकार की और भिन्न-भिन्न अनिश्चितता की मात्रा वाली भीड़ की स्थितियों से गुजरता है। सम्भवतः इन परिस्थितियों के अनुभव के आधार पर व्यक्ति एक अनुकूल स्तर विकसित करता है और उसी के आधार पर प्रतिक्रिया करता है।

भीड़ का मानव व्यवहार पर नाकारात्मक परिणाम क्यों पड़ता है ? इसे समझने के लिए कई सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है। इनमें व्यवहार सीमा, नियन्त्रण तथा उद्दोलन के सिद्धान्त प्रमुख हैं। इनमें भीड़ के प्रभावों की व्याख्या के लिए अलग-अलग मध्यवर्ती परिवर्त्यों की संकल्पना की गयी है उनकी अध्ययनों द्वारा आंशिक पुष्टि हुई है। भीड़ और स्वास्थ्य के बीच सम्बन्ध उपलब्ध सामाजिक समर्थन की मात्रा पर निर्भर करता है। भीड़ और तापक्रम के प्रभाव भी संज्ञानात्मक कारकों की मध्यवर्ती भूमिका को स्पष्ट करते हैं। घरों में जनसंख्या के घनत्व का स्वास्थ्य, बच्चों के साथ व्यवहार, सांवेदिक समर्थन आदि पर ऋणात्मक प्रभाव पाया गया है परन्तु सामाजिक आर्थिक तथा जनांकिक कारकों को नियन्त्रित करने पर यह प्रभाव घट जाता है। स्मरणीय है कि कोई भी परिवर्त्य स्थायी रूप से मध्यवर्ती चर नहीं हो सकता क्योंकि प्रत्येक अन्तः क्रिया गत्यात्मक होती है। पर्यावरण और उसकी समस्याओं पर सार्थक विचार सांस्कृतिक कारकों के परिप्रेक्ष्य में ही संभंव है। विशेषरूप से उच्च जनसंख्या वृद्धि, सीमित संसाधन, गरीबी, समाज की ग्रामीण एवं कृषि प्रधान पृष्ठभूमि सामाजिक परिवर्तन के लिए विकास योजना व विभिन्न सांस्कृतिक परम्पराएँ हमारे लिए विचारणीय हैं।

अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्धों, परिवार और समुदाय को प्रधानता देने वाले भारतीय समाज में, जहाँ व्यक्ति नहीं बल्कि परिवार समाज की मूल ईकाई है, पर्यावरणीय प्रतिबलों का प्रभाव पश्चिमी देशों जैसा नहीं होगा। भारतीय परिस्थिति इन अर्थ में भी भिन्न है यहाँ पर आने वाले प्रतिबल विविध प्रकार के हैं। वे एक-दूसरे से जुड़े होते हैं तथा इनके ऊपर नियंत्रण आसानी से नहीं किया जा सकता। आधुनिक भारतीय अध्ययन सम्प्रत्यात्मक रूप से अधिकांशतः पाश्चात विचारधारा से ही प्रभावित रहें हैं और भारतीय सामाजिक यथार्थ के प्रति कम संवेदनशील रहे हैं। वस्तुतः भीड़ की अनुभूति भारतीय परिवेश में जहाँ लोगों का जीवन विभिन्न संस्कारों, रीति-रिवाजों, रस्मों, नाते-रिश्ते की भागीदारी से ओतप्रोत रहे हैं भिन्न होती है। अभी भी एकांकी परिवार की संख्या में वृद्धि होने के बावजूद संयुक्त परिवार किसी-न-किसी रूप से बना हुआ है।

1.4.6. अंतर समूह द्वंद या संघर्ष-

समाज मनोवैज्ञानिकों, समाजशास्त्रीय तथा मानव शास्त्रियों ने सामाजिक संघर्ष या सामूहिक द्वंद के अध्याय पर बल डाला है। जब दो या दो से अधिक व्यक्तियों या व्यक्तियों के दो या दो से अधिक समूहों के बीच इस ढंग की प्रक्रिया होती है जिसमें लोग किसी न किसी ढंग से एक दूसरे का विरोध करते हैं, तो इसे सामूहिक द्वंद्व कहा जाता है।

ऑल सेन (1978) के शब्दों में, " सामूहिक या सामाजिक द्वंद तब उत्पन्न होता है जब दो या दो से अधिक व्यक्ति सामाजिक अंतर क्रिया में एक दूसरे का विरोध करते हैं, एक दुर्लभ और असंगत लक्ष्यों की प्राप्ति करने के लिए एक दूसरे पर सामाजिक सत्ता का उपयोग करते हैं और अपने विरोध को उन लक्ष्यों को प्राप्त करने में बाधा डालते हैं "।

वेबर (1964) में भी सामाजिक संघर्ष को इसी तरह परिभाषित करते हुए कहा है," सामूहिक द्वंद एक सामाजिक संबंध होता है जहां व्यक्ति अपनी इच्छा अनुसार जानबूझकर अन्य पार्टी या पार्टियों के प्रतिरोध के प्रतिकूल अनुक्रिया करता है"।

इन परिभाषा ओं का विश्लेषण करने पर सामूहिक द्वंद या संघर्ष के स्वरूप के बारे में कुछ तथ्यों का पता चलता है जो निम्नांकित है-

1- समूह संघर्ष में सामाजिक सत्ता सम्मिलित होती है- सभी तरह के सामाजिक संघर्ष या द्वंद में सामाजिक सत्ता सम्मिलित होती है। इस तरह की सत्ता का प्रयोग करके प्रत्येक समूह अपना अपना लक्ष्य प्राप्त करना चाहता है। परिणाम यह होता है कि जिसकी सत्ता अधिक शक्तिशाली होती है, वह जीत जाता है अर्थात लक्ष्य की प्राप्ति कर लेता है, तथा जिसकी सत्ता कमजोर होती है वह लक्ष्य को प्राप्त करने में असफल रह जाता है।

2- समूह संघर्ष में असंगति या असामंजस्य- सामूहिक द्वंद एक ऐसा द्वंद होता है जिसमें सभी लोगों को वह चीज या वस्तु नहीं मिल पाती है जिसकी उसे चाय होती है। कुछ लोग तो अपनी इच्छा पूरा करने में सफल हो जाते हैं तो कुछ लोग की चाह मात्र चाह बनकर ही रह जाती है अर्थात सामूहिक संघर्ष की परिस्थिति ऐसी होती है कुछ व्यक्ति अन्य व्यक्तियों की कीमत पर ही किसी लक्ष्य की प्राप्ति कर सकने में समर्थ हो पाते हैं।

3- समूह संघर्ष अस्वयंभावी होता है- अधिकतर सामाजिक परिस्थितियां इस धमकी होती है कि उनमें सभी व्यक्तियों की रुचियां या उनके विचार शायद ही कभी बिल्कुल ही एक समान होते हैं। वे हमेशा यह कोशिश करते हैं कि उनके द्वारा किए गए अंतः क्रिया से उनकी ही जीत हो। अन्य दूसरे लोग अंतर क्रिया को अपने पक्ष में ले जाने की भरसक कोशिश करते रहते हैं और वे चाहते हैं कि जीत उनकी हो। ऐसी परिस्थिति में समूह या सामाजिक द्वंद्व या संघर्ष अस्वयंभावी होता है।

समूह द्वंद की उपयुक्त विशेषताएं प्रधान हैं। इन विशेषताओं के अलावा समाज मनोवैज्ञानिकों का मत यह भी है कि शुद्ध समूह संघर्ष विरल होता है क्योंकि संघर्ष के साथ साथ प्रायः संयोगिता की भी भावना पाई जाती है।

1.4.7. अंतर सामूहिक द्वन्द के प्रकार-

समाज मनोवैज्ञानिकों तथा समाज शास्त्रियों ने मिलकर सामूहिक द्वंद के तीन प्रमुख प्रकार बतलाया है-

1- प्रत्यक्ष संघर्ष(overt conflict)

2-वस्तुनिष्ठ संघर्ष (objective conflict)

3-आत्म निष्ठ संघर्ष (subjective conflict)

इन तीनों का वर्णन निम्नलिखित है -

1- प्रत्यक्ष संघर्ष- प्रत्यक्ष संघर्ष व संघर्ष होता है जो बिल्कुल ही खुला एवं स्पष्ट होता है। इसमें दोनों की समूह या पार्टीओं में प्रतिस्पर्धा तीखा एवं विपक्ष होता है।

2- वस्तुनिष्ठ संघर्ष - वस्तुनिष्ठ संघर्ष वैसे संघर्ष को कहा जाता है जिसमें परिस्थिति ऐसी होती है की एक समूह ने दूसरे समूह समूह की कीमत पर कुछ लाभ प्राप्त करने की कोशिश करता है। इस तरह से वस्तुनिष्ठ संघर्ष से तात्पर्य एक ऐसी सामाजिक परिस्थिति जहां कुछ लोगों को लाभ होता है तो कुछ लोगों को हानि होती है क्योंकि परिस्थिति ही ऐसी होती है।

3- आत्म निष्ठ संघर्ष- जब व्यक्ति किसी ऐसी परिस्थिति की पहचान या प्रतिरक्षण करता है जिसे वह संघर्ष की परिस्थिति कहता है, तो उसे आत्म निष्ठ संघर्ष कहा जाता है। कभी-कभी ऐसा होता है कि आत्म निष्ठ संघर्ष व्यक्तियों में अधिक दिनों तक बिना उसे प्रत्यक्ष संघर्ष में बदले ही बिना रहता है।

भारतीय समाज में सामूहिक द्वंद को उत्पन्न करने वाली समस्याएं -

प्रत्येक समाज के कुछ सामाजिक समस्याएं होती है जिससे सामाजिक संघर्ष या द्वंद उत्पन्न होता है। भारतीय समाज में भी कुछ ऐसी सामाजिक समस्याएं हैं जिनसे सामाजिक संघर्ष की उत्पत्ति होती है। इन सामाजिक समस्याओं में निम्नांकित प्रमुख है-

1- जनजाति समस्या

2- जाति समस्या

3- सांप्रदायिक समस्या

4- मजदूर मालिक समस्या

5- छात्र समस्या

6- भूस्वामी किराएदार समस्या

7- लाभान्वित वर्ग एवं अलाभान्वित वर्ग का टकराव

8- भाषा समस्या

9- नौकरी की समस्या

1.4.8. अंतर सामूहिक द्वंद समाधान की विधियां - सामाजिक मनोवैज्ञानिकों द्वारा सामूहिक संघर्ष के समाधान की कुछ विधियों का वर्णन किया गया है जिनमें निम्नांकित प्रमुख हैं।

1- पारस्परिक लाभदायक लक्ष
2- समझौता
3- विशेष मानक का उपयोग
4- प्रति सामाजिक व्यवहार
5- वैज्ञानिक उपागम का उपयोग
6- द्वीविमीय मॉडल का उपयोग
7- तीसरी-पार्टी से संपर्क

1- पारस्परिक लाभदायक लक्ष्य - सामूहिक संघर्ष को समाप्त करने का यह एक सामान्य तरीका है कि दोनों समूहों या पार्टियों के बीच एक पारस्परिक लाभदायक लक्ष्य को रखा जाए। ऐसे लक्ष्य के होने पर दोनों समूह आपस में मिलकर काम करेंगे तथा एक दूसरे की कठिनाइयों के समाधान में हाथ बटा कर समूह संघर्ष को कम करेंगे। पारस्परिक लाभदायक लक्ष्य के होने पर सामूहिक संघर्ष कम हो जाता है।

2- समझौता- दोनों प्रतिद्वंदी समूहों के बीच समझौता करा देने से भी समूह संघर्ष में कमी आ जाती है। Simmel (1957) का मत यह है कि समझौता एक ऐसी प्रविधि है जिसमें दोनों समूह में से कोई भी समूह को ना लाभ होता है या ना हानि होती है फलस्वरूप, उसमें संघर्ष अपने आप कमने लगता है।

3- विशेष मानक का उपयोग - व्यक्तियों के दो समूहों के बीच का संघर्ष एक विशेष मानक विकसित करके भी किया जाता है जिनमें दो समूह द्वारा एक मानक बनाकर बीच का संघर्ष दूर किया जाता है। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार दोनों समूहों को एक दूसरे को प्रभावित करने की क्षमता होती है और उन दोनों में उस क्षमता के प्रयोग की लालसा होती है तो वैसी परिस्थिति में दोनों समूह या पार्टी मिलकर एक नया मानक विकसित कर अपने बीच के संघर्ष को कम करते हैं।

4- प्रति सामाजिक व्यवहार - प्रति सामाजिक व्यवहार से वैसे व्यवहार से होता है अन्य व्यक्तियों के लिए धनात्मक भाव उत्पन्न करता है। जब एक व्यक्ति या समूह दूसरे व्यक्ति या समूह के प्रति किसी तरह का प्रति सामाजिक व्यवहार करता है, तो इससे सामूहिक द्वंद में अपने आप कमी आ जाती है।

5- वैज्ञानिक उपागम का उपयोग- इसमें निम्नांकित तीन उपागम प्रमुख हैं -

(i) जीत - हार उपागम
(ii) हार - हार उपागम
(iii) हार जीत उपागम

6- द्वीविमीय मॉडल का उपयोग - सामूहिक संघर्ष को कम करने के लिए समाज मनोवैज्ञानिकों द्वारा एक द्वीविमीय मॉडल का विकास किया गया है। इस मॉडल के अनुसार, सामूहिक संघर्ष समाधान में दो विभिन्न आयाम होते हैं जो महत्वपूर्ण होते हैं। वे दो आयाम है- निश्चयआत्मकता तथा सहयोगीता। निश्चयआत्मकता मैं एक पार्टी या समूह अपनी इच्छा या अभीप्रेरणा की तुष्टि की इच्छा व्यक्त करता है

जबकि सं सहयोगिता में पार्टी या समूह दूसरे पार्टियां समूह की इच्छा या अभीप्रेरण की पुष्टि करने का भी अधिक से अधिक ख्याल रखता है।

7- तीसरी पार्टी से संपर्क- समाधान के इस तरीके में दोनों व्यक्ति या पार्टी संघर्ष के संवेगीक पहलू तथा मौलिक संबंध के बारे में खोजबीन करता है तथा सर्जनात्मक समस्या समाधान ढूंढने का प्रयास करता है।

भारतीय संदर्भ में सामूहिक संघर्ष का समाधान- भारत एक विशाल देश है जिसमें कई तरह के समूह संघर्ष या सामाजिक संघर्ष होते रहते हैं। इन संघर्षों का समाधान यद्यपि उपर्युक्त तरीकों से बहुत हद तक संभव है, फिर भी इन समस्याओं का समाधान करने के लिए कुछ विशेष उपायों पर भारतीय मनोवैज्ञानिकों ने बल डाला है। इन उपायों का वर्णन निम्नांकित है।

1- सांप्रदायिक संघर्ष का समाधान- भारत जैसे देश में हिंदू और मुस्लिम के बीच सांप्रदायिक संघर्ष सबसे अधिक प्रमुख है। इस तरह के संघर्ष का समाधान का संबंध अल्पसंख्यक समस्या से है क्योंकि मुस्लिम की संख्या भारत में हिंदुओं की संख्या से काफी कम है। इस तरह के संघर्ष को दूर करने के लिए मुस्लिम भाइयों को उचित शिक्षा, संसद में तथा राज्य के विधान मंडलों में उनका पर्याप्त प्रतिनिधित्व, उर्दू को पर्याप्त दर्जा देना आदि को प्रधान बताया गया है।

2- जनजातीय संघर्ष का समाधान- जनजातियों के मन में क्या विश्वास हो गया है कि उनकी आर्थिक एवं शैक्षिक पिछड़ेपन अब दूर नहीं हो सकता जब तक कि उनका अलग एवं स्वतंत्र पहचान ना हो। सरकार को उनके इस विश्वास को दूर करना होगा तथा उनमें एक नया विश्वास उत्पन्न करना होगा।

3- जातीय संघर्ष का समाधान- इस संघर्ष को दूर करने के लिए शज्ञ ने कई तरह के सुझाव दिए हैं जैसे- पिछड़ी जाति तथा हरिजनों को शिक्षित करना, उन्हें आर्थिक समानता दिलाना, सरकारी नौकरी में आरक्षण दिलाना आदि प्रमुख है

4- छात्र संघर्ष का समाधान- इस संघर्ष मनोवृत्ति को दूर करने के लिए उनके कुंठा तथा चिंता को दूर करना होगा। उनकी शिक्षा रोजगार उन्मुख की होनी चाहिए।

5- श्रमिक मालिक संघर्ष का समाधान- इस संघर्ष को दूर करने के लिए श्रमिकों के सामाजिक आर्थिक स्तर को ऊंचा करना होगा। इसके लिए उन्हें उचित शिक्षा, उचित मजदूरी तथा अपने कार्य के वातावरण में सहभागिता आवश्यक है।

1.4.9. स्वास्थ्य -

समाज मनोविज्ञान के क्षेत्र में गए शोधों का एक मुख्य अनुप्रयोग व्यक्ति के स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं के समाधान में है। इसे ही स्वास्थ्य व्यवहार का मनोविज्ञान कहा जाता है। जिस तरह से नैदानिक मनोविज्ञान एवं समाज मनोविज्ञान एक साथ मिलकर सामुदायिक मनोविज्ञान का प्रारूप बनाते हैं और मानसिक कल्याण की समृद्धि के लिए कार्य करते हैं, ठीक उसी तरह से इन दोनों ही शास्त्रों आपस में मिलकर स्वास्थ्य देखरेख मनोविज्ञान के क्षेत्र में योगदान कर सकते हैं जिसका उद्देश्य दैनिक स्वास्थ्य कल्याण को समृद्ध करना होता है। टेलर (1999) के अनुसार इस मनोविज्ञान में स्वास्थ्य एवं मनोवैज्ञानिक चारों के बीच के संबंधों का अध्ययन किया जाता है। इस क्षेत्र के मनोवैज्ञानिकों का विश्वास है कि व्यक्ति के किसी

विश्वास, मनोवृति एवं व्यवहार का उसकी बीमारी के उत्पन्न होने एवं उसके रोकथाम पर सार्थक प्रभाव पड़ता है। इससे एक संबंधित क्षेत्र जिसे वे व्यवहारात्मक औषध कहा जाता है, मैं इन बीमारियों के उत्पन्न होने तथा उनके रोकथाम में व्यवहारत्मक तथा जैवचिकित्सा (biomedical) ज्ञान को एक साथ संयोजित किया जाता है, जो सामान्यतः साधारण मेडिकल क्षेत्र के माने जाते हैं। स्वास्थ्य मनोविज्ञान तथा व्यवहार औषध दिन की शुरुआत (1970) वाले दशक में हुई थी, ने स्वास्थ्य व्यवहार के अध्ययन में सैनिकों की भूमिका विशेषकर समाज मनोवैज्ञानिकों की भूमिका पर डाला है कि आजकल लगभग यहां स्थापित हो चुका है कि अधिकांशतः मृत्यु का कारण कोई छूता रोग नहीं होकर दोषपूर्ण जीवन शैली होता है जिसमें उचित सुधार मनोवैज्ञानिक ही कर सकते हैं। ऐसे जीवन शैली में सुधारात्मक उपायों के जरिए उन्नति लाई जा सकती है और तब व्यक्ति का स्वास्थ्य व्यवहार को संतुष्ट किया जा सकता है। अमेरिका में तो इस तरह के दोषपूर्ण जीवन शैली में सुधार लाने के लिए सरकार की ओर से एक विशेष प्रोजेक्ट जिसे हेल्दी पीपुल 2000 इनीशिएटिव (Healthy people 2000 initiative) की संज्ञा दी गई है, सफलता पूर्वक चलाया जा रहा है।

स्वास्थ्य व्यवहार के क्षेत्र में किए गए अध्ययनों से कुछ प्रमुख तथ्य सामने आए हैं जिन्हें व्यक्तियों के स्वास्थ्य को उन्नत बनाने की दिशा में महत्वपूर्ण माना गया है। ऐसे कारक निम्नांकित है-

(i) मनोवैज्ञानिक तनाव से नकारात्मक दैनिक परिवर्तन उत्पन्न होते है।

(ii) सीखी गई स्वास्थ्य आदत (learned health habits) व्यक्ति के स्वास्थ्य के लिए उत्तम होता है परंतु वे कभी-कभी हानिकारक भी साबित होते हैं।

(iii) व्यक्तित्व शील गुण व्यक्ति में विशिष्ट बीमारी करने में सहायक होते हैं।

(iv) व्यक्ति किस तरह से बीमारी से नहीं पड़ता है, वह उतना ही महत्वपूर्ण हो सकता है जितना यह कि वह किस तरह से स्वास्थ्य देखरेख तंत्र के साथ निपटता है।

(v) धूम्रपान करने वालों द्वारा करने वालों की अपेक्षा अल्कोहल तथा कॉफी का भी उपयोग किया जाता है।

स्वास्थ्य व्यवहार के क्षेत्र में किए गए अध्ययनो की समीक्षा से कुछ ऐसे मनोवैज्ञानिक कारक का पता चलता है जिनसे स्वास्थ्य देखरेख व्यवहार काफी प्रभावित होता पाया गया है। भारतीय मनोवैज्ञानिकों की भी इस क्षेत्र में अहम भूमिका रही है। इन सभी अध्ययनों के आलोक में निम्नांकित तीन कारकों को महत्वपूर्ण बतलाया गया है-

1- जीवन आसेधक (life stressors)

2- चित्तवृत्ति कारक(Dispositional factors)

3- स्वास्थ्य जोखिम व्यवहार(health risk behaviour)

1-जीवन आसेधक - इस क्षेत्र में किए गए अध्ययनों से यह स्पष्ट हुआ है कि व्यक्ति के जीवन में कुछ ऐसी घटनाएं घटती है जो आसेधक के रूप में होती हैं उससे स्वास्थ्य व्यवहार प्रभावित होते हैं। इस क्षेत्र में आरंभिक कार्य 'सेली 1956 तथा होल मॉस एवं राहे 1967' द्वारा किया गया तथा इन आसेधको से

उत्पन्न तनाव को मापने के लिए इन लोगों ने मापनी भी विकसित किया। भारतीय संदर्भ में एम. अग्रवाल तथा नायडू, (1988) ने एक मापनी विकसित किया जिसका नाम " stressful experiences of the past one year " रखा गया। इस मापनी के सहारे अध्ययन करके इन लोगों ने यह बात बताया कि अवांछित घटनाएं अपने आप में बीमारी के लक्षणों का सार्थक भविष्य वाची होता है। इन लोगों का मत था कि अवांछित घटनाएं व्यक्ति के आत्म संप्रत्यय एवं सामाजिक प्रतिमा को कूप्रभावित करता है जिनसे व्यक्ति में जीवन आसेधक के साथ निपटने की क्षमता कम हो जाती है। पुणे में दो अध्ययन ऐसे किए गए हैं जिनसे पता चलता है कि दिन प्रतिदिन के आसेधक किस तरह से मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करते हैं।

एक अध्ययन लिफोर, ईभास एवं पालसेन, (1991) तथा दूसरा अध्ययन लीफोर, पालसेन तथा ईबांस द्वारा (1571) में किया गया। इन अध्ययनों के आधार पर यह बतलाया गया कि चिर कालिक आसेधक जैसे गरीबी, बेरोजगारी, गंदी बस्ती में निवास तथा जन संकुलन का स्वास्थ्य व्यवहार दिन-प्रतिदिन की तुलना में अधिक खराब होता है।

कुछ ऐसे भी अध्ययन किए गए जिनसे यह पता चलता है कि किसी बीमारी से ग्रस्त व्यक्तियों द्वारा किस तरह के जीवन आसेधको की अनुभूति की गई है। गुप्ता एवं श्रीवास्तव, 1983 ने यक्षमा तथा छाती के रोगियों का एक साल तक अनुवर्ती अध्ययन किया पाया कि ऐसे रोगी जिन्होंने गत 1 साल की अवधि में कोई भी तनावपूर्ण घटना का अनुभव नहीं किया, उन में उन्नति के लक्षण उन रोगियों के तुलना में जिन्होंने ऐसी तनावपूर्ण घटना का अनुभव किया था, अधिक स्पष्ट पाए गए।

अय्यर तथा बागड़िया, 1986 ने न्यूरोडरमैटीटिस (Neurodermatitis) से ग्रस्त इस रोगियों के पारिवारिक पृष्ठभूमि का अध्ययन करने पर कि ऐसे रोगी बाल्यावस्था में संवेगात्मक वंचन (emotional deprivation) से प्रभावित हुए थे, इनकी माताओं में व्यक्तित्व के असामान्य शील गुण थे तथा इनमें आरंभिक अवस्था से ही घबराहट की परिस्थिति में त्वचा को नोचने, रगड़ने आदि की आदत विकसित हो गई थी। इन अध्ययनों से इस निष्कर्ष पर पहुंचा जाता है कि कोई भी बीमारी के पीछे कोई एक आसेधक नहीं होकर अनेकों आरोधीकों का एक संचई प्रभाव होता है।

2- चित्तवृत्ति कारक- यहां मनोवैज्ञानिकों द्वारा फोटो के आधार पर यह पता लगाने की कोशिश की गई है कि विभिन्न लोगों के रोगियों में किस तरह के व्यक्तित्व शील गुण शाह चरित होते हैं। हुसैन, मुरुगप्पान, (1992) ने एचआईवी धनात्मक रोगियों की तुलना एचआईवी नेगेटिव रोगियों की तुलना किया और पाया कि HIV रोगियों में चिंता, विषाद, स्नायु विकृति, मद्यपानता, दोष भाव, आत्महत्या सहसंबंध विचार आदि HIV नेगेटिव रोगियों के तुलना में अधिक थे।

उसी तरह से वैध, श्रीवास्तव एवं श्रीवास्तव, 1985 ने कैंसर रोगियों को हाइपरटेंशन रोगियों के साथ तथा दो नियंत्रित समूह जो आयु, योन एवं शिक्षा पर आधारित है, तुलना किया आया कि कैंसर तथा हाइपरटेंशन रोगियों द्वारा सामान्य प्रयोज्यों या नियंत्रित प्रयोज्यो की तुलना में स्नायु विकृत प्रवृत्ति अधिक थी।

इन अध्ययनों से यह स्पष्ट हो जाता है कि विकृत स्वास्थ्य व्यवहार के साथ कुछ व्यक्तित्व कारक सहचरित होते हैं। कुछ अध्ययनों में यह देखा गया है कि एक विशेष तरह का व्यवहार पेटर्न टाइप ए व्यवहार पैटर्न में कहा जाता है, कोरोनरी हृदय रोग से संचालित होता है। टाइप ए व्यवहार पेटर्न एक ऐसा पेटर्न होता है जिसमें व्यक्ति में अत्यधिक प्रतियोगिता का भाव, समय पर कार्य करने की बाध्यता, किसी कार्य में जरूरत से ज्यादा आवेस्टन, ईर्ष्या, आक्रामकता आदि मुख्य रूप से दिखलाया जाते हैं। टाइप बी व्यवहार इसका विपरीत पैटर्न होता है जिसमें व्यक्ति अधिक तनाव मुक्त, दार्शनिक एवं खुशी की अवस्था में होता है। भाटिया तथा उनके सहयोगियों, 1990 ने सीएचडी (CHD) योग के 72% कैसेट में टाइप ए व्यवहार पेटर्न पाया। उसी तरह से गुलाम, गुप्ता, बंधोपाध्याय एवं मिश्रा, 1990 ने यह पाया कि CHD के रोगियों द्वारा टाइप ए व्यवहार के परीक्षण पर उच्च प्राप्तांक पाए गए।

चित्तवृत्त कारक सहसंबंध अध्ययन के आधार पर तब हम इस अंतिम निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि दैनिक स्वास्थ्य व्यवहार का साहचर्य व्यक्तित्व के विशेष तरह के शील गुण एवं व्यवहार पैटर्न के साथ भी होता है।

3- स्वास्थ्य जोखिम व्यवहार- स्वास्थ्य जोखिम व्यवहार से तात्पर्य वैसे व्यवहार से होता है जिसे व्यक्ति प्रायः आदतन अपने जीवन में करता है परंतु उससे उसे कोई बीमारी होने का जोखिम बढ़ जाता है। टेलर, 1991 ने अपने अध्ययन में पाया कि धूम्रपान एक ऐसा व्यवहार पैटर्न है जिससे कैंसर एवं हृदय रोग के होने की संभावना काफी बढ़ जाती है। उनका दावा था कि इन रोगों से होने वाले मृत्यु का करीब 25% केसेज को धूम्रपान की आदत को छुड़ाकर बचाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त कुछ अध्ययनों में मद्यपान तथा औषध व्यसन को भी प्रमुख जोखिम कारक माना गया है। पाई एवं गर्ग, 1984 ने अपने अध्ययन में 120 रोगियों के केस रिकॉर्ड की जांच किया और पाया कि मद्यपान से मूलतः वैसे पुरुष प्रभावित होते हैं की आयु 26 वर्ष से ऊपर होता है, विवाहित होते हैं तथा न्यूक्लियर परिवार में रहते हैं। इस प्रतिदर्श का करीब 50% से अधिक रोगियों में मद्यपानता तथा मानसिक बीमारी का इतिहास पाया गया। अहमद, रामालिंगम एवं अहमद, 1984 ने नई दिल्ली के नजदीक एक कैंप में कुछ पर्यटको पर जिसमें मॉरीशस तथा उत्तर अमेरिका के कॉलेज छात्र थे, का औषध व्यक्तियों का एक क्रॉस सांस्कृतिक अध्ययन किया। इस अध्ययन में यह पाया गया कि विभिन्न व्यक्तित्व आयामो` पर कॉलेज छात्रों में विभिन्नता थी परंतु कोई निश्चित पैटर्न स्पष्ट रूप से देखने को नहीं मिला। गुप्ता एवं नलवा, 1986 ने हीरोइन व्यसनी की तुलना कॉलेज के ऐसे छात्रों से किया जिनमें किसी प्रकार का कोई व्यसन की आदत नहीं थी। परिणाम में देखा गया कि हिरोइन व्यसन को अपने माता पिता के साथ संबंध आत्मक समस्याएं थी तथा यहां तक कि अपने आत्म संप्रत्यय के साथ भी यह लोग ठीक ढंग से संबंध स्थापित नहीं कर पाते थे। हीरोइन व्यसनी का प्राप्तांक डर, दोस भाव आदि के माप पर तुलनात्मक रूप से अधिक था तथा आत्म संप्रत्यय की माप पर निम्न था।

निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि मनोवैज्ञानिकों द्वारा किए गए अध्ययनों से यह स्पष्ट हो जाता है कि स्वास्थ्य व्यवहार चाहे उसका संबंध मानसिक बीमारी से हो या दैहिक बीमारी से हो,

निश्चित रूप से कुछ कार को जैसे जीवन आसेधक, चित्तवृत्ति तथा स्वास्थ्य जोखिम कारक आदि से प्रभावित होते हैं।

1.4.10. बीमारियों का रोकथाम, उपचार एवं स्वास्थ्य उन्नति-

समाज मनोविज्ञान में रोकथाम का संप्रत्यय एक महत्वपूर्ण संप्रत्यय है। रोकथाम से तात्पर्य जनसंख्या में किसी उत्पन्न होने एवं उसे प्रचलित होने को रोकने से होता है तथा यह कार्य जन स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं द्वारा काफी किया जाता है।

जन स्वास्थ्य हस्तक्षेप निम्नांकित तीन रूपों में हो सकते हैं-

(i) व्यक्तियों में कुछ इस ढंग का परिवर्तन कर दिया जाए कि वे रोगात्मक एजेंटों से डटकर मुकाबला करें। इसके तहत किसी रोग से असंक्रमीकरण अभियान को रखा जाता है।

(ii) रोगात्मक एजेंटों से संपर्क होने की संभावना को काम करके भी हस्तक्षेप कार्य संपन्न किया जा सकता है। इसके अंतर्गत कुछ विशेष तरह की पोशाक पहनना, प्रभावित अंगों को असंदूषित करना आदि को रखा जाता है।

(iii) वातावरण को जिसमे रोगात्मक एजेंट परिपोषित होते हैं, कोई स्थान से परिवर्तित कर देना की वैसे एजेंट पूर्णता नष्ट हो जाए। इसमें जलजमाव पर दवा का छिड़काव, नाली एवं नालों की सफाई आदि आते हैं।

जन स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं तथा समाज मनोवैज्ञानिकों ने जिसमें एडोल्फ मेयर, लैंडमार्क तथा काप्लान नाम मशहूर है, ने रोकथाम के निम्नांकित तीन प्रकार बताए हैं-

1- प्राथमिक निवारण या रोकथाम

2- द्वितीयक निवारण या रोकथाम

3- तृतीयक निवारण या रोकथाम

इन तीनों का वर्णन निम्नांकित है-

1- प्राथमिक रोकथाम- प्राथमिक रोकथाम से तात्पर्य वैसे रोकथाम से होता है जिसका उद्देश्य वैसे जीव संख्या जनसंख्या में किसी बीमारी को उत्पन्न होने से रोकने से होता है जिसमें उस बीमारी के होने की संभावना अधिक तीव्र होती है। काप्लान, (1964) के अनुसार, प्राथमिक रोकथाम से तात्पर्य उन दोषपूर्ण परिस्थितियों को बीमारी उत्पन्न करने के पहले ही इस पर नियंत्रण कर लेने से होता है। इन्होंने अपने 'निरोधक मनोरोग विज्ञान' मे यह स्पष्ट किया है कि व्यक्ति के उपयुक्त विकास के लिए कुछ 'आपूर्ति' की जरूरत होती है। इन आपूर्ति में कमी होने से स्वास्थ्य मनोविज्ञान विकास अवरुद्ध हो जाता है। ऐसी आपूर्ति के तीन प्रकार बतलाए गए हैं- दैहीक आपूर्ति, मनोसामाजिक तथा सामाजिक सांस्कृतिक आपूर्ति।

2- द्वितीयक रोकथाम- द्वितीयक रोकथाम से तात्पर्य वैसे रोकथाम से होता है जिसमें मानसिक समस्याओं की पहचान प्रारंभिक अवस्था में ही कर लिया जाता है तथा उसका उपचार उसी अवस्था में करके आगे बढ़ने से रोक दिया जाता है। इस तरह की रोकथाम की एक महत्वपूर्ण पूर्व कल्पना यह है कि

प्रारंभिक समस्याएं कुछ आरंभिक लक्षणों के आधार पर पहचाने जा सकती हैं और उस समय ही इनके साथ हस्तक्षेप किया जाए तो इसकी गंभीरता को भविष्य में बढ़ने से रोका जा सकता है। द्वितीयक रोकथाम की कई अध्ययनों जैसे- काप्लान (1961), सैनफोर्ड (1965) , ग्लास (1963) , आइसन वर्ग (1962) तथा फेयर्स (1984) द्वारा दी गई।

द्वितीयक रोकथाम कार्यक्रम की दो प्रमुख विशेषता होती है -

(i) द्वितीयक रोकथाम में वैसे सभी व्यक्तियों की जांच व्यक्तित्व परीक्षण जैसे MMPI या अन्य इसी तरह के परीक्षणों के आधार पर किया जाता है जिसमें उस समय किसी भी तरह के स्पष्ट लक्षण नहीं दिखते हैं।

(ii) फिर ऐसे व्यक्तियों को उचित नैदानिक सेवाएं प्रदान की जाती है।

ऊपर के वर्णन से स्पष्ट है कि द्वितीयक रोकथाम के दो पहलू होते हैं- जांच पड़ताल का कार्य तथा उसके बाद संभावित समस्याओं को के लिए किया गया उपचार हस्तक्षेप। समाज मनोवैज्ञानिकों तथा सामुदायिक मनोविज्ञान को दोनों का ही मत है कि जांच पड़ताल का काम कितना भी उत्तम ढंग से क्यों ना किया गया हो, यदि उसके बाद उचित उपचार हस्तक्षेप नहीं किया गया, तो सफलता प्राप्त नहीं हो पाती है। इसीलिए यह आवश्यक है कि प्रभावित लोग उचित उपचार हस्तक्षेप प्राप्त करें। इसके लिए द्वितीयक रोकथाम में तीन संबंध उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए जन सूचना कार्यक्रम चलाए जाते हैं-

(i) सामुदायिक मानसिक स्वास्थ्य विशेषज्ञ को मानसिक समस्याओं के प्रारंभिक अवस्था के लक्षणों के बारे में लोगों को बतला देना चाहिए।

(ii) ऐसे विशेषज्ञों को इन समस्याओं को दूर करने के दिनों के बारे में बतला देना चाहिए।

(iii) ऐसे विशेषज्ञों को उन पूर्वधारणाओं या पूर्वाग्रह से लड़ना चाहिए जिसके कारण प्रभावित लोगों में अपनी समस्याओं के निवारण के लिए किसी विशेषज्ञ की सहायता लेने में हिचकिचाहट होती है। कई अध्ययनों के आधार पर इस तथ्य की पुष्टि की गई है कि यदि उपचार हस्तक्षेप सफलतापूर्वक पूरा कर लिया जाता है , तो द्वितीयक रोकथाम का कार्यक्रम भी सफल हो जाता है।

3- तृतीयक रोकथाम- तृतीयक रोकथाम में मानसिक रोग उत्पन्न हो जाने के बाद उसके प्रभावों को कम करने की कोशिश की जाती है। तृतीयक रोकथाम का मुख्य उद्देश्य रोग से प्रभावित हो जाने के बाद उसके नकारात्मक प्रभावों तथा उसकी अवधि को कम करना होता है। इसमें रोगी को नया कौशल सिखाया जाता है ताकि वह अपने हीन भावना से लड़ सके तथा उसमें समायोजन एवं सामर्थ्यता कि नई शक्ति उत्पन्न हो सके। इसी रोकथाम के तहत रोगियों का पुनर्वास, सामुदायिक मानसिक स्वास्थ्य सेवा के प्रति नई मनोवृति, आंशिक अस्पतालकरण तथा सामुदायिक लॉज चलाने आदि की व्यवस्था होती है। इन सभी साधनों का प्रयोग करके रोगियों से उत्पन्न नकारात्मक प्रभावों से लड़ने की क्षमता में वृद्धि की जाती है ताकि वह अपने भविष्य के साथ ठीक ढंग से समायोजन कर सके। स्वास्थ्य देखरेख में रंग की नई चेतना के फलस्वरूप टेलर, (1978) ने दो महत्वपूर्ण समस्याओं की ओर ध्यान आकृष्ट किया है जिस पर समस्त मनोवैज्ञानिकों को गंभीरता पूर्वक सोचना होगा -

(i) अपने बीमारियों के सफल आत्म प्रबंधन में रोगियों को मिश्रित करने तथा अभी प्रेरित करने में डॉक्टर - रोगी संबंध का महत्व।

(ii) चीरकालिक बीमारियों के प्रति मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रिया को इस तरीके से समझ ना जिससे रोगी तथा उनके परिवार तनाव के साथ ठीक ढंग से निपट सके।

स्पष्ट है कि लक्षणों का नियंत्रण एवं उपचार की प्रतिक्रिया भी एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है जिसमें समाज मनोवैज्ञानिक एक मजबूत योगदान कर सकते हैं।

समाज मनोवैज्ञानिकों द्वारा व्यक्तियों के स्वास्थ्य उन्नति के लिए कुछ सुझाव दिए गए हैं जिनमें निम्नांकित प्रमुख है -

(i) मेडिकल संगठनों अर्थात अस्पतालों में प्राधिकार की रेखा कई स्तरों पर ना होकर अगर सबसे ऊपरी सतह पर केंद्रित होता है, तो इससे ऐसे संगठनों द्वारा स्वास्थ्य उन्नति के बारे में उठाया गया कदम अधिक लाभकारी होता है।

(ii) रोगी तथा डॉक्टर के पारस्परिक कौशल को उन्नत बनाने से भी स्वास्थ्य उन्नति तेजी से होता है।

(iii) डॉक्टर का रोगी के ऊपर जितना ही सामाजिक प्रभाव तथा सामाजिक सप्ताह अधिक होता है , रोगी का स्वास्थ्य व्यवहार अधिक प्रबल होता है।

(iv) जिन रोगियों में आत्म सम्मान तथा आत्मविश्वास मजबूत होता है, उनका स्वास्थ्य व्यवहार उन रोगियों की तुलना में अधिक तेजी से उन्नत होता है जिनमें ऐसा आत्मसम्मान एवं आत्मविश्वास कमजोर होता है।

स्पष्ट हुआ कि आज मनोवैज्ञानिकों द्वारा लोगों के स्वास्थ्य व्यवहार को उन्नत बनाने के लिए कुछ प्रशंसनीय सुझाव दिए गए हैं।

1.4.11. सारांश

स्वास्थ्य जीवन के लिए मनुष्य का मानसिक एवं शारीरिक रूप स्वास्थ्य रहना अति आवश्यक होता है. पर्यवरण मनोविज्ञान, स्वास्थ्य एवं अंतरसमुह द्वन्द के इस इकाई के अध्ययन से आपको यही सीख लेनी चाहिए. पर्यवरण के साथ अनुकूल समायोजन के परिणामस्वरूप ही व्यक्ति स्वास्थ्य रह सकता है तथा स्वास्थ्य मनुष्य ही अंतर्समुह द्वन्द जैसी घातक समस्यायों से सफल समाधान प्राप्त कर सकता है.

1.4.12. स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. पर्यावरण मनोविज्ञान की विभिन्न परिभाषाओं को भिन्न-भिन्न चिंतकों के दृष्टिकोणों से समझाइए?
2. पर्यावरण मनोविज्ञान के सैद्धांतिक उपागमों का वर्णन कीजिये?
3. पर्यावरण सम्बन्धी विभिन्न समस्याओं को स्पष्ट कीजिये?
4. अंतर्समूह द्वन्द एवं अंतर्समूह द्वन्द के प्रकारों का वर्णन कीजिए?
5. अंतर्समूह द्वन्द के कारण एवं समाधान की विधियों का वर्णन कीजिये?

6. मानव स्वास्थ्य एवं उसके महत्त्व को समझाईये को समझाईये?

1.4.13. शब्दावली : पर्यावरण मनोविज्ञान, अंतर्समूह द्वन्द समूह, स्वास्थ्य

1.4.14. संदर्भग्रंथ सूची :

- बैरन एंड बैरनी(2000). सोशल साइकोलॉजी. पियर्सन एजुकेशन.एनडी
- सिंह, ए.के.(2008). समाज मनोविज्ञान की रुपरेखा. मोतीलाल बनारसीदास पब्लिकेशन.एनडी.
- जैकोन, जे.एम.(1993). सोशल साइकोलॉजी, पास्ट एंड प्रेजेंट. हिल्सडेल,एनजे
- सेमिन,जी. एंड फिडलर, के.(1996). एप्लाइड सोशल साइकोलॉज.सीए: सेज
- सिंह, ए.के.(2003). औद्योगिक एवं संगठनात्मक मनोविज्ञान. भारती भवन प्रकाशन.पटना.

खंड-2 सामाजिक संज्ञान

इकाई-1 सामाजिक संज्ञान

इकाई की रूपरेखा

2.1.0. उद्देश्य

2.1.1. परिचय

2.1.2. विषय विवेचन

2.1.2.1. स्वरूप एवंपरिभाषा

2.1.2.2. सामाजिक संज्ञान के मूलभूत अभिग्रह

2.1.2.3. संज्ञानात्मक मनोबन्ध

2.1.2.4. अन्वेषण प्रणाली

2.1.2.5. सामाजिक संज्ञानकेपूर्वाग्रह तथा संभावित त्रुटियाँ

2.1.3. सारांश

2.1.4. अपनी प्रगति की जांच

2.1.5. कठिन शब्दावली

2.1.6. संदर्भ ग्रंथ सूची

2.1.0. शिक्षण उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप इस योग्य हो जाएंगे कि सामाजिक संज्ञानकी समझ और परिभाषा के साथ इसके मूलभूत अभिग्रहों से परिचित होकर इसकी व्याख्या आसानी से कर सकेंगे। समाज में घटित होने वाली घटनाओं के कारणों को खोजने का प्रयास करके हम सीख सकते हैं कि हम अपने सामाजिक जगत में होने वाली घटनाओं का मूल्यांकन करने में अपनी त्रुटियों को कैसे समझ सकते हैं।व्यक्ति के सामाजिक संज्ञान को प्रभावित करने वाले वे कौन से कारक हैं, जिनके द्वारा व्यक्ति के संज्ञान में परिवर्तन होता है।

2.1.1. परिचय

व्यक्ति का मन अपने आसपास के परिवेश को लेकर एक समझ या दृष्टि बनाने का प्रयास करता है और आवश्यकता के अनुसार उससे अनुकूल सामंजस्य अपनाता है। मान लीजिए, यदि आपका कोई मित्र आपको अपने विवाह की पार्टी के लिए बुलाता है। ध्यान दीजिए कि आपको बहुत सी जानकारी पहले से ही ज्ञात होती है जैसे कि किस तरह के कपड़े पहनने हैं, उपहार में आपको क्या ले जाना चाहिए, वहाँ पर आपके और भी मित्र होंगे,आपका विवाह में पहुँचने का समय क्या होना चाहिए जिससे अधिकांश मित्रों से मुलाक़ात हो सके, इसके अतिरिक्त भी अन्य बातों का ध्यान आपको होता है। विवाह की पार्टी हो या ऐसी ही कुछ दूसरी गतिविधियों से जुड़ा आपका पुराना अनुभव और जानकारी ही 'विवाह की पार्टी' का दूसरे उत्सवों से एक अलग चित्र बनाते हैं।

2.1.2. विषय विवेचन

2.1.2.1. स्वरूप एवं परिभाषा

संज्ञान उन सभी मानसिक प्रक्रियाओं को इंगित करता है जो सूचना को प्राप्त करने और उसके प्रक्रमण करने से जुड़ें हैं। इस विचार को सामाजिक संसार से जोड़कर देखें तो सामाजिक संज्ञान उन सभी मानसिक प्रक्रियाओं को इंगित करता है जो सामाजिक वस्तुओं से संबद्ध सूचना को प्राप्त करने और उनका प्रक्रमण करने से जुड़े हैं। इनमें वे सभी प्रक्रियाएं आती हैं जो सामाजिक व्यवहार को समझने, उनकी व्याख्या एवं विवेचना करने में सहायक होती हैं।

सामाजिक संज्ञान एक विस्तृत पद है जिससे तात्पर्य उन तरीकों से होता है जिसके सहारे व्यक्ति अपनी सामाजिक दुनिया के बारे में प्राप्त सूचनाओं की व्याख्या तथा विश्लेषण कर उन्हें याद रखता है तथा उसका उपयोग अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप करता है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि सामाजिक संज्ञान एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके माध्यम से व्यक्ति अन्य लोगों के बारे में सोचता है, उनके साथ स्थापित सम्बन्धों के बारे में सोचता है तथा उस सामाजिक वातावरण के बारे में सोचता है जिसमें वह रहता है। वास्तव में हमारे समस्त संज्ञान मूलत: सामाजिक उत्पत्ति वाले होते हैं। संज्ञान व्यक्ति के समाजीकरण के साथ प्रत्यक्ष रीति से जुड़ें होते हैं। व्यक्ति के द्वारा सूचनाओं के रूपान्तरण एवं एकीकरण प्रक्रिया पर सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारकों का व्यापक प्रभाव पड़ता है। सामाजिक संज्ञान परिवेश से उपलब्ध सूचनाओं के आधार पर उनके तात्पर्य का अनुमान करना है। सही सामाजिक संज्ञान एक दुरूह मानसिक प्रक्रम है। इसको अनेक प्रकार की अभिनीतियाँ प्रभावित करती हैं।

लेयेन्स एवं कोडोल (1990) ने स्पष्ट किया है कि सामाजिक संज्ञान के अध्ययन में प्रयुक्त संप्रत्ययों एवं विचारों का उपयोग अनेक सामाजिक वस्तुओं जैसे आत्म, अन्य व्यक्तियों, काल्पनिक व्यक्तियों, अंतरवैयक्तिक सम्बन्धों, समूहों तथा सामाजिक सूचनाओं के स्मरण संबंधी अध्ययनों में किया जाता है।

फिस्के एवं टेलर (1984) के मतानुसार, "सामाजिक संज्ञान व्यक्ति द्वारा अपने सामाजिक परिवेश से उपलब्ध सूचनाओं के आधार पर उनके तात्पर्य का अनुमान करना है।"

हार्वी (1981)के विचार में,"सामाजिक संज्ञान का तात्पर्य यह है कि लोग अपने सामाजिक जगत के विविध पक्षों की जानकारी कैसे प्राप्त करते हैं।"

उपर्युक्त परिभाषाओं का विश्लेषण के आधार परहमें सामाजिक संज्ञान के स्वरूप के बारे में निम्नलिखित तथ्य प्राप्त होते हैं:

- सामाजिक संज्ञान में व्यक्ति अपनी सामाजिक दुनिया या वातावरण से सूचनाओं को प्राप्त कर उसकी व्याख्या एवं विश्लेषण करता है।
- सामाजिक संज्ञान में व्यक्ति इन सूचनाओं का सिर्फ व्याख्या एवं विश्लेषण ही नहीं करता है बल्कि उसका उपयोग करके सामाजिक वातावरण को समझने की कोशिश करता है।

- सामाजिक संज्ञान में व्यक्ति उपयोग किये गये सूचनाओं के आधार पर सामाजिक वातावरण के बारे में एक विशेष निर्णय पर भी पहुंचता है।
- सामाजिक संज्ञान में व्यक्ति दूसरे व्यक्ति, सामाजिक समूह, सामाजिक भूमिकाओं तथा सामाजिक परिस्थिति में अपने में उत्पन्न अनुभूतियों के बारे में एक सामाजिक निर्णय करता है।

2.1.2.2. सामाजिक संज्ञान के मूलभूत अभिग्रह

सामाजिक संज्ञान से संबन्धित अध्ययनों की प्रारम्भिक अवस्था में मनोवैज्ञानिकों की मान्यता थी कि मनुष्य तर्क प्रधान प्राणी है और सामाजिक संज्ञान या निर्णय करने के लिए वह समस्त उपलब्ध सूचनाओं का प्रक्रमण तार्किक आधार पर करता है। इसलिए प्रारम्भ में मनोवैज्ञानिकों द्वारा किये गये सामाजिक निर्णयों अथवा अनुमानों की तुलना अनुमान के तार्किक मॉडलके आधार पर प्रत्याशित अनुमानों के साथ करते थे।

तार्किक मॉडल का तात्पर्य यह है कि सामाजिक संज्ञान के लिए सूचनाओं के प्रक्रमण एवं एकीकरण के तार्किक एवं परिशुद्ध तरीके होते हैं। **आइन हार्न एवं होगा (1981)** ने स्पष्ट किया कि सही और बुद्धिमत्तापूर्ण निर्णय के उदेश्य से आवश्यक है कि व्यक्ति जहां तक संभव हो सामाजिक सूचनाओं का उपयोग सावधानी और तार्किक रीति से करे। इसी दृष्टिकोण से अनुमान के तार्किक मॉडल को सामाजिक अनुमान का मानक माना गया। अनेक अध्ययनों के आधार पर ज्ञात हुआ कि वास्तव में लोग सामाजिक सूचनाओं का संग्रह एवं प्रक्रमण अतार्किक ढंग से करते हैं।

अनेक अध्ययनों से प्राप्त प्रदत्तों एवं तथ्यों के आधार पर सामाजिक संज्ञान के संबंध में अनेक मूलभूत अभिग्रहों को स्वीकार किया गया है। जो निम्न हैं-

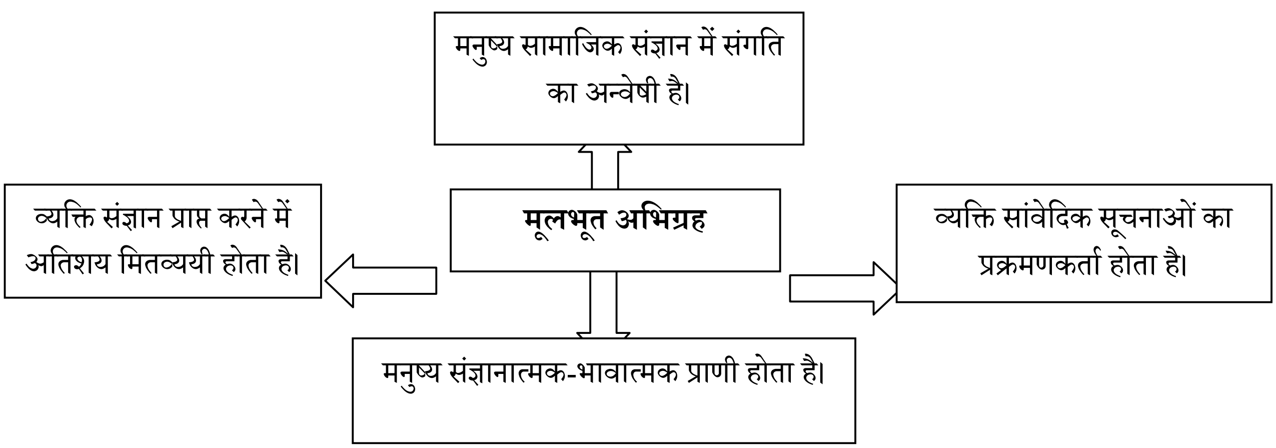

मनुष्य सामाजिक संज्ञान में संगति का अन्वेषी

संज्ञानों के मध्य असंगति स्वाभाविक रूप से अप्रिय होती है। इस तनाव से बचाने के लिए व्यक्ति अपने संज्ञानों में संगति की खोज करता है। व्यक्ति असंगत सामाजिक सूचनाओं को ज्यों का त्यों कूट संकेतित नहीं करता बल्कि अपने संज्ञान को संगत बनाये रखने के लिए तार्किकीकरण का सहारा लेता है।

इस संज्ञानात्मक संगति को **हाइडर (1958)** ने संज्ञानात्मक संतुलन,**न्यूकाम्ब (1953)** ने सममिति,**आसगुड एवं टैननवाम (1955)** ने संगति,**फेस्टिंगर (1957)** ने सन्नादिता का नाम दिया।

व्यक्ति सांवेदिक सूचनाओं का प्रक्रमणकर्ता

सामाजिक संज्ञान की व्याख्या में एक अत्यंत महत्वपूर्ण परिवर्तन तब हुआ जब अनेक मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्ति को तार्किक, अभिप्रेरित, अहं सुरक्षाकारी, तथा युक्तिसंगतकारी प्राणी के रूप में ना स्वीकार करते हुए एक अबोध मनोवैज्ञानिक के रूप में स्वीकार किया। इस अभिग्रह के अनुसार सामान्य व्यक्ति अबोध मनोवैज्ञानिक रूप में अनुभववादी न होकर तर्कवादी होता है। प्रत्येक व्यक्ति के मन में सामाजिक जगत का कोई ना कोई सिद्धान्त अवश्य होता है और वह इसी सिद्धान्त के आधार पर सामाजिक यथार्थ का अनुमान कर्ता है। व्यक्ति ऐसे ही सिद्धान्त के अनुरूप परिवेश से प्राप्त होने वाली सूचनाओं कूट संकेत, भंडारण तथा पुनरुद्धार कर्ता है। ऐसा करने में व्यक्ति अनेक प्रकार की त्रुटि भी करता है।

व्यक्ति संज्ञान प्राप्त करने में अतिशय मितव्ययी

सामाजिक संज्ञान प्राप्त करने के प्रक्रम में व्यक्ति अपूर्ण तर्कना का उपयोग कर्ता है और सामाजिक अनुमान या निर्णय करने में विविध प्रकार की त्रुटियाँ करता है। ये त्रुटियाँ मात्र अभिप्रेरणात्मक कारकों के प्रभाव स्वरूप नहीं होती। लोग प्रायः अल्पमात्रा की सूचनाओं के आधार पर उन्हें यादृच्छिक रीति से प्रक्रमित कर सामाजिक अनुमान कर लेते हैं। ऐसे अनुमान व्यक्ति की पूर्वधारणाओं एवं प्रत्याशाओं से भी प्रभावित होते हैं। **डावेस (1976)** ने बहुत पहले स्पष्ट किया था कि लोग समझते हैं कि वे सामाजिक निर्णय करते समय प्रचुर मात्रा में सूचनाओं को ध्यान में रखते हुए उनका जटिल ढंग से एकीकरण करने के बाद ही निष्कर्ष निकालते हैं, किन्तु वास्तविकता यह कि लोग एक या दो प्रमुख सूचना संकेतों के आधार पर बिना उनका उचित ढंग से मूल्यांकन किये सामाजिक निर्णय कर लेते हैं। इसलिए व्यक्ति की संज्ञानात्मक अति मितव्ययी माना जाता है।

मनुष्य संज्ञानात्मक-भावात्मक प्राणी

यह बात आश्चर्यजनक नहीं है कि व्यक्ति पूर्णत: तार्किक रूप से सामाजिक अनुमान नहीं करता। सामाजिक जीवन में बहुधा तर्क से अधिक महत्वपूर्ण व्यक्ति कि भावनायें होती हैं। प्रायः लोग प्रामाणिक तथ्यों की अवहेलना कर भावनात्मक आधार पर सामाजिक निर्णय लेते हैं। **लेयन्स (1983)** तथा **मिल्लर एवं कैटर (1982)** ने स्पष्ट किया है कि सामाजिक संज्ञान और सामाजिक अनुक्रियाओं में लोग सांख्यिकीय रीति से प्रमाणित तथ्य को सही ना मानकर अपने मित्रों की अतार्किक बातों को सत्य मान लेते हैं।

उपर्युक्त अभिग्रहों की उत्पत्ति सामाजिक संज्ञान के अध्ययनों के इतिहास में अलग-अलग समयों पर हुई। शोधकर्ताओं ने इन अभिग्रहों में किसी एक को वरीयता देकर सामाजिक संज्ञान अर्जन में निहित प्रक्रमों का अध्ययन किया है। ये अभिग्रह एक-दूसरे से भिन्न होते हुए भी परस्पर विरोधी न होकर एक-दूसरे के पूरक हैं।

2.1.2.3. संज्ञानात्मक मनोबन्ध

मनोबन्ध संप्रत्यय का उपयोग सर्वप्रथमसरबार्टलेट (1932) ने किया था। उनके अनुसार मनोबन्ध स्मृति प्रक्रमों की पुनर्प्रस्तुति हैं। इस संप्रत्यय को उद्दीपक-अनुक्रिया-साहचर्य सिद्धान्त के विरोध में प्रस्तुत किया गया। बार्टलेट ने प्रतिपादित किया कि नवीन प्रकार के सूचना संकेतों को व्यक्ति अपने मनोबन्धों के अनुरूप ही व्याख्या करता है। बाद में मनोवैज्ञानिकों ने इस संप्रत्यय की उपयोगिता को पहचाना और इसका उपयोग अधिक व्यापक स्तर पर किया जाने लगा।

मनोबन्ध संप्रत्यय के उपयोग के अर्थ को स्पष्ट करने के लिए **डुबो** एवं **राइट्समैन (1988)** ने कहा कि मनोबन्ध एक प्रकार की संज्ञानात्मक संरचना हैं। इसको विगत अनुभवों पर आधारित ज्ञान की संगठित समग्राकृति के रूप में परिभाषित किया जा सकता है तथा इसका उपयोग संप्रति होने वाले अनुभवों की व्याख्या करने के लिए होता है। इस परिभाषा के अनुसार जब कभी व्यक्ति किसी सामाजिक या अन्य प्रकार के उद्दीपनों का अनुभव करता है तो स्वत: वह उनकी व्याख्या कर अनुमान लगा लेता है उनका तात्पर्य क्या है। ऐसा वह उपर्युक्त मनोबन्ध की सहायता से करता है। इस अर्थ में मनोबन्ध उसके सामाजिक या अलग संज्ञानों को प्रभावित करते हैं।

मनोबन्ध के बारे में **फिस्के** एवं **टेलर (1984)** का मत था कि यह किसी संप्रत्यय या उद्दीपक के बारे में संज्ञान का एक संगठित संरचित समुच्चय है। जिसमें उस संप्रत्यय या उद्दीपक के बारे में जानकारी, उनके बीच के संबंध तथा उनके कुछ उदाहरण सम्मिलित होते हैं। मनोबन्ध के स्वरूप से संबन्धित निम्नलिखित तथ्य हैं-

मनोबन्ध अनेक होते हैं,वे किसी व्यक्ति समूह, सामाजिक भूमिका, स्वयं, अभिवृत्तियों, सामाजिक घटनाओं अथवा रीति-रिवाजों के बारे में हो सकते हैं।

मनोबन्ध एक सामान्य पद है,अनेक मनोवैज्ञानिक यह मानते हैं कि यह पद इसलिए उपयोगी है कि इसके माध्यम से हम व्यक्तियों के सामाजिक संज्ञान तथा व्यवहारों को वर्णित करते हैं।

मनोबन्ध का संगठन पदानुक्रमिक होता है,इनमें कुछ अमूर्त एवं सामान्य अवयव, फिर कुछ मूर्त एवं विशिष्ट अवयव और उनके कुछ उदाहरण विशेष भी सम्मिलित होते हैं।

मनोबन्ध में वैयक्तिक भिन्नता भी होती है।

मनोबन्ध कई बार व्यक्तिगत होते हैं,यह व्यक्ति की रुचियों, उनके मूल्यों एवं अभिनतियों को प्रतिबिम्बित करते हैं।

व्यक्ति नवीन सूचनाओं का प्रक्रमण अपने प्रासंगिक मनोबन्ध के परिप्रेक्ष्य में करता है। एक ही संप्रत्यय, सामाजिक घटना अथवा समूह के संज्ञान भी वैयक्तिक भिन्नता प्रदर्शित करते हैं।एक क्षेत्र विशेष का मनोबंध एक व्यक्ति में अधिक क्रमबद्ध, सुसंगठित एवं अधिक संरचित हो सकता है, जबकि दूसरे व्यक्ति में उस क्षेत्र विशेष का मनोबन्ध अस्पष्ट विवरण विहीन हो सकता है। उदाहरण के लिए किसी लोहे

के कारखाने में काम करने वाले व्यक्ति में कारखाने के विषय में अत्यधिक सघन,सुस्पष्ट एवं अत्यधिक संगठित ज्ञान होगा, जबकि सामान्य व्यक्ति में वह मनोबंध वैसा नहीं होगा।

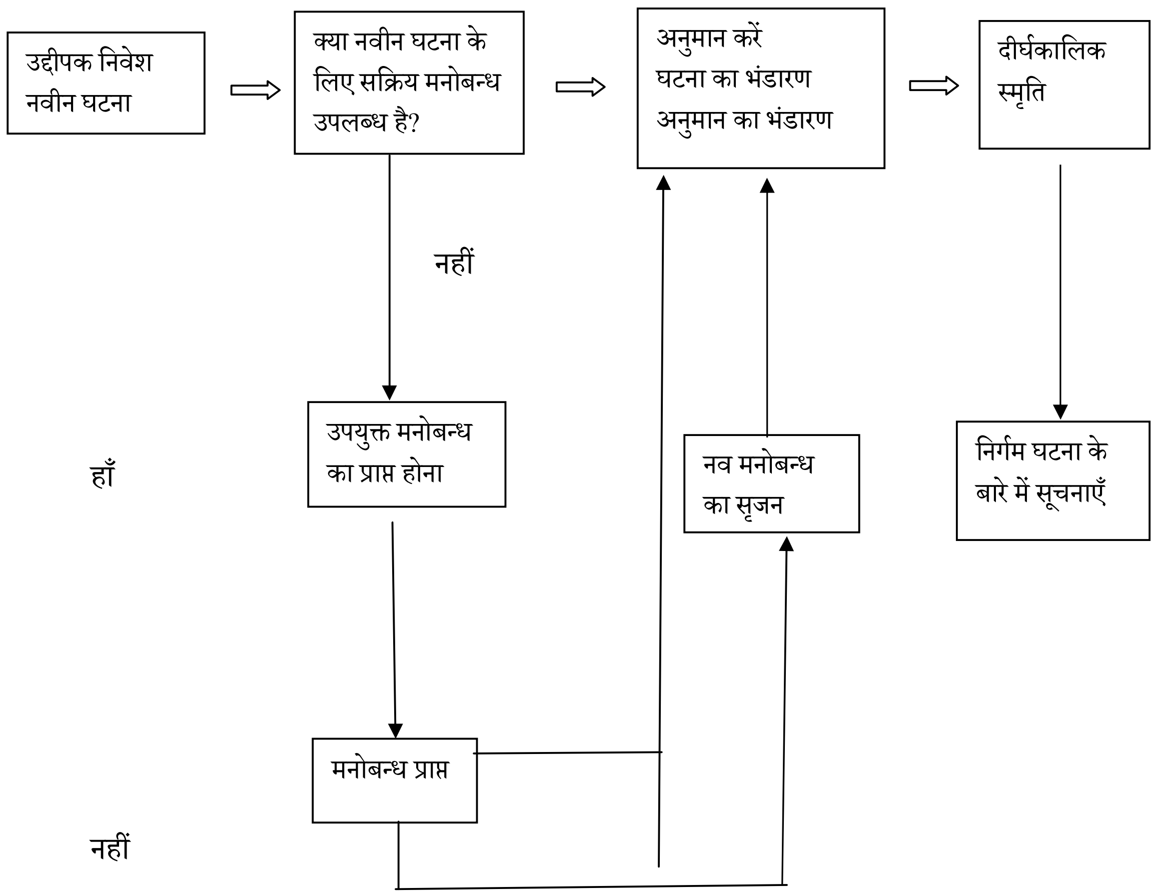

मनोबंधात्मक प्रक्रमण

परिवेश में घटित होने वाली समस्त प्रकार की घटनाओं के सभी विवरणों पर ध्यान देना और प्रत्यक्षीकृत कर लेना मानव मस्तिष्क के लिए असंभव है।मनोवैज्ञानिकों ने निर्विवाद रीति से प्रदर्शित किया है कि मनुष्य सीमित सारणी क्षमता का होता है और किसी भी समय एक साथ दो सूचना इकाइयों से अधिक को अपनी चेतना में धारण नहीं कर सकता। इसका तात्पर्य है कि कोई भी व्यक्ति निश्चित समय में कुछ ही निर्णय कर पाता है। व्यक्ति को लड़ाई करना पड़ता है कि सामाजिक सूचना निवेश के सही प्रक्रमण के लिए उपयुक्तमनोबन्ध का चयन कर ले या उसका निर्माण कर भविष्य में उपयोग के लिए भंडारित कर ले।उपर्युक्त मनोबन्ध के प्राप्त हो जाने पर चालू सूचना निवेश का कूट संकेतन एवं प्रक्रमण स्वतःचालित रीति से हो जाता है। इस प्रकार सूचना प्रक्रमण करने से नये सामाजिक निर्णय अनुमान करने की आवश्यकता बहुत कम हो जाती है।

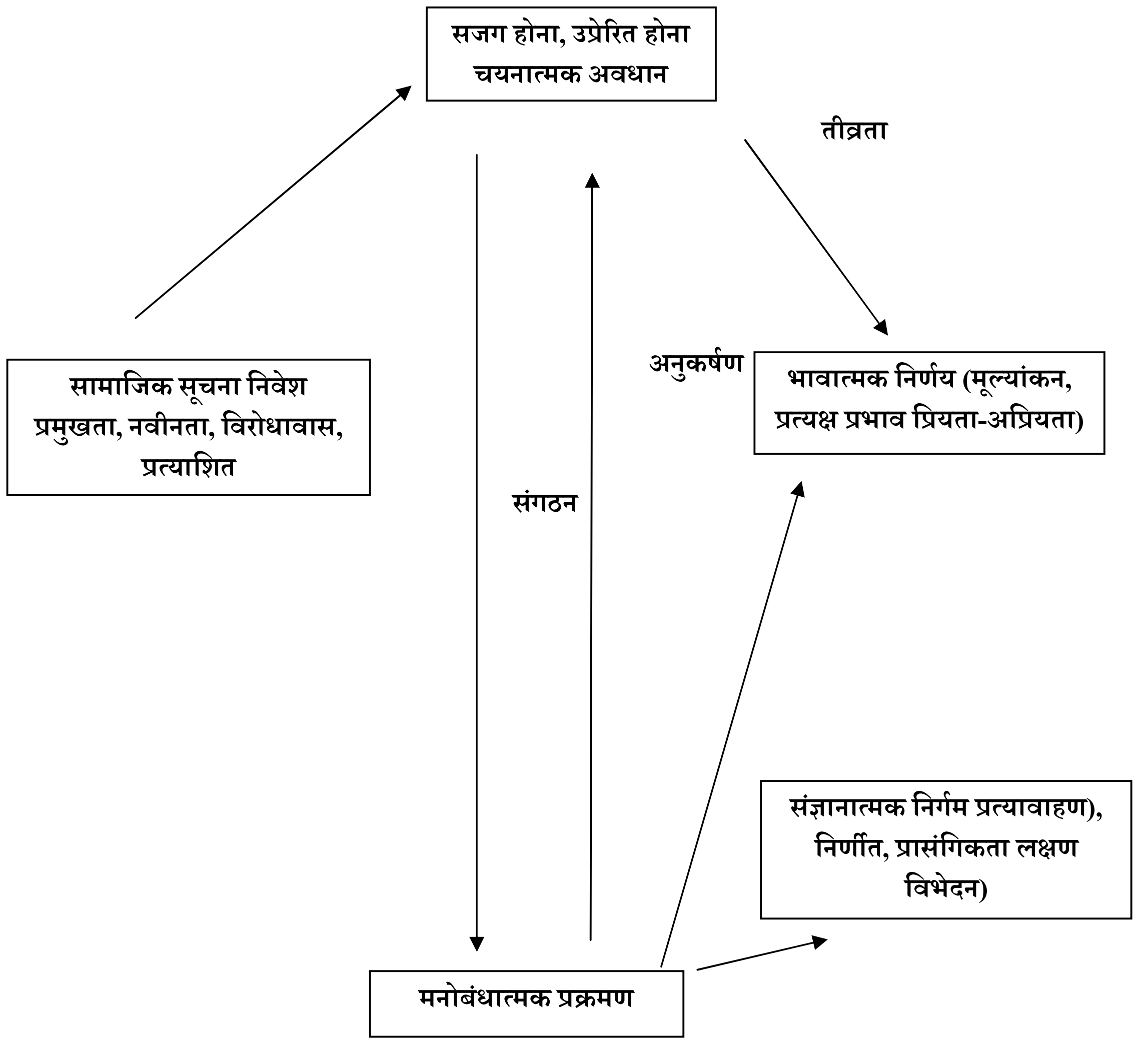

मनोबंधात्मक प्रक्रमण के आधार पर सामाजिक संज्ञान का विवरण

मनोबंधात्मक प्रक्रमण में व्यक्ति को मात्र यह निर्णय विशेष रूप से करना पड़ता है कि कौन सा मनोबन्ध सक्रिय है। जब प्रथम दृष्टया सही मनोबन्ध मिल जाता है तो स्वत:चालित रीति से सूचनाओं का प्रक्रमण हो जाता है। परिणामस्वरूप व्यक्ति को आवश्यक सामाजिक संज्ञान हो जाता है। इसके कारण व्यक्ति द्वारा किये जाने वाले सामाजिक संज्ञान हो जाता है। इसके कारण व्यक्ति द्वारा किये जाने वाले सामाजिक निर्णयों की संख्या बहुत कम हो जाती है। जैसे-जैसे व्यक्ति का सामाजिक अनुभव बढ़ता है, वैसे-वैसे उसे अनुभव होने लगता है कि सामाजिक अनुमान के लिए सामाजिक परिवेश के बहुत से विवरण महत्वपूर्ण नहीं होते। इसके कारण सामाजिक संज्ञान प्रप्प्त करने का प्रक्रम बहुत सरल हो जाता है।

मनोबंधात्मक प्रक्रमण से सामाजिक संज्ञान के साथ-साथ उपयुक्त भावोत्प्रेरण भी स्वतः हो जाता है। सामाजिक परिवेश से सूचना संकेतों के मिलने पर व्यक्ति सजग हो जाता है। तथा उसका चायनात्मक अवधान सक्रीय हो जाता है। चयनित सूचना संकेतों के मनोबंधात्मक प्रकमण के परिणाम स्वरूप भावोत्प्रेरण की तीब्रता निर्धारित होती है और सामाजिक संज्ञान का स्वरूप निर्धारित होती है। इसी संज्ञान

से भावोत्प्रेरण का अनुकर्षण संज्ञान की प्रासांगिता तथा संगति निर्धारित होती है। अनुकर्षण धनात्मक या ऋणात्मक हो सकता है, इन्हीं के आधार पर संज्ञान का पूर्ण विवरण प्रस्तुत किया जाता है और भावात्मक निर्यान, मूल्याकन, प्रत्यक्ष प्रभाव या प्रियता-अप्रियता निर्धारित होती है।

2.1.2.4. अन्वेषण प्रणाली

मनुष्य स्वभावत: कम प्रतिरोध वाले मार्गों का चयन करता है। संकृत्य (Task) जैसा भी हो, शारीरिक या मानसिक, व्यक्ति कम श्रम कर उसका सफल निष्पादन करने की ओर अग्रसर होता है। **फिस्के** एवं **टेलर (1991)** के अनुसार हम सभी लोग अधिकांश परिस्थितियों में कम से कम मानसिक श्रम से प्रत्येक कार्य पूरा करना चाहते हैं। प्रायः लोग अनेक प्रकार के लघु मार्गों का उपयोग करते हैं,लेकिन विशाल मात्रा में उपलब्ध सामाजिक सूचनाओं की प्रक्रिया का सही सामाजिक संज्ञान करने के लिए जिन मानसिक लघु मार्गों का उपयोग किया जाता है, उन्हें **ट्वेस्की एवं काहनमैन (1974)**ने अन्वेषण प्रणाली बताया है। इन्हीं अन्वेषण प्रणालियों की सहायता से सामाजिक सूचनाओं का प्रक्रमण करने में व्यक्ति उपयुक्त मनोबन्धों का चयन करता है। वास्तव में जटिल सूचनाएं चाहे वे सामाजिक हों या भौतिक-पादार्थिक का प्रक्रमण कर उनसे किसी समस्या का समाधान करना हो या इसे किसी प्रकार का अनुमान लगाना हो, तो दो प्रकार के नियमों **1.**अल्गोरिदम **2.**अन्वेषण प्रणाली, की सहायता से करते हैं।

अल्गोरिदम का उपयोग अंकगणित अथवा बीजगणित के प्रश्नों का उत्तर प्राप्त करने के लिए किया जाता है। यह एक ऐसी प्रणाली है जो विशाल मात्रा में उपलब्ध सूचनाओं का प्रक्रमण कर उससे निष्कर्ष निकालने की विधि प्रस्तुत करती है। **उदाहरण-** क्रमबद्ध यादृच्छिक अन्वेषण में किसी निश्चित प्रणाली का उपयोग कर सभी संभव निष्कर्षों की जांच की जाती है। यदि मनुष्य के मस्तिष्क की सूचना प्रक्रमण क्षमता किसी कंप्यूटर की तरह अनंत होती है, तो वह अपनी समस्त ज्ञानेन्द्रियों से प्राप्त होने वाली सूचनाओं की विशाल मात्रा का प्रक्रमण कर सही-सही निर्धारण कर पाता है कि कौन सी घटनाएं घटित हुई हैं और कौन सी घटित होने वाली हैं।

मनुष्य की सूचना प्रक्रमण की क्षमता सीमित है, इसलिए लघु मार्गों को अपना कर अन्वेषण प्रणाली को विकसित किया गया। अन्वेषण प्रणाली के अनेक प्रारूप हैं लेकिन रोजमर्रा के सामाजिक जीवन में तीन अन्वेषण प्रणालियां प्रचलित हैं, जो इस प्रकार हैं-

1. प्रतिनिधित्वात्मकता
2. उपलब्धता की अन्वेषण प्रणाली
3. स्थिरण अन्वेषण प्रणाली

1. प्रतिनिधित्वात्मकता

परिवेश से प्राप्त सूचनाओं तथा मनोबन्ध के मध्य जितनी अधिक समानता है, उतनी अधिक प्रायिकता इसकी होती है कि वे सूचनाएं उस मनोबन्ध से सम्बंधित हैं। **उदाहरण-** मान लीजिए कि आप किसी सड़क से होकर जा रहें हैं और अचानक आपको एक तेज शोर सुनाई देती है कि पकड़ों-पकड़ों और साथ ही पुलिस की सायरन वाली गाड़ी की आवाज। इतनी सूचना के आधार पर आप मान लेते हैं कि कोई गम्भीर दुःखद घटना घटित हुई है। गम्भीर दुःखद घटना के मनोबन्ध में गठित सूचनाओं में तेज शोर और पुलिस की गाड़ी का सायरन प्रमुख होते हैं। इसी समानता के आधार पर आप जान लेते हैं कि कोई दुःखद घटना घटित हुई है। इस प्रकार का संज्ञान बिना किसी मानसिक श्रम के ज्ञात हो जाता है।

2. उपलब्धता की अन्वेषण प्रणाली

कभी-कभी व्यक्ति को यह अनुमान या निर्णय करने की आवश्यकता होती है कि किसी प्रस्तुत घटना या व्यवहार के घटित होने की संभावना कितनी है? ऐसी संभावना का आकलन करने के लिए उपलब्धता की अन्वेषण प्रणाली है जो इस पर आधारित होती है कि व्यक्ति के मस्तिष्क में कितनी सरलता और शीघ्रता से उस घटना का मोनोबन्ध सक्रिय हो जाता है। **ट्वेस्की एवं काहनमैन(1982)** ने 100 लोगों से यह प्रश्न पूछा किस प्रकार के शब्द सामान्य है जिन का प्रथम अक्षर अंग्रेजी का K से होता है अथवा वे शब्द जिन का तीसरा अक्षर K होता है। कुछ व्यक्तियों के अतिरिक्त सभी ने उत्तर दिया कि K अक्षर से प्रारंभ होने वाले शब्द अधिक सामान्य हैं। वास्तविकता यह है कि अंग्रेजी के शब्दों के तीसरे स्थान पर K अक्षर वाले शब्द K से प्रारंभ होने वाले शब्दों से दो गुने से भी अधिक हैं। इसके विपरीत उत्तरदाताओं ने बताया कि K से प्रारंभ होने वाले शब्द अधिक सामान्य हैं, क्योंकि प्रश्न सुनकर कार्यकारी स्मृति में ऐसे शब्दों का अधिक आवृत्ति से स्मरण होता है। इसी सरल एवं सहज साहचर्य के आधार पर संज्ञानात्मक अनुमान ही उपलब्धता अन्वेषण प्रणाली का नियम है।

उपलब्धता की अन्वेषण प्रणाली की एक विशेषता यह है कि मनोबन्धों में सूचनाओं की उपलब्धता स्थिर नहीं होती, अर्थात एक जैसी नहीं बनी रहती है। उसे बढ़ाया जा सकता है। किसी भी मनोबन्ध को प्राथमिक लेप देकर शीघ्रता एवं सरलता से उपलब्ध बनाया जा सकता है। दूसरी विशेषता यह है कि सामाजिक निर्णय या अनुमान एक और प्रभाव उत्पन्न करता है, जिसे त्रुटिपूर्ण सहमति कहा जाता है।

क. प्राथमिक लेप तथा उपलब्धता

प्राथमिक लेप से स्मृति में किसी मनोबंध या स्मृति में संचित सूचनाओं की उपलब्धता को बढ़ाया जा सकता है। यदि किसी मनोबंध का उपयोग कुछ ही समय पूर्व किया गया हो तो इसकी प्रायिकता अधिक होती है कि नई सूचना की व्याख्या के लिए उस मनोबन्ध का पुनः उपयोग किया जाए। **उदाहरण-** जब मनोविज्ञान के छात्र जब असामान्य मनोविज्ञान का अध्ययन करने लगते हैं तो उन्हें अपने एवं अपने निकट के लोगों के व्यवहारों में मानसिक रुग्णता के लक्षण अथवा अनेक प्रकार के सुरक्षात्मक क्रियातंत्र के होने का आभास होने लगता है। प्राथमिक लेप प्रभावों को अनेक अलग अलग प्रकार के अध्ययनों में भी प्रदर्शित किया गया है।

ख. त्रुटिपूर्ण सहमति प्रभाव

जब कभी भी उपलब्धता अन्वेषण प्रणाली के आधार पर किसी सामाजिक व्यवहार या घटना की आवृत्ति का अनुमान किया जाता है, तो लोग उस अनुमान को मात्र सही ही नहीं मानते, बल्कि यह भी मानते हैं कि अन्य लोग भी उस अनुमानित आवृत्ति से सहमत हैं। व्यक्ति का यह अभिग्रह होता है कि अन्य लोग भी उसके इस अभिग्रह से सहमत हैं। परंतु यह आवश्यक नहीं है कि व्यक्ति का अभिग्रह सही हो। इसे ही त्रुटिपूर्ण सहमति प्रभाव कहा जाता है।**उदाहरण-** आप किसी विद्यार्थी से पूछिये कि आप के विश्वविद्यालय में पढ़ने वाले कितने प्रतिशत विद्यार्थी शराब का सेवन करते है? प्रायः यह देखा जाता है कि यदि विद्यार्थी स्वयं इसका सेवन करता है तो उसके आंकलन में प्रतिशत की मात्रा अधिक होगी अपेक्षाकृत उस विद्यार्थी के आंकलन से जो शराब का सेवन ना करता हो। जबकि हो सकता है कि दोनों का आंकलन सही ना हो।

शेरमन, प्रेस्सन और चैस्सीन (1984)ने अपने एक अध्ययन में पाया कि धूम्रपान करने वाले छात्रों ने बताया कि उनके 51% सहपाठी धूम्रपान करते हैं, जबकि धूम्रपान न करने वाले छात्रों का आकलन 38% था।

वेटजेल एवं वाल्टन (1985)के अनुसार त्रुटिपूर्ण सहमति का प्रभाव अल्पवयस्क छात्रों में पाया जाता है। वहीं **फील्ड्स एवं शुमान (1976)**ने कहा कि प्रौढ़ लोग समझते हैं कि राजनीतिक मामलों के बारे में उनके विचारों से अधिकांश लोग सहमत होंगे।

कैम्पबेल (1986)ने अपने अध्ययन से यह स्पष्ट किया कि जब व्यक्ति में किसी धनात्मक शीलगुण की दृष्टि से अन्य लोगों से अपने को अलग मानने की इच्छा, दूसरों के समान होने की तुलना में अधिक प्रबल होती है, तब ऐसे व्यक्ति त्रुटिपूर्ण सहमति प्रभाव से मुक्त रहते हैं।

3. स्थिरण अन्वेषण प्रणाली

मनुष्यों के अनेक ऐसे विश्वास होते हैं जिनको वे सत्य मानते हैं। ऐसे विश्वासों को खंडित करने वाली सामाजिक सूचनाओं के प्रकाश में लोग अपने विश्वासों को परिवर्तित नहीं करते हैं। **रास्स लेब्बर एवं हबर्ड (1975)** ने अपने अध्ययन में प्रयोज्यों को क्रमशः 25 कार्ड दिए गए। प्रत्येक कार्ड पर ऐसे दो विवरण थे, जिन्हें संभवत आत्महत्या कर लेने वाले व्यक्तियों ने लिखा था। प्रत्येक कार्ड में लिखित एक विवरण सत्य था और एक विवरण त्रुटिपूर्ण। प्रयोज्य को सही कथन को बांटकर त्रुटिपूर्ण कथन से अलग करना था, जैसे ही प्रयोज्य एक कार्ड को पढ़कर बताता था कि कौन विवरण सत्य और कौन असत्य है। इसी प्रकार प्रयोगकर्ता उनके उत्तर की प्रतिपूर्ति कर देता था। इन प्रतिपूर्ति को यादृच्छिक रीति से वितरित कर व्यवस्थित किया गया था। एक प्रयोज्य समूह में यह विश्वास बनाया गया की वे औसत कोटिक्रम के हैं। दूसरे प्रयोज्य समूह में प्रतिपूर्ति को व्यवस्थित श्रेष्ठता कोटिक्रम का तथा तीसरे समूह में निम्नतर कोटिक्रम का होने का विश्वास उत्पन्न किया गया। टास्क की समाप्ति के बाद प्रयोज्य को यह बताया गया की, टास्क में दी गई प्रतिपूर्ति किसी भी प्रकार उनके सत्य-असत्य में बांटने की क्षमता या योग्यता पर आधारित नहीं थी। बल्कि मनमाने ढंग से दी गई थी। इस दिशा-निर्देश के पश्चात दूसरे पदों की व्याख्या के उद्देश्य से एक प्रश्नावली भरने को दी गई।

स्थिरण अन्वेषण प्रणाली का उपयोग व्यक्ति किसी विमा पर किसी की स्थिति का आकलन करने के लिए करता है। जब कभी भी व्यक्ति को अस्पष्ट सूचना के आधार पर किसी घटना या सामाजिक क्रियाकलाप का मात्रात्मक अनुमान या निर्णय करना होता है, तो वह किसी संदर्भ बिंदु से शुरू होकर अपने को समायोजित करता है। सामाजिक घटनाओं, समूह, कार्यकलाप एवं व्यवहार से संबंधित सूचनाएं प्राय: अस्पष्ट होती है। ऐसी स्थिति की व्याख्या करने के लिए व्यक्ति किसी ज्ञात सूचना स्रोत को संदर्भ बिंदु मानकर परिस्थिति के अनुसार अपने निर्णय को समायोजित कर लेता है।स्थिरण अन्वेषण प्रणाली का उपयोग कर लोग किसी प्रकार की सामाजिक सूचना के आधार पर उसकी गुणवत्ता या किसी विमा पर उसकी स्थिति का सही आकलन कर पाने में सक्षम होते हैं।

2.1.2.5. सामाजिक संज्ञान के पूर्वाग्रह तथा संभावित त्रुटियाँ

मनुष्य की एक स्वाभाविक प्रवृत्ति यह है कि वह निषेधात्मक सूचनाओं के प्रति अपनी संवेदनशीलता अधिक कर लेता है और उसका ध्यान ऐसी सूचनाओं पर अपने आप केंद्रित भी हो जाता है। निषेधात्मक सूचनायेँ अधिक अवधान पाने के कारण अधिक गहन स्तर पर प्रक्रमित होती हैं और सकारात्मक सूचनाओं की तुलना में सामाजिक संज्ञान को अधिक प्रभावित करती है। किसी व्यक्ति,समूह तथा सामाजिक कार्य-कलाप के संबंध में अधिक वांछनीय सूचनाओं के साथ थोड़ी सी भी निषेधात्मक सूचनाएं व्यक्ति के पूरी संज्ञान को अधिक मात्रा में प्रभावित कर देती हैं। सामाजिक संज्ञान के कुछ प्रमुख पूर्वाग्रहों तथा त्रुटियों भी होती हैं। जो व्यक्तियों को सामाजिक संज्ञान बनाते समय सजग रहने की आवश्यकता है।

सामाजिक निर्णय, अनेक प्रकार की सामाजिक स्थितियों में सूचनाओं को प्राप्त कर लेने के पश्चात उनको इकट्ठा करते समय मनुष्य की कुछ पूर्वधारणाएं होती हैं, जिनके परिप्रेक्ष्य में सूचनाओं को वह ग्रहण करता है। जो सूचनाएं व्यक्ति के पूर्व के धारणाओं से संगत होती हैं, उन्हें वह सहजता से ग्रहण कर लेता है, किंतु जो सूचनाएं असंगत होती हैं, उनके यथार्थ को सरलता से स्वीकार नहीं करता। अपनी पूर्व की धारणाओं की पुष्टि करने वाली सूचनाओं को व्यक्ति प्रथम दृष्टि में स्वीकार कर लेता है किंतु असंगत सूचनाओं को गलत मानते हुए व्यक्ति अधिक सावधानी से उनका मूल्यांकन भी करता है।

सामाजिक संज्ञान तथा अप्रत्याशित सूचनाएं को लेकर **फिस्के एवं न्यूवर्ग (1990)**ने एक अध्ययन में कहा कि ऐसी अप्रत्याशित सूचनाएं अधिक एकाग्रता से ग्रहण किए जाने के परिणाम स्वरूप दीर्घकालिक स्मृति में प्रबलता के साथ भंडारी हो जाएंगी और बाद में किये जाने वाले सामाजिक अनुमान को अधिक रूप से प्रभावित करने की वाली सिद्ध होगी।

सामाजिक संज्ञान पर भावनात्मक मनोदशा के प्रभाव का अध्ययन करने के लिए **आइसेन एवं डाबमैन (1984)** यह प्रदर्शित किया है कि दुख एवं अन्य निषेधात्मक मन:स्थितियों की तुलना में सुख जैसे धनात्मक मन:स्थिति में व्यक्ति अधिक विस्तार से सूचनाओं को स्मृति के विभिन्न वर्गों के अंतर्गत संगठित करता है।इनके अतिरिक्त अन्य अध्ययनों से भी ज्ञात हुआ है कि धनात्मक मन:स्थितियों में होने पर लोग सभी प्रकार के टास्कों का निष्पादन अधिक सफलता से करते हैं और सृजनशीलता

प्रदर्शित करते हैं। धनात्मक मन:स्थिति में होने पर लोग समस्याओं के समाधान में भी नए ढंग से सोचते हैं। इस प्रकार मनुष्य की भावनाए उसके सामाजिक संज्ञान एवं निर्णय को प्रभावित करती है।

व्यक्ति की मनोदशा सामाजिक सूचनाओं की प्रक्रिया के ढंग को प्रभावित करती हैं। सूचनाओं की प्रक्रिया का ढंग, व्यक्ति के सामाजिक संज्ञान अनुमान या निर्णय को भी प्रभावित करता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि सामाजिक संज्ञान में व्यक्ति की भावनाएं प्रमुख भूमिका का निर्वहन करती है।

2.1.3. सारांश

मनुष्य अपने सामाजिक संज्ञान में तर्क प्रधान नहीं होता है। वह प्रयत्न करता है कि उसके संज्ञान में संगति बनी रहे। उसको विविध सामाजिक वस्तुओं एवं घटनाओं के संबंध में जो भी सूचनाएं प्राप्त होती हैं, वह उनकी प्रक्रिया करता रहे। प्रत्येक व्यक्ति प्राप्त सूचनाओं के तात्पर्य का अनुमान अपने मन में स्थित किसी सिद्धांत के आधार पर ही सदैव करता है। ऐसी सूचनाओं की प्रक्रिया में व्यक्ति तार्किक ढंग से स्वयं के संज्ञान को प्रदर्शित करता है तथा अनेक प्रकार की त्रुटियों से ग्रसित हो जाता है। दूसरी ओर प्रत्येक व्यक्ति संज्ञान प्राप्त करने में अतिशय कंजूसी की समझ को भी रखता है। इसके लिए वह अपने मानसिक लघु मार्गों का उपयोग करता है। इसके अतिरिक्त व्यक्ति संज्ञानात्मक तथा भावात्मक प्राणी भी है और उसके संज्ञान को उसकी भावनाएं, आशाएं तथा उसकी जो पूर्व में धारणाएं बनी हुई होती हैं, उसके द्वारा भी व्यक्ति कभी-कभी प्रभावित भी हुआ करता है।सामाजिक संज्ञान में व्यक्ति की भावनाएं ही महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करते हैं।

2.1.4. अपनी प्रगति की जांच

बहु विकल्पीय प्रश्न

1. सामाजिक संज्ञान की यह एक महत्त्वपूर्ण विशेषता है ?

अ) सूचना अतिभार ब) सामूहिक स) ऋणात्मक प्रभाव द) धनात्मक प्रभाव

2. निम्नलिखित हो संज्ञानात्मक योजनाओं का उपयोग किया जाता है?

अ) स्वतः शोध प्रणाली, योजना प्रणाली ब) धनात्मक प्रणाली, ऋणात्मक प्रणाली

स) आकारात्मक, सरचनात्मक द) प्रत्यक्ष, अप्रत्यक्ष

3. निम्नलिखित में से प्रतिनिधित्व स्वतः शोध(Representiveness Heuristic) भी कहते है?

अ) स्वतः शोध प्रणाली ब) योजना प्रणाली

स) आधार–दर सूचना द) प्रतिनिधित्व सूचना

4. निम्मलिखित स्किमेटा में से योजना प्रणाली ……………….. संबंधित है।

अ) आत्म- स्किमेटा ब) व्यक्ति स्किमेटा

स)भूमिका स्किमेटा द)घटना स्किमेटा

5. सामाजिक संज्ञान किन बातों का अध्ययन करता है?

अ) सामाजस्य के लिए ब) सम्प्रेषण के लिए

स)सामाजिक जगत के संबंधों की सूचनाओं की व्याख्या करने के लिए द) तुलना करने के लिए

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. सामाजिक संज्ञान का अर्थ बताते हुऐ विशेषता स्पष्ट करे?
2. स्वतःशोध प्रणाली (Heuristic) स्पष्ट करे?
3. योजना प्रणाली (Schemata) स्पष्ट करे ?
4. सामाजिक संज्ञान को समझाते हुऐ अपने शब्दो में उदाहरण सहित स्पष्ट करे?
5. सामाजिक संज्ञान किसे कहते है?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. सामाजिक संज्ञानको स्पष्ट कीजिए।
2. सामाजिक संज्ञान के मूलभूत अभिग्रह क्या हैं?
3. संज्ञानात्मक मनोबन्ध की व्याख्या कीजिए।
4. अन्वेषण प्रणाली की विवेचना कीजिए।
5. सामाजिक संज्ञान के पूर्वाग्रह तथा संभावित त्रुटियों पर प्रकाश डालिए।

2.1.5. शब्दावली

अन्वेषण प्रणाली Heuristics

उपलब्धता Availability

तार्किक माडल Rational Modal

प्रतिनिधित्वात्मकता Representativeness

मनोबंधात्मक प्रक्रमण Schematic Processing

स्थिरण Anchoring

सूचना प्रक्रमणकर्ता Information Processor

सज्ञानात्मक मनोबन्ध Cognitive Schema

2.1.6. संदर्भ ग्रंथ सूची

- त्रिपाठी, ला. ब. तथा अन्य (1998). आधुनिक सामाजिक मनोविज्ञान, आगरा, हर प्रसाद भार्गव, ।
- Baron, R. A. &Misra, G. (2014). *Psychology: Indian Subcontinent Edition*. Pearson Education

इकाई-2 आत्म प्रत्यक्षीकरण

इकाई की रूपरेखा

2.2.0. उद्देश्य

2.2.1. परिचय

2.2.2. विषय विवेचन

2.2.2.1. स्वरूप एवंपरिभाषा

2.2.2.2. आत्म-प्रत्यक्षीकरण का सैद्धान्तिक पक्ष

2.2.2.3. आत्म प्रबंधन के तकनीक

2.2.2.4. आत्म-अनावरण

2.2.3. सारांश

2.2.4. अपनी प्रगति की जांच

2.2.5. शब्दावली

2.2.6. संदर्भ ग्रंथ सूची

2.2.0. उद्देश्य

व्यक्ति स्वयं का प्रत्यक्षीकरण करते समय अपने उन विचारों को समाहित करने का प्रयास करता है, जिससे कि दूसरे लोग उसमें किस तरह की छवि देखना चाहते हैं? प्रायः दूसरे लोगों से तात्पर्य होता है: माता-पिता तथा मित्र। प्रत्यक्षीकरण की समस्या अत्यंत प्राचीन है। आत्म संप्रत्यय के विषय वस्तु में व्यापक व्यक्तिगत भिन्नता पायी जाती है। किन्ही भी दो व्यक्तियों के आत्म संप्रत्यय एक समान नहीं हो सकते, किसी व्यक्ति के आत्म संप्रत्यय में धार्मिकता की प्रधानता हो सकती है तो किसी में आत्मनिर्भरता की। प्रस्तुत इकाई के अध्ययन में हम यह जानने का प्रयास करेंगे कि व्यक्ति स्वयं का प्रत्यक्षीकरण कैसे करता है तथा किन बातों को संज्ञान में रखता है? वह अपनी कैसी छवि निर्मित करता है?

2.2.1. परिचय

दार्शनिकों का विचार था कि व्यक्ति के लिए स्वयं को जानना, समझना और अपने आप की सही छवि निर्मित करना, अत्यंत कठिन कार्य है। इसलिए उनका मत था कि 'स्वयं को जानो'। कुछ मनोवैज्ञनिकों ने आत्म प्रत्यक्षीकरण का विवेचन किया, जिसमें कार्वर एवं शायर (1981) ने यह प्रश्न उपस्थित किया कि क्या व्यक्ति अपने अवधान को जगत से हटाकर अपने आंतरिक प्रक्रिया पर केंद्रित कर सकता है। इसी प्रकार निस्बेट एवं रास्स (1980) ने बताया कि व्यक्ति उन सभी कारकों का आभास नहीं कर पाता जो उसके स्वयं को या आत्म को प्रभावित करते हैं। अन्य दूसरे व्यक्तियों के संदर्भ के बिना अपनी योग्यताओं, क्षमताओं, अभिप्रेरणाओं, भावनाओं तथा अपने संवेगों का सही मूल्यांकन करना व्यक्ति के लिए अत्यंत कठिन कार्य है।

2.2.2. विषय विवेचन

2.2.2.1. स्वरूप एवं परिभाषा

आत्म-प्रत्यक्षीकरण का शाब्दिक अर्थ है 'स्वयं को जानना'। जिस प्रकार व्यक्ति दूसरों को जानने का प्रयास करता है वहीं स्वयं को भी जानने या समझने का भी प्रयास करता है। व्यक्ति एक ओर दूसरों का मूल्यांकन करता तथा उनके प्रति कोई विशेष समझ बना लेता है, तो दूसरी ओर स्वयं का मूल्यांकन भी करता है तथा स्वयं के बारे में एक विशेष धारणा भी बना लेता है। जब हम दूसरों का प्रत्यक्षीकरण करते हैं या उनके प्रति कोई विचार बनाते हैं या कोई निर्णय करते हैं, तो वह अन्य प्रत्यक्षीकरण कहलाता है। परंतु इसके विपरीत जब हम स्वयं का प्रत्यक्षीकरण करते हैं अथवा किसी निर्णय तक पहुंचते हैं, उसे स्व-प्रत्यक्षीकरण या आत्म-प्रत्यक्षीकरण कहते हैं। व्यक्ति का स्वयं की छवि का निर्माण करना आत्म संप्रत्यय बन जाता है। विलियम जेम्स (1890) ने आत्म संप्रत्यय की परिभाषा देते हुए कहा कि इसमें व्यक्ति का मन एवं शरीर, वस्त्र एवं आवास, पत्नी या पति एवं बच्चे, उसके पूर्वज या मित्र, उसकी ख्याति एवं संपत्ति सम्मिलित होते है। इनमें से किसी एक अवयव से संबंधित अनुभव उसके आत्म संप्रत्यय को प्रभावित करते हैं। जेम्स के अनुसार आत्म संप्रत्यय व्यक्ति के सामाजिक अंतरक्रियाओं का परिणाम होता है। सिगमंड फ्रायड ने आत्म संप्रत्यय के लिए इगो पद का उपयोग किया और उसने आत्म संप्रत्यय को व्यक्तित्व का एक संगठित भाग माना उनके अनुसार इगो एक मूल्यांकन करने वाला अभी करता है जो बुद्धिमत्ता पूर्ण उन व्यवहार ओं को करता है जो व्यक्ति के आनंद को अधिकतम तथा पीड़ादायक परिस्थिति को कम बनाने में प्रतीत होता है। रोजेनवर्ग (1979) के अनुसार एक वस्तु में आत्म का उल्लेख करने वाले विचारों तथा भावनाओं की समग्रता ही आत्म संप्रत्यय है। वरशेल एवं कूपर (1979) के अनुसार व्यक्ति अपने व्यवहारों का स्वयं निरीक्षण करता है। अर्थात स्व प्रत्यक्षीकरण प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यवहार के कारणों को ढूंढ निकालता है, इसी प्रकार वरोन तथा बिरने ने कहा है कि आत्म प्रत्यक्षीकरण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा हम अपने भावों, शीलगुणों तथा प्रेरणाओं को स्वयं समझने का प्रयास करते हैं। मैकडूगल ने कहा है कि जो व्यक्ति अपने को जान लेता है और स्वीकार कर लेता है, वह मानसिक रूप से स्वस्थ बन जाता है। ऐसे व्यक्ति में स्वस्थ सामाजिक समायोजन स्वाभाविक ही है। अर्थात कहा जा सकता है कि स्वस्थ सामाजिक जीवन के लिए स्व प्रत्यक्षीकरण अथवा आत्म प्रत्यक्षीकरण का तटस्थ तथा वस्तुनिष्ठ होना आवश्यक है। केगन (1971) ने स्पष्ट किया है कि लोग अपनी बाल्यावस्था में ही पुलिंग तथा स्त्रीलिंग होने की पहचान बना लेते हैं। बच्चे अपने में उन्हीं गुणों का प्रत्यक्ष करते हैं, जिनकी प्रत्याशा उसकी संस्कृति में लिंग के संबंध में की जाती है। कुछ मनोवैज्ञानिकों का मत है कि आत्म संप्रत्यय की संरचना एक मनोबंध के रूप में होती है, और उसको आत्म मनोबन्ध कहना अधिक सार्थक है। हेजेल मार्कस (1977) ने आत्म मनोबन्ध को परिभाषित किया। उन्होंने कहा कि विगत अनुभवों के आधार पर किए गए ऐसे संज्ञानात्मक सामान्यीकरण है जो व्यक्ति के सामाजिक अनुभवों में निहित एवं स्वयं से संबंधित सूचनाओं के प्रक्रमण को निदेशित एवं संगठित करता है।

2.2.2.2. आत्म-प्रत्यक्षीकरण का सैद्धान्तिक पक्ष

किस प्रकार व्यक्ति अपने स्व का प्रत्यक्षीकरण करता है? किन आधारों पर अपने प्रति कोई धारणा बनाता है? कौन से संकेत स्वयं का मूल्यांकन करने में सहायक होते हैं? क्या व्यक्ति जिस प्रकार की सूचना संकेतों का उपयोग जिस

तरह दूसरों के छवि निर्माण में करता है, उन्हीं प्रकार की सूचनाओं का उपयोग उसी रीति से क्या स्वयं के प्रत्यक्षीकरण में भी करता है? इन समस्याओं के समाधान के लिए आत्म प्रत्यक्षीकरण के निम्नलिखित सिद्धांत प्रस्तुत हैं:

आत्म-आरोपण सिद्धान्त आत्म-प्रत्यक्षीकरण करने के आधार को स्पष्ट करने के लिए डेरिल बेम (1967, 1972) ने इस सिद्धान्त को प्रतिपादित किया। बेम ने आत्म प्रत्यक्षीकरण प्रक्रम का वर्णन करते हुए कहा कि 'व्यक्ति स्वयं की अभिवृत्तियों, संवेगों तथा अन्य आंतरिक दशाओं की जानकारी अपने ही प्रकट व्यवहारओं अथवा व्यवहार

के घटित होने वाली परिस्थितियों के प्रेक्षण के आधार पर आंशिक रूप से प्राप्त करता है।' इनके इस कथन का तात्पर्य है कि कोई भी व्यक्ति अपनी आंतरिक विशेषताओं की प्रत्यक्ष जानकारी नहीं कर पाता। वह अपने व्यवहारओं का प्रेक्षण कर अनुमान लगाता है कि उसकी भावनाएं क्या है? उसके व्यक्तित्व के शीलगुण क्या है और वह किन विचारों से प्रेरित होकर कोई कार्य करता है? बेम के अनुसार आत्म प्रत्यक्षीकरण के लिए अपने व्यवहारओं के निरीक्षण की आवश्यकता तब होती है, जबकि हम स्वेच्छा से व्यवहार करते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि जहां हमें किसी व्यवहार को बाध्य होकर करना पड़ता है, वहां हमारे व्यवहार हमारी मनोवृत्तियों या भावों का संकेत नहीं होते है। बेम के सिद्धांत को एक उदाहरण के माध्यम से स्पष्ट किया जा सकता है। मान लीजिए कि आपके विद्यालय का कोई छात्र अध्ययन में अथक प्रयत्न करता है। नियमित रूप से लाइब्रेरी जाता है। विभिन्न प्रकार की पत्रिकाओं का अध्ययन करता है। उसका हमेशा यही प्रयत्न होता है कि परीक्षा में अधिक से अधिक अंक लाकर प्रथम स्थान को प्राप्त करें। अब प्रश्न यह उठता है कि वह इतना परिश्रम क्यों करता है? इससे उसे अपने स्वयं के बारे में क्या जानकारी प्राप्त होती है? उससे यह प्रश्न करने पर कि वह परिश्रम क्यों करता है, तो उसे याद आता है कि उसके विद्यालय में एक स्थानीय व्यक्ति का अभिनंदन किया गया था। सभी लोगों ने उसकी सराहना भी की थी। उस के अथक परिश्रम को सभी लोगों के साथ चर्चा भी की गयी थी। वह व्यक्ति भारतीय प्रशासनिक सेवा में उच्च स्थान प्राप्त किए हुए था। वह छात्र भी उस अभिनंदन समारोह में उपस्थित था। तभी उसने यह निश्चय किया कि वह भी ऐसा पद एवं सम्मान अपने परिश्रम के माध्यम से

एक ना एक दिन प्राप्त करेगा। इस प्रकार का पद एवं सम्मान उसके लिए प्रलोभन का कार्य करता है। ऐसा परिश्रम करने वाले दूसरे विद्यार्थी के लिए प्रलोभन कुछ और हो सकता है। अपने ही व्यवहारओं को प्रेक्षण करने पर यदि व्यक्ति को किसी बाहरी अभिप्रेरणा का आभास नहीं होता है, तो वह अपने व्यवहार को आंतरिक दशाओं का द्योतक मानता है। इस प्रकार व्यक्ति अपने व्यवहारओं एवं व्यवहार के उद्दीपक संदर्भों का प्रेक्षण कर अपने स्व का प्रत्यक्षीकरण या छवि निर्माण करता है। बेम के सिद्धांत की फेजियो, शेरमन एवं हेर्र (1982) ने अपने अध्ययनों से भी

पुष्टि की। एंडरसन एवं अन्य (1986) ने प्रदर्शित किया है कि लोग सोचने एवं अनुभव करने जैसे संज्ञानात्मक एवं संवेगात्मक पक्षों से स्वयं के संबंध में अत्यंत प्रभावित होते हैं। एक अध्ययन में इन लोगों ने दो प्रकार के कथनों का निर्माण किया। एक प्रकार के कथनों में धार्मिक व्यवहारओं से संबंधित तथा दूसरे प्रकार के कथनों में धार्मिकता के बारे में विचारों एवं भावनाओं से संबंधित वाक्य लिए गए। इन दोनों प्रकार के वाक्यों को अस्तिवाचक कथा नास्तिवाचक रूपों में लिया गया। कथन प्रकार धार्मिक व्यवहार धार्मिक विचार एवं भावना अस्तिवाचक मैंने धार्मिक एवं आध्यात्मिक कृत्यों में अपना समय व्यतीत किया है। मेरे मन में धार्मिक एवं आध्यात्मिक कृत करने के विचार उठते हैं। नास्तिवाचक मैं धार्मिक एवं आध्यात्मिक कृत्यों में अपना समय व्यतीत हीं कर पाता। मेरे मन में धार्मिक एवं आध्यात्मिक कृत करने के विचार नहीं उठते हैं। सामाजिक तुलना सिद्धान्त लियान फेस्टिंगर (1954) ने लोगों की भौतिक एवं सामाजिक यथार्थ के बारे में उनकी आवश्यकता की व्याख्या करने के लिए इस सिद्धांत का प्रतिपादन किया। हम अपनी अनिश्चितता को दूर करने के लिए दूसरों को सूचना स्रोत के रूप में तथा अपनी अभिवृत्तियों एवं योग्यताओं का मूल्यांकन करने के लिए दूसरों की अभिवृत्तिओं एवं योग्यताओं को मानदंड के रूप में इस्तेमाल करते हैं। इसी प्रकार की प्रवृत्ति के लिए सामाजिक तुलना सिद्धांत को विकसित किया। इन्होने दो प्रकार के यथार्थों का उल्लेख किया है: भौतिक यथार्थ तथा सामाजिक यथार्थ। उन्होंने इस बात पर बल दिया है कि लोग इस जगत के भौतिक पक्षों सामाजिक संरचनाओं एवं कार्य-कलापों तथा अपने बारे में अनेक प्रकार के अभिमत विश्वास और भावनाएं रखते हैं। उदाहरण अनेक लोग मानते हैं कि सूर्योदय से पहले उठकर स्वाध्याय करना, सबसे अधिक लाभकारी होता है। क्योंकि उस समय स्मरणशक्ति ताजी रहती है। प्रातः काल दौड़ने से तथा शारीरिक श्रम करने से स्वास्थ्य श्रेष्ठ होता है। फेस्टिंगर का मत है कि लोग अपने अभिमतों, अभिवृत्तियों एवं विश्वासों को सही मानते हैं। जब कभी भी उनको अपने विश्वासों आदि पर संदेह होता है, तो उस संदेह को दूर करने के लिए प्रयत्न करते हैं। यही प्रयत्न सामाजिक प्रभाव की आधारशिला है। इस सिद्धांत के प्रमुख प्रतिपादन निम्न है:

1. लोगों में यह जानने की अभिप्रेरणा होती है कि उनका मत एवं विचार सही है या नहीं।
2. ऐसी अभिप्रेरणा उनको यह करने के लिए बाध्य करती है कि वह अपने योग्यताओं का सही मूल्यांकन करें।
3. जब लोगों को अपने विश्वासों, मतों, अभिवृत्तियों एवं योग्यताओं के बारे में मूल्यांकन करने के लिए साधन नहीं प्राप्त होते हैं। तब लोग अभिवृतियों एवं मतों की तुलना दूसरों से करते हैं।
4. लोग अपने मतों की वैधता स्थापित करने के लिए वस्तुनिष्ठ साधनों को अधिक वरीयता देते हैं।

फेस्टिंगर ने अपने सिद्धांत में लक्षित व्यक्ति के व्यवहारयों एवं विचारों में परिवर्तन की व्याख्या करने के लिए निम्न दो यथार्थ का उल्लेख किया है-

भौतिक यथार्थ

भौतिक यथार्थ से संसार का बोध होता है, जिसके बारे में लोग अपनीज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से जानकारी प्राप्त करते हैं। उदाहरण- जब रास्ते पर चलते-चलते हम सामने से आती हुई ट्रक को देखते हैं अथवा बगल में जाते हुए लोगों की उच्च स्वर में चल रही वार्ता को सुनते हैं, तो हम भौतिक वास्तविकताओं का

बोध करते हैं और उनके अनुसार रास्ते के बगल में हो जाते हैं तथा शोर की ओर से ध्यान हटा लेते हैं। हमारे व्यवहारों के ये परिवर्तन भौतिक यथार्थ के आधार पर होते हैं। व्यक्ति की जानकारी उसके विश्वास या मत तथा उसके विचारों की वैधता की जांच भौतिक यथार्थ के आधार पर होता है। अगर कभी-कभी नहीं हो पाता है तो ऐसी स्थिति में मतों या विचारों की जांच सामाजिक यथार्थ के आधार पर होती है।

सामाजिक यथार्थ

सामाजिक यथार्थ का तात्पर्य भ्रष्टाचार के संबंध अन्य लोगों के विचार तथा अभिमत। जिस सीमा तक समाज के अन्य लोग भी भ्रष्टाचार के संबंध में इसी प्रकार का मत रखते हैं, उस सीमा तक व्यक्ति का मत सामाजिक यथार्थ के आधार पर सही और वैद्य है। फेस्टिंगर ने अपने सिद्धांत में सामाजिक यथार्थ को निम्न भागों में बांटा है-

- **सामाजिक प्रभाव तथा सामाजिक यथार्थ**

सामाजिक तुलना सिद्धांत में यह अभिग्रह है कि जब लोगों को अपने मतों की वैधता का सत्यापन सामाजिक यथार्थ से स्पष्ट नहीं होता है, तो वे अपने विचारों का आदान-प्रदान करते है। ऐसी दशा में समूह के लोग व्यक्ति के विचारों को प्रभावित करने का प्रयत्न करते हैं, और व्यक्ति प्रयत्न करता है कि वह अपने विचारों को सही सिद्ध करें। फेस्टिंगर ने सामाजिक तुलना सिद्धांत के परिकल्पना के लिए एक प्रायोगिक अध्ययन किया। इसमें स्नातक स्तर के छात्रों का 4 समूह बनाया। जो समूह की सशक्तिशीलता तथा विषय की प्रासंगिकता पर आधारित है।

उच्च निम्न

उच्च प्रथम समूह द्वितीय समूह

निम्न तृतीय समूह चतुर्थ समूह

- **सामाजिक यथार्थ तथा योग्यताएं**

फेस्टिंगर अपने सिद्धांत में यह बताया है कि लोग अपनी योग्यता का मूल्यांकन करने के लिए अपनी तुलना दूसरों के साथ करते हैं, और अपने ही समक्ष लोगों का चयन करें। अनेक अध्ययनों के बाद जान्ना (1975) ने बताया है कि लोग अपनी योग्यता का मूल्यांकन उन्हीं लोगों के साथ करना चाहते हैं, जिन्होंने अधिक लब्धांक प्राप्त किया।

- सामाजिक यथार्थ एवं संवेग

सामाजिक तुलना सिद्धांत के परिप्रेक्ष्य में यह बताया गया है कि लोग अपने संवेग या भावनाओं का मूल्यांकन कैसे करते हैं? जब लोगों में अपनी भावनाओं एवं संवेगों के बारे में अस्पष्टता होती है तब वे ऐसे लोगों को खोजते हैं जो वैसे ही संवेग के होते हैं और उनके साथ अपनी तुलना करते हैं। अध्ययनों से पता चला है कि व्यक्ति अपने संवेगों की तुलना अधिक संवेग वाले लोगों के साथ करते हैं।

सामाजिक तुलना सिद्धांत की आलोचना

1. किन दशाओं में लोग अपना मूल्यांकन करते हैं?

2. सामाजिक तुलना सिद्धांत किसी भी व्यक्ति के लिए एक समय पर घटित नहीं होती है।
1. कभी-कभी इंद्रिय सुख का दबाव अधिक होने पर लोग सामाजिक तुलना से
2. बचना चाहते हैं।

2.2.2.3. आत्म प्रबंधन के तकनीक

प्रत्येक सामान्य व्यक्ति की स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है कि वह अपने आत्म-संप्रत्यय के अनुसार आचरण करें और लोग उसकी अच्छी छवि बनायेँ। सामाजिक मनोवैज्ञानिकों ने उसे छवि प्रबंधन का नाम दिया। बेरी श्लेंकर (1980) ने छवि प्रबंधन के बारे में कहा कि मानव जाति की प्रवृत्ति वास्तविक या काल्पनिक सामाजिक अंतरक्रियाओं में प्रक्षेपित की जाने वाली छवि को अवचेतन अथवा चेतन स्तर पर नियंत्रित करने का प्रयास है। इसका तात्पर्य है कि लोग इसके लिए सजग रहते हैं कि दूसरे लोग उस व्यक्ति में कोई बुराई, अवांछनीय शीलगुण या व्यवहार ना पाएँ और लोगों पर उसकी अच्छी छाप बने। एक प्रकार से छवि प्रबंधन वह प्रक्रम है, जिससे व्यक्ति किसी अवसर पर अपने व्यवहारों के साथ-साथ उस स्थिति को भी चयनित एवं नियंत्रित करते हैं, जिनमें उसके व्यवहार होते हैं। ऐसा व्यक्ति इसलिए करता है ताकि वह वैसी ही छवि प्रस्तुत करें, जैसी छवि प्रत्याशित है। व्यक्ति चाहता है कि दूसरे लोग उसको पसंद करें और उससे प्रभावित हो। एरविन गाफ़फ़मैन (1959) ने सामाजिक व्यवहार को नाटक के पात्रों द्वारा किए जाने वाले निष्पादन के सदृश्य बताया है। उनका कहना है कि व्यक्ति अपने प्रतिदिन के जीवन में अन्य व्यक्तियों से अंतरक्रिया करते समय एक निश्चित छवि प्रक्षेपित करने का प्रयत्न करता है तथा यह मानता है कि अन्य व्यक्ति भी ऐसा ही करते हैं। सामान्य रूप से कहा जाता है कि जीवन एक रंगमंच है और मनुष्य उसमें नाटक के पात्रों की भांति अनेक प्रकार की भूमिकाओं का निर्वहन करता है। आत्म प्रबंधन में व्यक्ति अनेक प्रकार के तकनीकों का प्रयोग करता है जो इस प्रकार है-

1. आत्म-प्रोन्नति

यदि किसी व्यक्ति के लिए अंतरक्रिया का यह उद्देश्य है कि वह अपने को बुद्धिमान, किसी विशिष्ट कौशल जैसे गायन, किसी प्रकार की क्रीड़ा इत्यादि अथवा व्यक्ति के शील गुण विशेष में प्रवीणता सिद्ध करें तो प्राय: आत्म प्रोन्नति तकनीक का उपयोग किया जाता है। गॉडफ्रे, जोन्स एवं लॉर्ड (1980) के अनुसार ऐसे लक्ष्य वाले व्यक्ति प्रतिक्रियात्मक चारण कला के विपरीत रूप में अग्रलक्षी क्रियाएं करते हैं। यदि आत्म-प्रोन्नतिकर्ता किसी ऐसे व्यक्ति से अंतरक्रिया कर रहा होता है, जिसको उसके बारे में अंतरंग जानकारी है, तो वह अपनी कमियों का उल्लेख पहले करता है, और उसके बाद अपने उन धनात्मक शीलगुणों का चित्रण करता है। जिसकी जानकारी किसी को नहीं है।

2. चाटुकारिता

सभी व्यक्तियों ने अनुभव किया होगा कि अनेक लोग किसी की प्रशंसा उसी के सामने करते हैं तथा उसके विचारों से तत्काल सहमत होते हैं। उसके व्यवहारों एवं निर्देशों के अनुसार उसकी उपस्थिति में आचरण करते हैं तथा उसमें अपने आस्था भी व्यक्त करते हैं। ऐसा करने के पीछे लक्षित व्यक्ति की दृष्टि में अच्छी छवि सुधारने की अभिप्रेरणा काम करते हैं, चाटुकारिता उन व्यवहारों में प्रतिबिंबित होती है।

जिनको व्यक्ति अपने गुणों को आकर्षक बनाने के उद्देश्य से करता है। लोग समझते हैं कि यदि दूसरे व्यक्ति उन्हें पसंद करते हैं, तो वे उन लोगों की आवश्यकता अनुसार सहायता भी करते हैं। जोंस (1964) के अनुसार दूसरों को प्रभावित करने की एक सामान्य तकनीक चाटुकारिता है। जिसके अंतर्गत चापलूसी, लक्षित व्यक्ति में प्रकट रूप से प्रदर्शन, सहर्ष सहमति तथा उसको देखकर प्रसन्न मुद्रा में उसकी आवभगत इत्यादि सम्मिलित है। डोनरस्टाइन एवं डोनरस्टाइन (1984) के अनुसार चाटुकारिता का उपयोग करने वाला लक्षित व्यक्ति पर जितना अधिक आश्रित होता है, उसको उतनी ही अधिक आवश्यकता होती है कि वह लक्षित व्यक्ति के लिए आकर्षक बना रहे और वह उतना ही अधिक चाटुकारिता का उपयोग करता है। ऐसी स्थिति में इसकी संभावना बढ़ जाती है कि लक्षित व्यक्ति उसके स्वार्थ को पहचान ले।

3. भयोत्पादन

व्यक्ति की आवश्यकता होती है कि वह दूसरों की दृष्टि में समर्थवान व्यक्ति के रूप में प्रत्यक्षीकृत किया जाए। इसके लिए लोग कभी-कभी भयोत्पादन की तकनीक का उपयोग करते हैं। इस तकनीक का उपयोग व्यापक स्तर पर किया जाता है। पुलिस का भय उत्पन्न करके विधि सम्मत व्यवस्था बनाए रखना इत्यादि। इसके लिए व्यक्ति अपने शारीरिक बल, राजनीतिक पहुंच, भौतिक संसाधन इत्यादि का भी उपयोग करता है। उदाहरण डाकू जब डकैती करने के लिए जाते हैं, तो उनका सबसे पहला काम यह होता है कि बम फोड़कर या कर्णभेदी ध्वनि उत्पन्न कर, निर्दयता पूर्वक व्यवहार के माध्यम से लोगों को पहले ही भयभीत कर लूटपाट करते हैं। प्राय: माता-पिता अध्यापक या अधिकारी भय उत्पन्न कर बच्चों को, छात्र-छात्राओं को एवं कर्मचारियों को अनुशासन में रखते हैं। इस तकनीक के माध्यम से दूसरों के व्यवहार को नियंत्रित किया जा सकता है। किंतु इसमें भयभीत करने वाले व्यक्ति की आकर्षक छवि नहीं बनती है।

4. उदाहरणीकरण

व्यक्ति, नैतिक श्रेष्ठता, परोपकार जैसे शीलगुणों की छवि प्रक्षेपित करने के उद्देश्य से इस तकनीक का उपयोग करता है। उदाहरण मान लीजिए कि कुछ लोग बस पकड़ने की जल्दी में हैं और तेजी से बस अड्डे की ओर जा रहे हैं। अचानक कोई दुर्बल एवं अंधा व्यक्ति सामने दिखाई पड़ता है, जो बार-बार सहायता की पुकार लगा रहा है कि उसे कोई सहारा देकर सड़क पार करा दे। ऐसे में यदि उनमें से कोई व्यक्ति दूसरों से कहता है कि आप लोग चलें, मैं दूसरी बस से आ जाऊंगा। मुझे इस असहाय व्यक्ति को पहले सड़क पार पहुंचाना है। ऐसा कहते हुए वह उस व्यक्ति को सहारा देकर सड़क पार कराने लगता है। वह व्यक्ति अपना उदाहरण प्रस्तुत कर तकनीक लगाता है कि दूसरे व्यक्तियों की नजर में वह एक नैतिक मूल्य एवं आदर्शवादीता की छवि प्रस्तुत करता है। ऐसा करने के उपरांत प्राय: ऐसा देखा गया है कि दूसरे अन्य लोग भी इस कार्य से अभिप्रेरित होकर भविष्य में ऐसा करने के लिए अभिप्रेरित हो सकते हैं।

5. आत्मा विकलांगता

आत्म-सम्मान को बनाए रखने के लिए कभी-कभी व्यक्ति इस तकनीक का भी उपयोग कर लेते हैं। जब किसी कार्य में बाधा उत्पन्न हो जाए साथ ही उस कार्य में सफलता पाने की संभावना कम हो और व्यक्ति असफल हो जाए, तो ऐसी परिस्थिति में वह व्यक्ति अनेक प्रकार की व्याख्या अपने पक्ष में प्रस्तुत

करता है कि क्यों हम असफल हो गए। व्यक्ति इसका कारण परिस्थितिजन्य बाधाओं के असफलता को बताता है। इस तकनीक का एक रुचिकर अध्ययन बरग्लास एवं जोन्स (1978) ने किया। जिसमें इन लोगों ने छात्रों के अलग-अलग समूह समाधान योग्य अथवा समाधान रहित 20-20 समस्याएँ हल करने को दीं। उसके बाद दोनों समूहों के आधे प्रयोज्यों को गलत फीडबैक देते हुए बताया कि उन्होंने 80% समस्याओं का सही हल किया है। आधे प्रयोज्यों को किसी प्रकार की फीडबैक नहीं दी गयी। ऐसा देखा गया कि जिन प्रयोगों को समाधान रहित समस्याएं दी गई थी, फीडबैक के बाद भी उन समस्याओं का अंत कठिन बताया। इन प्रयोज्यों ने उन समस्याओं को हल करने की अपनी क्षमता एवं योग्यता में कम आत्मविश्वास व्यक्त किया। परिकल्पना की गई थी कि समाधान रहित समस्याओं और सफलता के फीडबैक पाने वाले प्रयोज्य भविष्य में ऐसी समस्याओं के मिलने पर आत्मा-विकलांगता तकनीक का उपयोग करेंगे, क्योंकि वह सफलता के प्रत्याशा नहीं करते हैं। अतः अध्ययनकर्ताओं ने छात्रों को 2 औषधियों में से एक का सेवन करने का विकल्प दिया। एक औषधि के बारे में बताया गया कि उसको लेने पर समस्या समाधान की क्षमता में वृद्धि हो जाती है और दूसरी औषधि से क्षमता नष्ट हो जाती है। इसके उपरांत ज्ञात होता है कि जिन प्रयोगों को पहले समाधान रहित समस्याओं का हल पाने की सफलता मिली थी, किंतु अपनी योग्यता पर उनको आत्मविश्वास नहीं था। उन्होंने क्षमता नष्ट करने वाली औषधि का चयन अधिक संख्या में किया। क्योंकि नई समाधान रहित समस्याओं को हल न कर पाने पर वह आत्म-विकलांगता तकनीक का सहारा ले सकें।

6. विनम्रता भाव

इस तकनीक का उपयोग छवि प्रबंधन में काफी व्यापक स्तर पर किया जाता है। इसका उपयोग प्रक्षेपित करने के लिए नहीं, बल्कि लोगों की सहानुभूति पाने के लिए किया जाता है। इसका उपयोग दूसरों पर आश्रित होने की अपनी विवशता को प्रचारित करते हैं। प्राय: इस उपयोग लोग उन स्थितियों में करते हैं, जिनमें वे छवि प्रबंधन की अन्य तकनीकों का उपयोग करने में अपने को सक्षम अनुभव नहीं करते। इसमें व्यक्ति पहले किसी टास्क को न कर पाने में अपनी विवशता का उल्लेख करता है और निकट के व्यक्तियों से उस काम को करा लेता है। मूलत: इस तकनीक में लोग किसी विशेष स्थिति में अपनी विवशता बताकर अन्य लोगों की सहायता प्राप्त कर लेते हैं।

7. आत्म-परिवीक्षण

स्नाइडर एवं आइकेस (1985) ने इसको स्वयं या आत्म से संबंधी व्यवहारों का एक प्रमुख कारक बताया है। अनेक व्यक्ति बहुत कम मात्रा में अपनी वाचिक तथा अवाचिक आत्म प्रस्तुति में आत्म नियंत्रण रखते हैं। एक शीलगुण के रूप में इस तकनीक की विशेषता कुछ लोगों में अत्यंत अधिक तथा कुछ लोगों में कम मात्रा में होती है। उच्च स्तर के आत्म-परिवीक्षण वाले व्यक्ति सामाजिक अंतरक्रियाओं में दूसरे व्यक्तियों की आत्म-प्रस्तुति एवं अभिव्यक्ति के प्रति अत्यधिक संवेदनशील होते हैं और वे इन संकेतों का उपयोग छवि प्रबंधन के

उद्देश्य से अपनी स्थिति को नियंत्रित एवं नियमित करते हैं। उच्च स्तर के आत्म- परिवीक्षण वाले व्यक्ति अपने व्यवहार और कथनों की उपयुक्तता पर ध्यान देते हैं। समूह में या किसी सामाजिक अवसरों पर भी

वैसा ही आचरण करने का प्रयत्न करते हैं, जिसे अन्य लोग पसंद करते हैं। वहीं निम्न स्तर के आत्म-परिवीक्षण वाले व्यक्ति सामाजिक अंतर क्रियाओं में बातचीत करते समय मेरा/मेरी, मुझको, मैंने जैसे प्रथम पुरुष के शब्दों का अधिक उपयोग करते हैं। जबकि उच्च स्तर के आत्म-परिवीक्षण वाले व्यक्ति वह, वे, उन्होंने, उसका, उनका जैसे शब्दों का चयन करते हैं। क्योंकि ऐसे लोग दूसरे की अनुक्रियाओं में अधिक रुचि लेते हैं।

2.2.2.4. आत्म-अनावरण

मानसिक तथा शारीरिक नग्नता प्राकृतिक देन है। किंतु मनुष्य प्रकृति प्रदत्त रूप में सामाजिक जीवन व्यतीत करना अनुचित मानता है। इसके विपरीत वह प्रकृति प्रदत्त गुणों को परिष्कृत एवं संस्कारित कर सुसंस्कृत जीवन व्यतीत करना श्रेयस्कर समझता है। प्राचीन काल में भी शरीर के कुछ भागों को ढक कर रखा जाता था। सभ्य समाज में प्रत्येक व्यक्ति घर के बाहर वस्त्र धारण किये रहता है। उसका प्रयत्न होता है कि वह अपने को यथासंभव सुरुचिपूर्ण ढंग से प्रस्तुत करें। प्रत्येक व्यक्ति के मन में अनेक प्रकार के उचित-अनुचित अथवा नैतिक-अनैतिक विचार उत्पन्न होते रहते हैं। किंतु वह सभी विचारों को अनियंत्रित ढंग से व्यक्त नहीं करता है। कोई भी अपने सभी विचारों, भावनाओं एवं अनुभवों को दूसरों के समक्ष अनियंत्रित ढंग से व्यक्त करने के लिए प्रेरित नहीं होता, बल्कि अनेक बातों को अपने तक ही गोपनीय बनाए रखता है। आत्म-अनावरण का अर्थ है कि दूसरे व्यक्तियों के साथ अंतरंग भावनाओं एवं सूचनाओं का आदान-प्रदान किया जाता है। डर्लेगा एवं ग्रजलेक (1979) के अनुसार आत्म-आनावरण आवश्यक होता है, और इससे अनेक उद्देश्य की पूर्ति भी होती है। इसके 5 प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित है-

1. आत्म अभिव्यक्ति

अनेक स्थितियों में हमारे सांवेगिक अनुभव, विशेषत: निषेधात्मक अनुभव, दुखद एवं तनावकारी होते हैं। जो हमारे मन को बेचैन कर देते हैं। ऐसे में आवश्यक होता है कि इसे अभिव्यक्त कर बाहर निकाल दिया जाये। उदाहरण कभी-कभी किसी संबंधी या मित्र से अकारण विवाद हो जाता है, और एक-दूसरे पर आरोप-प्रत्यारोप हो भी जाते है। ऐसे अनुभव दुखद होते हैं। किसी मित्र के समक्ष ऐसे अनुभवों को व्यक्त कर देने से मन हल्का और स्वस्थ हो जाता है।

2. आत्म स्पष्टीकरण

जब भी दो लोग एक दूसरे से अपने अंतरंग समस्याओं, भावनाओं एवं विचारों का आदान-प्रदान करते हैं, तो उससे दो प्रकार के लाभ होने की संभावना बढ़ जाती है। एक-दूसरे की समझ अधिक गहरी होने के साथ-साथ अपने बारे में भी अधिक जानकारी या स्पष्टता में वृद्धि हो सकती है। जब कोई अपने मित्र के समक्ष अपने मानसिक समस्या को बताता है, तो उससे समस्या को समझने में आसानी होती है और दोनों के बीच मित्रता भी बढ़ती है।

3. सामाजिक वैधकरण

जब हम अपने विचारों एवं भावनाओं को दूसरे व्यक्ति के समक्ष व्यक्त करते हैं तो दूसरा व्यक्ति उसके प्रति अपनी प्रतिक्रिया देता है, उस प्रतिक्रिया के आधार पर व्यक्ति सुविधा से निर्धारित कर सकता है कि उसके विचार सामाजिक दृष्टिकोण से उचित है या नहीं। जब कोई व्यक्ति किसी सामाजिक

गतिविधि अथवा किसी अन्य के प्रति अपने दृष्टिकोण को किसी से बताता है, तो सुनने वाला उसका समर्थन करता है या उसको अनुचित मानता है। उसके आधार पर व्यक्ति समझ सकता है कि वैसा दृष्टिकोण उचित है या अनुचित।

4. सामाजिक नियंत्रण

व्यक्ति अपने अंतरक्रिया जगत को नियंत्रित रखने के उद्देश्य से अपने अंतरंग विचारों एवं अनुभव को छुपाए रखता है या दूसरों को बताता है। कभी- कभी अपने प्राइवेसी के क्षण बनाए रखने के लिए अनेक प्रकार के अनुभवों को हम अपने तक ही सीमित रखते हैं। दूसरी ओर दूसरों की दृष्टि में अपनी छवि को अधिक आकर्षक बनाए रखने के लिए दूसरों के समक्ष अपने विचारों एवं अभिवृत्ति को विस्तृत रूप से व्यक्त करते हैं। कुछ ऐसे भी है जो दूसरों को प्रभावित करने के लिए झूठ-मुठ की सूचनाएं भी देते रहते हैं और अपने बारे में असत्य बातें बताते हैं। ताकि दूसरे पर उनका वर्चस्व बना रहे।

5. संबंध विकास

दूसरे व्यक्तियों के साथ व्यक्तिगत संबंध का प्रारंभ करने तथा उसे अंतरंग बनाने के लिए व्यक्तिगत सूचनाओं एवं निजी विचारों को प्रकट करना एक महत्वपूर्ण तरीका है। प्रेम-संबंध में व्यक्ति अपने जीवन वृत्त के आदान-प्रदान से प्रारंभ कर सामान्य अभिरुचि, अभिवृत्ति एवं कामनाओं की जानकारी प्राप्त करता है। मार्टन (1978) ने स्पष्ट किया है कि आत्म-अनावरण, वर्णनात्मक और मूल्यांकनात्मक दोनों होता है। वर्णनात्मक अनावरण में लोग अपने बारे में तथ्यों को बताते हैं, अन्यथा जाना नहीं जा सकता। वर्णनात्मक अनावरण का उदाहरण, जब कोई यह बताता है कि उसके बाल्यकाल में क्या हुआ था, उसने कैसे बाद की शिक्षा प्राप्त की, वह मनोरंजन के लिए किस प्रकार के कार्य करता है इत्यादि। मूल्यांकनात्मक अनावरण का उदाहरण, जब कोई व्यक्ति जब बताता है कि वह अमुक व्यक्ति का आदर करता है, किंतु उसके पड़ोसी को विश्वसनीय मानता है। वह यात्रियों में लाउडस्पीकर का उपयोग करने के विरुद्ध हो। वैलेरियन डर्लेगा (1984) ने बताया है कि आत्म-अनावरण से अनेक प्रकार के सामाजिक स्कर्ट भी हो सकते हैं इनमें मुख्य रूप से चार संकट प्रमुख है:

1. अनिच्छा

किसी अन्य व्यक्ति के साथ संबंध स्थापित करने के लिए कोई व्यक्ति व्यक्तिक सूचनाओं का आदान-प्रदान करता है तथा एक दूसरे से अंतरंगता विकसित होती है। कभी-कभी दूसरा व्यक्ति किसी की निजी सूचनाओं को प्राप्त करने के बाद संबंध स्थापित करने में अनिच्छा प्रदर्शित कर सकता है। क्योंकि अनावृत सूचना को व्यक्ति का अशोभनीय गुणधर्म दूसरा व्यक्ति मान लेता है।

2. अस्वीकृति

व्यक्ति के निजी जीवन से संबंधित सूचनाओं की जानकारी से संभव है कि लोग उसे अस्वीकार भी करें। उदाहरण यदि किसी व्यक्ति के साथ बातचीत में वह यह बताये कि वह कभी चोरी के अपराध में कुछ दिन जेल में भी जा चुका है, तो लोग उससे दूर रहने लगेंगे और उसका विश्वास आसानी से नहीं करेंगे।

3. नियंत्रण की हानि

कभी-कभी अंतरंगता के संबंध में व्यक्ति अपने किसी ऐसी कमी को भी बता देता है। जिसका दुरुपयोग कर उसे ब्लैकमेल कर शिकार भी बना सकता है और उस पर अपना प्रभाव स्थापित कर उसे अपने नियंत्रण में रख भी सकता है। जबकि अनावृत करने वाला व्यक्ति दूसरे पर अपना नियंत्रण खो देता है।

4. विश्वासपात्र

कभी-कभी व्यक्ति अपने मित्रों से अपने बारे में गोपनीय सूचनाएं भी बता देता है, और विश्वास करता है कि उसके मित्र उस सूचना को अन्य लोगों को नहीं बतायेगा। ऐसी दशा में हो सकता है कि कभी कोई मित्र उसके साथ विश्वासघात करते हुए उसकी सूचना को अन्य किसी व्यक्ति के साथ साझा कर दे। आत्म का अनावरण तभी लाभदायक होता है, जब उसमें आदान-प्रदान की स्थिति होती है और वह भी एक स्तर तक। आत्म-आवरण में व्यापक स्तर पर सांस्कृतिक एवं लिंग भिन्नता पाई जाती है। स्त्रियों की तुलना में पुरुष अपनी अंतरंगता का अनावरण कम मात्रा में करते हैं। पुरुष, स्त्री संबंधों में लिंग भेद भी अनावरण भिन्नता से संबंधित अनुसंधान परिणाम अस्पष्ट है।

2.2.3. सारांश

प्रत्येक व्यक्ति अपने मनोवैज्ञानिक विकास क्रम में अपने स्वयं की छवि को निर्मित करता है। यही छवि उसका आत्म संप्रत्यय है। आत्म संप्रत्यय, स्वयं के बारे में किए गए अनुभवों से प्राप्त संगठनों की संगठित संरचना है। इसमें स्वयं को पहचानने के वे अवयव सम्मिलित हैं, जो आवश्यक नहीं है कि वास्तविकता से शत-प्रतिशत मेल खाते हों। प्रत्येक व्यक्ति के आत्म संप्रत्यय की संरचना आत्म मनोबन्ध के रूप में होती है। आत्म-मनोबन्ध बहुपक्षीय होता है, जिसमें व्यक्ति के अपने शीलगुण, उसकी विविध भूमिकाएं एवं उसकी अस्मिताओं में सम्मिलित होती है। आत्म संप्रत्यय स्थिर ना होकर विकासशील होता है और सामान्यतः व्यक्ति इसको अधिक वांछनीय बनाने के लिए प्रयत्नशील होता है।

2.2.4. अपनी प्रगति की जांच

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. आत्म प्रत्यक्षीकरण के लिए मनुष्य को .... तथा
.... होना चाहिए।

1) स्वास्थ्य तथा समायोजन ब) मानसिक स्वास्थ्य तथा शारीरिक स्वस्थ्य स)
तटस्थ तथा वस्तुनिष्ठ द)मनोवृत्ति तथा विश्वास

2. बेम के सिद्धान्त को क्या कहते है ?

अ) दूरी वाला सिद्धान्त

ब) आत्म गुणरोपण सिद्धान्त

स) सादृश्य सिद्धान्त

द) तुलना सिद्धान्त

3. सामाजिक तुलना सिद्धान्त का विचार उपयुक्त कथनो से कोन सा है ?

अ) व्यक्तित्व के आधार पर

ब) सामाजिक तुलना के आधार पर भौतिक वास्तविकता का होना

स) मूल्यांकन करने के आधार पर

द) योग्यता के आधार पे

4. फेस्टिंगर का सिद्धान्त कोन से वर्ष में प्रतिपादित किया गया?

अ) 1956

ब)1869

स)1959

द)1954

5. आत्म प्रत्यक्षीकरण के आनुभविक अध्ययनों किसने बल दिया है ?

अ) बेम

ब)मैकडुग्ल्ड

स) फेस्टिंगर

द) किस्कर तथा कौलीन्स

लघुउत्तरीय प्रश्न

1. आत्म प्रत्यक्षीकरण क्या है ?
2. सामाजिक तुलना सिद्धान्त की व्याख्या कीजिये ?
3. आत्म प्रत्यक्षीकरण का महत्त्व स्पष्ट कीजिये ?
4. बेम के सिद्धान्त की व्याख्या कीजिये ?
5. आत्म प्रत्यक्षीकरण के गुण या अवगुण बताइये ?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. आत्म-प्रत्यक्षीकरण के सैद्धान्तिक पक्ष की विवेचना कीजिए।
2. आत्म प्रबंधन करने के विभिन्न तकनीकों को कैसे समझा जा सकता है?
3. आत्म-अनावरण कितने प्रकार से किया जा सकता है?

2.2.5. शब्दावली

आत्म अनावरण Self-Discloser

आत्म अभिव्यक्ति Self-Expression

आत्म परिवीक्षण Self-Monitoring

आत्म प्रत्यक्षीकरण सिद्धान्त Self-Perception Theory

आत्म मनोबन्ध Self-Schema

आत्म संप्रत्यय Self-Concept

आत्म विकलांगता Self-Handicapping

उदाहरणीकरण Exemplification

छवि प्रबंधन Impression Management

सामाजिक नियंत्रण Social Control

2.2.6. संदर्भ पुस्तकें

- त्रिपाठी, ला. ब. तथा अन्य (1998). आधुनिक सामाजिक मनोविज्ञान,
- आगरा, हर प्रसाद भार्गव।
- सुलेमान, मु. (2009). उच्चतर समाज मनोविज्ञान, दिल्ली, मोतीलाल
- बनारसीदास।
- Baron, R. A. & Misra, G. (2014). Psychology: Indian Subcontinent Edition. Pearson
- Education

इकाई-3 व्यक्तिक प्रत्यक्षीकरण

इकाई की संरचना

2.3.0. उद्देश्य

2.3.1. परिचय

2.3.2. विषय विवेचन

2.3.2.1. स्वरूप एवंपरिभाषा

2.3.2.2. सूचनाओं का संगठन

2.3.2.3. छवि निर्माण: सूचना प्रक्रमण के पूर्वाग्रह

2.3.2.4. अवाचिक सूचना संकेत

2.3.3. सारांश

2.3.4. अपनी प्रगति की जांच

2.3.5. शब्दावली

2.3.6. संदर्भ ग्रंथ सूची

2.3.0. शिक्षण

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप की समझ इस ओर विकसित हो जाएगी कि कैसे आप अपने सामने किसी व्यक्ति को देखते हुए उस व्यक्ति से संबंधित अनेक प्रकार की सूचना संकेतों को प्राप्त कर लेते हैं और उनके तात्पर्य के आधार पर उन्हें एक छवि के रूप में संगठित कर लेते हैं? ऐसा करने में अनेक प्रकार के मानसिक प्रक्रम सम्मिलित होते हैं। प्रस्तुत अध्याय में उन्हीं प्रक्रमों का विवेचन किया गया है कि व्यक्ति को पहचान कर या उसके बारे में संगठित सूचनाओं के आधार पर उसका मापन कैसे किया जाता है? संबंधित व्यक्ति की सभी सूचनाओं को किस प्रकार संगठित किया जाता है? क्या लक्षित व्यक्ति की जो छवि निर्मित होती है, वह वस्तुनिष्ठ स्तर पर सही होती है अथवा उसमें किसी प्रकार की त्रुटि होती है? यदि व्यक्ति प्रत्यक्षीकरण में किसी भी प्रकार की त्रुटियाँ होती हैं तो वे प्रेक्षक के किन निर्धारकों के कारण होती हैं?

2.3.1. परिचय

जब आप ट्रेन में यात्रा कर रहे होते हैं, तब अप्रत्याशित ढंग से कोई व्यक्ति दिखाई पड़ता है। आप उसकी ओर देखते हैं। उस व्यक्ति के संबंध में आपको तत्काल कुछ सूचनाएं प्राप्त हो जाती हैं। जैसे उस व्यक्ति की शारीरिक बनावट, उसका परिधान, उसकी मुखाकृति, उसकी केस-सज्जा तथा उसके हाव-भाव की जानकारी हो जाती है। इन सूचना-संकेतों के आधार पर आप सहजता से अनुमान लगा लेते हैं कि वह पुरुष है या स्त्री, युवक है या वृद्ध, शिक्षित लगता है या अशिक्षित, वह आपके पास आकर आपसे कुछ कहता है तो उसके संबोधन की शैली तथा भाषा कथन के आधार पर आप तत्काल उस व्यक्ति की

एक निश्चित छवि निर्मित कर लेते हैं। ऐसी छवि मूल्यांकनात्मक होती है। जिसके कारण आप उसको प्रिय या अप्रिय, सुसंस्कृत या असंस्कृत अथवा वांछनीय या अवांछनीय समझने लगते हैं।

2.3.2. विषय विवेचन

2.3.2.1. स्वरूप एवं मापन

किसी भी व्यक्ति के संबंध में उपलब्ध सूचनाओं के आधार पर उस व्यक्ति की छवि निर्मित करने के प्रक्रम को व्यक्ति प्रत्यक्षीकरण का नाम दिया जाता है। इस प्रकरण में व्यक्ति का विविध प्रकार से वर्गीकरण किया जाता है। व्यक्ति के संबंध में निर्मित की गई छवि अपेक्षाकृत अधिक स्थाई होती है। प्रेक्षक के लिए व्यक्ति की प्रथम छवि अत्यंत महत्वपूर्ण होती है। क्योंकि प्रथम छवि में स्पष्ट होने वाले शीलगुणों को अधिक महत्व दिया जाता है। प्रेक्षक, जिस व्यक्ति से संबंधित सूचनाओं का संगठित रूप लेता है, वही उसकी छवि होती है। सामान्यतः प्रत्येक व्यक्ति के व्यवहार उद्देश्यपूर्ण होते हैं। इसीलिए प्रेक्षक व्यक्ति के व्यवहारों का प्रेक्षण कर उसके शीलगुणों, उसकी भावनाओं तथा उसके विचारों का अनुमान कर लेता है। किसी भी व्यक्ति के साथ अंतरक्रिया करते हुए हम उसके अनेक व्यवहारों का प्रेक्षण कर लेते हैं और इन व्यवहारों में नयी सूचना-संकेतों को संगठित कर उसकी छवि निर्मित करते हैं। उदाहरण कल्पना कीजिए कि आपके सामने कोई व्यक्ति जो अच्छे परिधान में हो, नजरें नीची हो तथा धीरे-धीरे आपके पास आये और आपसे किसी प्रकार की सहायता के लिए निवेदन करें। आप उसके निवेदन को अस्वीकृत कर देते हैं। क्योंकि उसके अनुरोध को मान लेना आपके द्वारा निर्धारित नियमों के विपरीत ही नहीं अपितु अनैतिक भी है। आपके मना करने के बावजूद व्यक्ति बार-बार आप से मदद की गुहार लगाता है। बार-बार वह आपकी उदारता को याद दिलाता है। आप इस युवक की कैसी छवि निर्मित करेंगे? निश्चित रूप से आप उसे एक स्वार्थी, आत्म-केंद्रित तथा अवांछनीय व्यक्ति के रूप में प्रदर्शित करेंगे। एंडरसन (1981) ने प्रदर्शित किया है कि लोग प्रथम छवि से स्पष्ट होने वाले शीलगुणों को व्यक्ति के मूल्यांकन में सर्वाधिक महत्व प्रदान करते हैं। प्रथम छवि के आधार पर ही व्यक्ति के बाद में होने वाले व्यवहार एवं उसके संबंध में प्राप्त होने वाली सूचनाओं का तात्पर्य समझा जाता है तथा सामान्य से अधिक धनात्मक या ऋणात्मक मूल्य दिया जाता है। मनोवैज्ञानिकों ने इसे प्राथमिकता प्रभाव भी कहा है। मैक आर्थर तथा बेरन (1983) ने स्पष्ट किया कि शारीरिक बनावट इत्यादि के संबंध में सूचनाओं की तात्कालिक उपलब्धता के कारण लोग यह मान लेते हैं कि यह व्यक्ति के शीलगुणों को प्रतिबिंबित करती है और इसके आधार पर ही व्यक्ति के मनोवैज्ञानिक गुणधर्म का मूल्यांकन कर लेते हैं।

छवियों का मापन

व्यक्ति द्वारा किसी व्यक्ति के संबंध में प्राप्त सूचनाओं को संयुक्त कर उसका मूल्यांकन करने के लिए आवश्यक है कि छवि का मापन किया जाये। इस मापन के लिए 'शब्दार्थ विभेदक तकनीक' का उपयोग किया जाता है। इस तकनीक को आसगुड, सूशी एवं टैननबाम (1957) ने विकसित किया। इस तकनीक के माध्यम से किसी भी संप्रत्यय, वस्तु, अभिवृत्ति या छवि के अर्थ एवं तात्पर्य का मापन किया जाता है। इसके लिए द्विछोरीय विशेषण युग्मों को लिया जाता है। इन युग्मों में से एक को सात बिन्दुओं वाली

मापनी के एक छोर पर और दूसरे को दूसरे छोर पर लिख दिया जाता है। यह विशेषण युग्म में इस प्रकार चयनित होते हैं कि युग्म का एक सदस्य दूसरे सदस्य का विलोम होता है। प्रत्येक मापनी के दोनों छोरों पर विशेषण लिखे गए होते हैं। इसलिए इन मापनियों को द्विछोरीय कहा जाता है। प्रस्तुत सारिणी में इसे स्पष्ट किया गया है।

नैतिक ---- ---- ---- ---- ---- अनैतिक

सुंदर ---- ---- ---- ---- ---- कुरूप

सक्रिय ---- ---- ---- ---- ---- निष्क्रिय

विश्वसनीय ---- ---- ---- ---- ---- अविश्वसनीय

बुद्धिमान ---- ---- ---- ---- ---- मूर्ख

स्वार्थी ---- ---- ---- ---- ---- परोपकारी

प्रबल ---- ---- ---- ---- ---- दुर्लभ

गंभीर ---- ---- ---- ---- ---- सतही

सिद्धांतवादी ---- ---- ---- ---- ---- अवसरवादी

मान लीजिए कि आप किसी साक्षात्कार समिति के पाँच सदस्यों में से एक हैं। यह साक्षात्कार समिति किसी पद पर उपयुक्त व्यक्ति का चयन करने के लिए है और आये सभी अभ्यर्थियों का एक-एक कर उनका साक्षात्कार ले रही है। जब कोई अभ्यर्थी साक्षात्कार कक्ष में प्रवेश करता है तो समिति के प्रत्येक सदस्यों का ध्यान उसपर केंद्रित होता है। सभी सदस्य, उस अभ्यर्थी की शारीरिक बनावट, वेशभूषा, चेहरे का भाव तथा उसके चलकर निर्धारित स्थान तक पहुंचने की क्रिया को देखते हैं। आप सभी सदस्य उससे प्रश्न पूछते हैं और उसके द्वारा दिए गए उत्तर का विषय-वस्तु की उपयुक्तता से तथा उत्तर देते समय अभ्यर्थी के हाथों की क्रियाओं का अनुभव करते हैं। ऐसा करते हुए आप प्रत्येक सदस्य उस अभ्यर्थी की एक छवि का निर्माण कर लेते हैं। इस प्रकार निर्मित छवि का मापन करने के लिए 'शब्दार्थ विभेदक मापनी' का उपयोग किया जा सकता है। चयन समिति के सदस्यों ने किसी अभ्यर्थी की कैसी छवि निर्मित की है, का मापन करने के पहले यह निश्चित कर लिया जाता है कि किन शीलगुणों को छवि के निर्माण में मापना है। मान लीजिए कि जिस पद के लिए चयन किया जा रहा
है, चयनित व्यक्ति में शालीनता, गंभीरता, बुद्धि, कौशल, परिपक्वता, विद्वता, सुसंस्कृत एवं उदारता के गुणों का होना आवश्यक माना गया है। अतः समिति के प्रत्येक सदस्य द्वारा निर्मित छवि का मापन करने के लिए प्रस्तुत 'शब्दार्थ विभेदक मापनी' का उपयोग किया जा सकता है।

अतिशालीन ---- ---- ---- ---- ---- न्यू शालीन

गंभीर ---- ---- ---- ---- ---- हल्का

कुशल ---- ---- ---- ---- ---- अकुशल

अति बुद्धिमान ---- ---- ---- ---- ---- न्यून बुद्धिमान

विद्वान ---- ---- ---- ---- ---- मूर्ख

सुसंस्कृत ---- ---- ---- ---- ---- संस्कृत

उदार ---- ---- ---- ---- ---- अनुदार

सभी सदस्यों से सारणी में दिए गए शीलगुणों की मापनियों पर उनकी रेटिंग ली जा सकती है। उनकी प्रतिक्रिया देने के लिए सात बिंदु हैं। धनात्मकअथवा वांछनीय तथा उनके विपरीत ऋणात्मक विशेषण के बीच क्रमशः +3,+2, +1, 0, -1, -2 तथा -3 के मूल्य निर्धारित किये गये हैं। इन्हीं मूल्यों के अनुसार अभ्यर्थियों की विशेष छवि का आकलन या मापन किया जा सकता है।

2.3.2.2. सूचनाओं का संगठन

अध्याय के प्रारंभ में ही यह स्पष्ट किया जा चुका है कि किसी व्यक्ति से मिलने पर उससे अनेक प्रकार की सूचना-संकेत प्राप्त होते हैं। इन्हीं सूचनाओं के आधार पर व्यक्ति की छवि निर्मित होती है। अलग-अलग सूचना-संकेतों से व्यक्ति के अलग-अलग शीलगुणों का मापन होता है। इन्हीं शीलगुणों के आधार पर व्यक्ति की छवि धनात्मक अथवा ऋणात्मक रूप लेती है। अलग-अलग शीलगुणों को एकत्र करके किसी व्यक्ति के धनात्मक या ऋणात्मक छवि का निर्माण दो संवर्गों में विभक्त करके किया जाता है।

1. व्यवहारवादी चिंतन के परिप्रेक्ष्य में 'अधिगम उपागम' को अपनाकर सूचनाओं के संगठन की व्याख्या की जाती है।

2. गेस्टाल्टवादी विचारधारा के अनुकूल 'संज्ञानवादी उपागम' पर आधारित कर विवेचन किया जाता है।

अधिगम उपागम

इस उपागम के अंतर्गत प्रेक्षक सूचनाओं को यांत्रिक एवं अत्यंत सरलता के आधार पर संयुक्त करते हैं और इस प्रकार से सूचनाओं के संयुक्तिकरण के बारे में कुछ सोचते विचारते नहीं है। यदि किसी प्रेक्षक को किसी व्यक्ति के संबंध में धनात्मक सूचनाएं प्राप्त होती हैं तो वह उसकी छवि धनात्मक रूप में निर्मित कर लेता है। इसके विपरीत यदि ऋणात्मक सूचना मिले तो ऋणात्मक छवि का निर्माण कर लेता है। इस उपागम के अंतर्गत छवि निर्माण में सूचनाओं के संयुक्तिकरण के लिए नार्मन एंडरसन (1959, 1965, 1968, 1974) ने 'औसतीकरण नियम' विकसित किया।

औसतीकरण नियम

एंडरसन तथा अन्य वैज्ञानिकों ने इन सूचनाओं की व्याख्या करने के लिए मूल्यांकनात्मक विमा पर ज़ोर दिया है। इन सभी का मानना है कि लक्षित व्यक्ति के संबंध में अनेक प्रकार की सूचनाएं प्राप्त होती हैं। प्रेक्षक, इन सूचनाओं के आधार पर लक्षित व्यक्ति के अनेक शीलगुण की जानकारी प्राप्त कर लेता है। प्रेक्षक जब उस व्यक्ति से बातचीत करता है तो बहुत ही कम समयांतराल में उस व्यक्ति से संबंधित सूचना-संकेत प्राप्त कर लेता है। साथ ही उस व्यक्ति के बारे में अपनी समझ विकसित कर लेता है कि यह व्यक्ति बुद्धिमान, वाकपटुता तथा धार्मिक भी है तथा साथ ही साथ अन्य जानकारी भी प्राप्त कर लेता है। ऐसी छवि का निर्माण यांत्रिक ढंग से अपने आप होता है। इस प्रकार की मुलाकात के उद्देश्य के अनुसार आप स्वत: ही इन शीलगुणों के आधार पर व्यक्ति के बारे में धनात्मक या ऋणात्मक मूल्य प्रदान कर देते

हैं। अधिगम उपागम का आश्रय लेते हुए एंडरसन ने पहले योगात्मक नियम का प्रतिपादन किया। सबसे पहले उन्होने कहा कि प्रत्यक्षीकृत शीलगुणों के मूल्यों का योग ही व्यक्ति की सम्यक छवि की परिचायक होती है। उदाहरण प्रस्तुतसारिणी में शीलगुणों के आधार पर व्यक्ति की सम्यक छवि धनात्मक है।

शीलगुण मूल्य

मंदबुद्धि

निंदक

मितव्यई

अव्यवस्थित

लापरवाह

स्थूलकाय

साधन संपन्न

परोपकारी

गायक

मनोरंजक

-5

-8

-2

-8

-10

-5

+2

+7

+5

+5

योग = -19

औसत = -1.9

यह अधिक या कम धनात्मकता भी हो सकती है। धनात्मक छवि उपागम अनुक्रिया अर्थात आकर्षण उत्पन्न करती है। इसके विपरीत ऋणात्मक छवि विकर्षण उत्पन्न करती है और प्रत्यक्ष करने वाले व्यक्तियों में छोड़ देने की अनुक्रिया उत्पन्न कर देती है। एंडरसन ने स्वयं के और अपने सहयोगियों के अनुसंधान परिणामों के आधार पर योगात्मक नियम के स्थान पर औसतीकरण नियम का प्रतिपादन किया। इस नियम के अनुसार किसी भी प्रेक्षक के लिए किसी व्यक्ति की सम्यक छवि उसके शीलगुणों के

मूल्य योग के औसत मान के बराबर होती है। उदाहरण किसी विद्यार्थी को छात्रावास में ऐसा पार्टनर मिलता है, जिसके शीलगुणों को प्रत्यक्ष करने वाला उपरोक्त सारिणी में प्रस्तुत मूल्य निर्धारित करता है। औसतीकरण नियम के आधार पर प्रत्यक्षीकृत व्यक्ति की सम्यक छवि सामान्य रूप से ऋणात्मक है। योगात्मक नियम के अनुसार भी सम्यक छवि ऋणात्मक है। इतनी समानता होते हुए भी दोनों नियमों में एक प्रमुख अंतर भी है। किसी भी व्यक्ति की सम्यक छवि की धनात्मकता अतिरिक्त धनात्मक सूचना प्राप्त होने पर बढ़ जाती है, और ऋणात्मक सूचना प्राप्त होने पर व्यक्ति की सम्यक छवि की धनात्मकता कम हो जाती है तथा ऋणात्मक छवि की ऋणात्मकता बढ़ जाती है। किंतु औसती नियम के अनुसार यह आवश्यक नहीं है कि अतिरिक्त सूचना प्राप्त होने पर सम्यक छवि की धनात्मकता या ऋणात्मकता में अंतर उत्पन्न हो। ऐसा तभी होता है जब अतिरिक्त सूचना से ज्ञात शीलगुण का मूल्य औसत मूल्य से अधिक होता है। एंडरसन के द्वारा प्रतिपादित औसतीकरण नियम का पहला अवयव था प्रथम छवि तथा दूसरा अवयव था शीलगुण भार।

प्रथम छवि

समान्यतया सभी व्यक्तियों की मान्यता है कि किसी भी व्यक्ति की प्रथम छवि में किसी प्रकार का बदलाव प्राय: नहीं होता। ऐश (1946) ने एक प्रायोगिक प्रक्रिया में छवि निर्माण में प्राथमिकता प्रभाव को दर्शाया। उन्होने दो प्रयोज्य समूहों को लिया। जिसमें एक समूह को उसने किसी काल्पनिक व्यक्ति के शीलगुणों को धनात्मक से ऋणात्मक क्रम में और दूसरे समूह को ऋणात्मक अनुक्रम में पढ़वाया। इन दोनों अनुक्रमों को नीचे प्रस्तुत किया गया है।

प्रथम समूह द्वितीय समुह

बुद्धिमान

उद्यमी

आवेशवान

शंकालु

जिद्दी

ईर्ष्यालु

ईर्ष्यालु

जिद्दी

शंकालु

आवेशवान

उद्यमी

बुद्धिमान

ऐश ने परिकल्पना का निर्माण किया कि यदि प्राथमिक स्तर पर प्राप्त सूचना महत्वपूर्ण होती है तो यह पूर्वकथन किया जा सकता है कि प्रथम अनुक्रम में सूचना प्राप्त करने वाले प्रयोज्य कल्पित व्यक्ति कि

धनात्मक छवि निर्मित करेंगे। प्राप्त परिणाम के कारण परिकल्पना की पुष्टि होगी। प्रथम समूह के प्रयोज्यों ने उस कल्पित व्यक्ति को सामाजिक, प्रिय एवं खुशदिल व्यक्ति के रूप में देखा। एंडरसन (1986), बर्नस्टाइन एवं शूल (1982), वाथर (1988) एवं अन्य शोधकर्ताओं ने भी अपने अध्ययनों के द्वारा प्राथमिक प्रभाव की पुष्टि की।

शीलगुण प्रभाव

एंडरसन के अनुसार व्यक्ति के शीलगुण अपनी धनात्मकता-ऋणात्मकता में ही परिवर्तनीय नहीं होते, बल्कि छवि निर्माण के उद्देश्य के अनुसार शीलगुणों का महत्व घटता-बढ़ता है। इसको एक उदाहरण के माध्यम से समझा जा सकता है।

मान लीजिए दो धनात्मक शीलगुण परिश्रम तथा सुन्दर हैं। किसी कार्य हेतु परिश्रमी विद्यार्थी की आवश्यता है। अत: छवि निर्माण में इसको अधिक भार प्राप्त हो जाएगा। किन्तु वहीं वैवाहिक कार्यक्रम में सुंदरता को अधिक भार मिलेगा। इसी प्रकार यदि दुर्बल तथा निर्दयता दो ऋणात्मक शीलगुण हैं। किन्तु न्यायालय में निर्दयता को अधिक भार मिलेगा और न्यायाधीश के नजर में उस व्यक्ति की ऋणात्मक छवि का निर्माण होगा।

संज्ञानात्मक उपागम

संज्ञानवादी मनोवैज्ञानिक व्यक्ति की छवि निर्मित करने में निहित मानसिक प्रक्रम के भिन्न लक्षणों पर बल देते हैं। इनका मानना है कि लीग व्यक्ति से प्राप्त होने वाली समस्त सूचनाओं को ग्रहण नहीं करते हैं क्योंकि मनुष्य में एक साथ सूचना-संकेतों को ग्रहण करने की क्षमता सीमित होती है। इन मनोवैज्ञानिकों का यह भी मानना है कि लोग सूचनाओं को यंत्रवत नहीं बल्कि सक्रिय ढंग से एकत्र करते हैं। मैग्वायर (1969) ने मनुष्य को प्रेक्षक के रूप में आलसी माना है। इसी प्रकार टेलर (1981) ने कहा है कि मनुष्य संज्ञान करने की क्रिया में कम से कम श्रम करना चाहता है। व्यक्ति प्रत्यक्षीकरण अथवा छवि निर्माण में संज्ञानवादियों के चार अभिग्रह सम्मिलित हैं। जो इस प्रकार से हैं-

1. लक्षित व्यक्ति की छवि निर्मित करने के लिए उसके संबंध में प्राप्त सूचनाओं का प्रकरण करने में संगठित सुसंगत अर्थ ढूंढने की क्रिया निहित होती है।
2. प्रेक्षक, छवि निर्माण करने वाले व्यक्ति से प्राप्त होने वाले सूचना संकेतों पर एक समान ध्यान ना देकर उनमें से प्रमुख लक्षणों पर अपने ध्यान को केंद्रित करता है। इस प्रकार छवि निर्माण के लिए व्यक्ति के आकृति लक्षणों पर अधिक ध्यान देता है, और पृष्ठभूमि के लक्षणों को अवधान की परिधि पर रखता है।
3. संज्ञानवादी उपागम में यह भी अभिग्रह निहित है कि प्रेक्षक प्रत्यक्ष के क्षेत्र को उपसमूहों में विभक्त कर संगठित करता है। प्रेक्षक स्वभाविक रीति से गले में रुद्राक्ष की माला तथा ललाट पर चंदन लगाए हुए और गेरुआ वस्त्र धारण किए हुए व्यक्ति को पुजारी के रूप में प्रेक्षण करेगा।
4. प्रत्यक्ष किए जाने वाला प्रत्येक व्यक्ति किसी संरचना के भाग होते हैं। संरचना में सम्मिलित सभी उद्दीपक स्थान-काल में एक दूसरे से संबंधित होते हैं। प्रत्येक व्यक्ति की छवि किसी संदर्भ में निर्मित होती है और वह प्रेक्षक के अत्यधिक जटिल संज्ञान परत संरचना का एक भाग होता है।

जिस प्रकार किसी भी व्यक्ति की छवि प्रेक्षक के बयान के विस्तृत संरचना का स्वाभाविक रूप से एक अंग होती है। ऐस (1946) ने अपने अध्ययन में प्रयोजनों के समक्ष शीलगुणों की एक सूची प्रस्तुत की। इन शीलगुणों के आधार पर उसने प्रत्येक प्रयोग से उन शीलगुणों वाले व्यक्ति का वर्णन एक पैराग्राफ में करने का निर्देश दिया। साथ ही उसने प्रयोज्य को विलोमी शीलगुणों की सूची देकर उस व्यक्ति की छवि के अनुकूल शीलगुणों को इंगित कराया। सूची में 7 शीलगुण लिये गये थे। उन्होने सूची में से 1 गुण को क्रमबद्ध रीति से 4 रूपों में परिवर्तित किया गया। इस अध्ययन के रोचक परिणाम प्राप्त हुए। जिन प्रयोज्यों को प्रथम सूची दी गई उनमें 90% से अधिक विरोधियों ने कल्पित व्यक्ति को उधार बताया। जबकि दूसरी सूची प्राप्त करने वाले 10% से कम प्रयोग जाने उस व्यक्ति को उधार बताया। इस प्रकार का रोचक प्रभाव तीसरी और चौथी सूची के प्रयोगों में नहीं पाया गया।

हैरोल्ड केली (1950) में भी एक अध्ययन में सहृदय-हृदयहीन विमा के छवि निर्माण में नाटकीय प्रभाव को प्रदर्शित किया है। उन्होंने अपनी दो कक्षाओं में सूचित किया कि उस दिन उस कक्षा में अन्य विश्वविद्यालय से आमंत्रित एक प्राध्यापक का भाषण होगा। इसके बाद उसने आगंतुक प्राध्यापक का जीवन-वृत्त बताया। दोनों कक्षाओं में बताए गए जीवन वृत्त एक अंतर बस इतना था कि एक कक्षा में आगन्तुक को एक सहृदय व्यक्ति बताया गया। जबकि दूसरी कक्षा में हृदयहीन। आगंतुक प्राध्यापक ने बारी-बारी से दोनों कक्षाओं में अपना भाषण दिया। इसके बाद छात्रों से आगंतुक की छवि का वर्णन कराया गया। सहृदयता सूचना पाने वाले विद्यार्थियों ने हृदयहीनता की सूचना पाने वालों से बिल्कुल भिन्न वर्णन प्रस्तुत किया। आगंतुक के भाषण की अवधि में सहृदयता की सूचना वाली कक्षा में अधिक प्रश्न पूछे गए और छात्रों ने अधिक रूचि ली। जबकि दूसरी कक्षा में ऐसा नहीं हुआ।

2.3.2.3. छवि निर्माण: सूचना प्रक्रमण के पूर्वाग्रह

अध्याय के आरंभ में ही बताया जा चुका है कि मनुष्य चयनात्मकता रीति से सूचना-संकेतों को ग्रहण करना है। किसी भी समय व्यक्ति के संग्राहकों को अधिक मात्रा में सूचना-संकेत प्राप्त होते हैं। अपनी सीमित सरणी क्षमता के कारण और चुने हुए सूचना संकेतों को ही प्रत्यक्षपरक प्रक्रमण को लेकर किसी वस्तु का प्रत्यक्षीकरण की छवि निर्मित करता है। व्यक्ति के छवि निर्माण में सूचना संकेतों के प्रकरण में अनेक पूर्वाग्रह उत्पन्न होती हैं। जिनके कारण प्रायः विरोधी छवियां निर्मित होती है। यह पूर्वाग्रह सूचना प्रक्रमण की सभी अवस्थाओं- अवधान, कूट-संकेतन, भंडारण तथा पुनरुद्धार में उत्पन्न होती है। कुछ पूर्वाग्रह परिवेश या स्थितिजन्य होते हैं, और कुछ पूर्वाग्रह प्रेक्षकजन्य होते हैं।

उद्दीपक प्रमुखता

छवि निर्माण में व्यक्ति से अथवा उससे संबंधित सभी सूचना-संकेतों का उपयोग छवि निर्माण में नहीं होता है। प्रेषक कुछ सूचना-संकेतों पर ध्यान केंद्रित करता है और शेष की उपेक्षा कर देता है। जिन सूचना संकेतों पर ध्यान केंद्रित होता है, वह आकृतिक हो जाती हैं, तथा अवधान की परिधि में आने वाले सूचना संकेत पृष्ठभूमि बन जाती हैं। यह पूर्वाग्रह आधान की अवस्था में उद्दीपक कारकों से उत्पन्न होती है। व्यक्ति के छवि निर्माण के प्रसंग में जो भी व्यक्ति अपनी दैहिक बनावट, चाल-ढाल, परिधान या

वाणी में असामान्य होते हैं, उन पर प्रेक्षक का ध्यान स्वत: केंद्रित हो जाता है। व्यक्ति से प्राप्त होने वाले सूचना संकेतों की असामान्यता छवि-निर्माण को अनेक प्रकार से प्रभावित करती है। किसी भी परिवेश में व्यक्ति की असामान्यता अथवा उससे प्राप्त होने वाली सूचना प्रमुखता इस अर्थ में कार्य कारण को प्रभावित करती है कि प्रमुख लक्षणों वाले व्यक्ति सामाजिक स्तर पर अधिक प्रभावशाली लगते हैं। उदाहरण जो छात्र कक्षा की अगली पंक्ति में बैठता है और अध्यापन की अवधि में बार-बार प्रश्न करता है, तो ऐसा माना जाता है कि वह विद्यार्थी मेधावी है। दूसरा प्रभाव यह है कि असामान्य या प्रमुख लक्षणों वाले व्यक्तियों का मूल्यांकन होता है। टेलर एवं अन्य (1977) ने श्वेत एवं अश्वेत लोगों का समूह बनाया। एक समूह में आधे श्वेत और आधे अश्वेत थे। दूसरा समूह श्वेत लोगों का था, जिसमें मात्र एक अश्वेत व्यक्ति सम्मिलित था। प्रथम समूह में अश्वेत आनंददायक थे और दूसरे समूह में दुखदायक। ऐसे में अश्वेतों का मूल्यांकन कराया गया। सुखद दशा में एकाकी अश्वेत को अधिक धनात्मक और दुखद दशा में अधिक ऋणात्मक मूल्य दिया गया।

टेलर (1981) ने यह प्रदर्शित किया है कि व्यक्ति की उद्दीपन प्रमुखता उसकी छवि को अधिक संगठित बना देती है। उदाहरण यदि कोई व्यक्ति आतंकवादी होने के कारण पकड़ा गया है, और पुलिस संरक्षण में न्यायालय की ओर ले जाया जा रहा है, तो उसे देखते ही निर्दयी, हत्यारा और षड्यंत्रकारी होने के शीलगुण उसकी छवि में समाहित हो जाते हैं।

2.3.2.4. अवाचिक सूचना संकेत

2.3.3. सारांश

2.3.4. अपनी प्रगति की जांच

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. व्यक्ति प्रत्यक्षीकरण वह प्रक्रिया है, जिसके द्वारा एक व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति के संबंध में कोई ....बनाता है या .... करता है।

1) धारणा, निर्णय ब) आकार, निर्णय स)विचार, धारणा द)बात, **निर्णय**

2. धारणा निर्माण या निर्णयन-प्रक्रिया किसे कहते है ?

अ) सामाजिक प्रत्यक्षीकरण ब) स्व-प्रत्यक्षीकरण

स) व्यक्ति प्रत्यक्षीकरण द) वस्तु-प्रत्यक्षीकरण

3. निन्मलिखित कारकों में से व्यक्ति-प्रत्यक्षीकरण के कारक नहीं है।

अ) उत्तेजना कारक ब) प्रत्यक्षीकरण कर्ता निर्धारक

स) संज्ञानात्मक सरचना द) असामाजिक संदर्भ

4. शारीरिक हाव-भाव एवं मुद्रा यह किस तरह के संकेत है?

अ) शाब्दिक संकेत ब) आशाब्दिक संकेत

स) अप्रत्यक्षणीय संकेत द) उत्तेजनात्मक संकेत

5. निम्नलिखित दो वाक्यों में से किस संप्रत्यय का आकलन होता है।

1. यह एक प्रक्रिया है।

2. इसके द्वारा व्यक्ति दूसरे व्यक्ति या व्यक्तियों के संबंध में धारणा वनाता है आकलन करता है ।

अ) स्व-प्रत्यक्षीकरण ब)सामाजिक प्रत्यक्षीकरण

क) व्यक्ति प्रत्यक्षीकरण ड) व्यक्ति प्रत्यक्षीकरण

लघुउत्तरीय प्रश्न

1. व्यक्ति प्रत्यक्षीकरण के पाँच विशेषताओं को स्पष्ट कीजिये?
2. व्यक्ति प्रत्यक्षीकरण निर्धारक को समझाते हुए भागों को बताइये?
3. व्यक्ति प्रत्यक्षीकरण को प्रभावित करने बाले करलों में संज्ञानात्मक सरचना को स्पष्ट करे?
4. सामाजिक संदर्भ क्या है ?
5. व्यक्ति प्रत्यक्षीकरण और वस्तु-प्रत्यक्षीकरण में अंतर स्पष्ट कीजिए?
6. व्यक्ति प्रत्यक्षीकरण के कारक निर्धारंक को संक्षेप में बताइये?

2.3.5. शब्दावली

गुणारोपण Attribution

आंतरिक कारक Internal factor

कारणात्मक गुणारोपण Causal Attribution

सहसंवादी अनुमिति Corresponding Inference

संज्ञानात्मक Cognitive

प्रत्यक्षीकरण Perception

प्रेक्षक Observer

आंतरिक Internal

बाह्य External

प्रक्रम Process

संकेत Cue

संकृत्य task

2.3.6. संदर्भ पुस्तकें

- त्रिपाठी, ला. ब. तथा अन्य (1998). आधुनिक सामाजिक मनोविज्ञान, आगरा, हर प्रसाद भार्गव।
- Baron, R. A. & Misra, G. (2014). Psychology: Indian Subcontinent Edition. Pearson
- Education

इकाई-4 गुणारोपण

इकाई की रूपरेखा

2.4.0. उद्देश्य

2.4.1. परिचय

2.4.2. विषय विवेचन

2.4.2.1. स्वरूप एवंपरिभाषा

2.4.2.2. गुणारोपण के कारक

2.4.2.3. गुणारोपण के सिद्धान्त

2.4.2.4. गुणारोपण को निर्धारित करने वाले कारक

2.4.3. सारांश

2.4.4. अपनी प्रगति की जांच

2.4.5. शब्दावली

2.4.6. संदर्भ ग्रंथ सूची

2.4.0. उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप इस योग्य हो जाएंगे कि व्यक्ति किस प्रकार दूसरे व्यक्तियों के बारे में अनुमान लगा पाते हैं कि वह व्यक्ति वही है जो सामने स्वयं को प्रदर्शित कर रहा है। आप यह भी जान सकेंगे कि हम अपने सामाजिक जगत को कैसे समझते हैं तथा गुणारोपण एवं विश्वास किस तरह कार्य करते हैं? गुणारोपण के आंतरिक और वाह्य कारकों के बारे में जान सकेंगे। साथ ही इसके सैद्धान्तिक पक्षों से भली भांति परिचित भी हो सकेंगे।

2.4.1. परिचय

व्यक्ति का समाज के साथ समायोजन स्थापित करने के लिए यह आवश्यक है कि वह समाज में उपस्थित उद्दीपकों के प्रति सही अनुमान लगाकर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करे। जिस व्यक्ति के व्यवहार का हम प्रेक्षण कर रहे हैं, लोग उसके व्यवहार तथा विशेषताओं पर अधिक ध्यान देते हैं, अपेक्षाकृत उस परिस्थिति के, जिसमें व्यवहार घटित होता है। गुणारोपण, सामान्य व्यक्तियों द्वारा घटनाओं के बारे में निष्कर्ष निकालना या अनुमान लगाना है। हम घटनाओं को देखकर ऐसे कारणों का पता लगाते हैं। इसमें हमारे स्वयं के व्यवहार तथा अनुभूतियाँ भी शामिल हैं।

2.4.2. विषय विवेचन

2.4.2.1. स्वरूप एवं परिभाषा

कोई भी व्यक्ति किसी सामाजिक उद्दीपक या घटना का जिस रूप में प्रत्यक्षीकरण करता है, उसी के अनुकूल उसकी अनुक्रिया होती है। एक ही सामाजिक घटना के प्रति भिन्न-भिन्न व्यक्तियों की भिन्न-भिन्न प्रतिक्रियाएं हो सकती हैं, जिसका कारण यह है कि भिन्न-भिन्न व्यक्ति उस घटना का प्रत्यक्षीकरण विभिन्न प्रकार से करते हैं। अर्थात लोगों के समस्त सामाजिक व्यवहार वस्तुतः सामाजिक उद्दीपकों या घटनाओं के प्रत्यक्षीकरण से निर्धारित होते हैं। मनुष्य के सामाजिक परिवेश में तीन प्रकार के उद्दीपक सर्वाधिक महत्वपूर्ण है:

- दूसरा व्यक्ति।
- दूसरे व्यक्तियों द्वारा संपादित की जाने वाली क्रियाएं।
- वह व्यक्ति जो किसी दूसरे व्यक्ति तथा उसकी क्रियाओं का प्रेक्षण करता है। सामाजिक व्यवहारों के निर्धारण में इन तीनों उद्दीपकों के प्रत्यक्षीकरण की सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका होती है। किसी स्थिति में किसी व्यक्ति का किसी दूसरे व्यक्ति के प्रति कैसा व्यवहार होगा, यह इस बात पर निर्भर करता है कि
- वह व्यक्ति दूसरे व्यक्ति का प्रत्यक्षीकरण किस रूप में कर रहा है। (व्यक्ति प्रत्यक्षीकरण)
- व्यक्ति दूसरे व्यक्ति द्वारा की जाने वाली क्रियाओं का प्रत्यक्षीकरण किस रूप में कर रहा है।

व्यक्ति स्वयं अपना प्रत्यक्षीकरण किस रूप में रहा है। (आत्म प्रत्यक्षीकरण) जब भी कोई व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति के व्यवहारों का प्रत्यक्षीकरण करता है, तो उस समय उसको मात्र इतनी ही जानकारी नहीं होती है कि व्यक्ति ने किस प्रकार का कार्य किया। बल्कि वह स्वाभाविक रूप से व्यक्ति के व्यवहारों के कारण अथवा उसके मूल में निहित स्रोतों अथवा प्रेरकों का भी अनुमान कर लेता है। उदाहरण मान लीजिए कि कोई व्यक्ति आपके पास मदद मांगने के लिए आता है। वह कहता है कि मेरे इलाके में भूकंप आने से मेरी मकान क्षतिग्रस्त हो गई है। खाने-पीने और रहने की समस्या उत्पन्न हो गई है। कुछ आर्थिक मदद आपके द्वारा हो जाती तो बड़ा अच्छा रहता है। उस समय आप मात्र उसके बनावट और शारीरिक स्थिति तथा उसके द्वारा आर्थिक सहायता की मांग का ही प्रत्यक्षीकरण नहीं करते, बल्कि यह भी अनुमान लगाने का प्रयास करते हैं कि उसकी स्थिति वास्तविक है या वह दूसरों को ठगने के लिए वैसा रूप बनाया है, और पैसा कमाने के लिए भीख मांग रहा है। किसी व्यक्ति और उसके कार्य का प्रत्यक्षीकरण करते समय इसी प्रकार का अनुमान कर लेना ही गुणारोपण कहलाता है। फेल्डमैन (1985) के अनुसार, "दूसरे लोगों के व्यवहारों के कारणो को समझना और उसके संबंध में निर्णय देना गुणारोपण कहलाता है।" पिटस्ट्रेन तथा निकी हेस (1991) के अनुसार, "गुणारोपण, वह प्रक्रिया है, जिसके द्वारा किसी घटना या किसी व्यक्ति के व्यवहार को अनुमानों के द्वारा समझा जाता है तथा निर्णय लिया जाता है कि उस व्यक्ति या घटना में कोई विशेष गुण या विशेषता है।"

रेबर तथा रेबर (2001) ने गुणारोपण को परिभाषित करते हुए कहा कि यह वह प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति अपने प्रति या दूसरों के प्रति एक विशेषता अथवा शीलगुण, संवेग इत्यादि को आरोपित करता है। अर्थात कहा जा सकता है कि अपने परिवेश में कार्य-कारण की संरचनाओं के संज्ञानात्मक समझदारी के लिए गुणारोपण सहायक होता है। इसमें एक व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति के व्यवहार के कारण को समझने तथा उसके अनुकूल निर्णय देने का प्रयास करता है। साथ ही वह व्यक्ति अपने व्यवहार के कारण को समझने तथा उससे संगत निर्णय देने का प्रयास भी करता है। कोई भी व्यक्ति प्रयत्क्ष के कारण का अनुमान लगा लेते हैं। गुणारोपण को 'कारणता के प्रत्यक्षीकरण' (Perception of Causality) के नाम से भी जाना जाता है।

2.4.2.2. गुणारोपण के कारक

गुणारोपण एक संज्ञानात्मक प्रक्रिया है, जिसके द्वारा व्यक्ति को किस तरह का ज्ञान प्राप्त होता है, यह जानने का प्रयास किया जाता है। इसका संबंध किसी व्यवहार के कारण को खोजने से होता है। यदि हम किसी व्यक्ति को किसी दूसरे व्यक्ति को गाली देते हुए देखते हैं तो हम यह समझने का प्रयास करते हैं कि वह क्यों गाली दे रहा है, इसका क्या कारण है? गुणारोपण का संबंध सांकेतित निर्णय से होता है। गुणारोपण इस बात की भी व्याख्या करता है कि व्यक्ति, किसी व्यवहार को क्यों कर रहा है, इसके पीछे क्या कारण है तथा किस आधार पर? उन कारणों को समझने का प्रयास करता है। कुछ मनोवैज्ञानिकों ने इसके दो आधार या कारक बताए हैं: आंतरिक कारक तथा वाह्य कारक। उदाहरण एक प्रेक्षक किसी विद्यार्थी के किसी परीक्षा में कम अंक को देखता है। स्पष्ट है कि विद्यार्थी के कम अंको का कारण या तो आंतरिक कारक अथवा उसके वाह्य कारक या दोनों कारक आंशिक रूप से उपस्थित हो सकते हैं। उपरोक्त उदाहरण में विद्यार्थी की कम मानसिक योग्यता, पढ़ाई में अरुचि, नोट्स का ना होना, कक्षा में उपस्थिति कम होना इत्यादि कारण हो सकते हैं (आंतरिक कारक)। परीक्षा के प्रश्नों का कठिन होना अथवा परीक्षक द्वारा सख्त मूल्यांकन करना इत्यादि कारण हो सकते हैं (बाह्य कारक)। जब प्रेक्षक यह निर्णय ले लेता है कि कम अंको का कारण आंतरिक है अथवा वाह्य तो उसे विद्यार्थी के संबंध में अनेक प्रकार के संज्ञान उत्पन्न हो जाते हैं। साथ ही प्रेक्षक के द्वारा उस विद्यार्थी के बारे में पूर्वकथन भी किया जा सकता है। जिस व्यक्ति के संबंध में गुणारोपण किया जाता है वह कार्य जिस तरह से हो रहा है, उसका कारण उस व्यक्ति में निहित है, को आंतरिक कारक कहा जाता है। उदाहरण के द्वारा स्पष्ट है कि विद्यार्थी ने जो कम अंक प्राप्त किए हैं, उस कम अंक मिलने में उस विद्यार्थी का ही योगदान है को आंतरिक कारक के रूप में समझा जा सकता है। आंतरिक कारक के निम्न प्रकार हो सकते हैं: दु:ख, गुणारोपण का एक आधार लक्षित व्यक्ति का दुख या कष्ट हो सकता है। व्यक्ति किसी घटना के कारण किसी दु:ख या वेदना से पीड़ित होता है, तो हम उसे दया का पात्र समझने लगते हैं। किसी अंधे को देखकर उसके प्रति हम दया का भाव प्रकट करते हैं। यह आंतरिक कारक नियंत्रण के योग्य नहीं है दुर्व्यवहार, गुणारोपण करने का एक आधार दुर्व्यवहार भी हो सकता है। जब हम किसी व्यक्ति को दुर्व्यवहार करते पाते हैं, तो हम स्वत: ही निर्णय ले लेते हैं कि वह व्यक्ति ही दोषी है। इसी प्रकार जब हम स्वयं कोई ऐसा दुर्व्यवहार कर बैठते हैं, जिससे हम बच सकते थे तो हम स्वयं को दोषी समझने लगते हैं। शीलगुण, गुणारोपण का एक महत्वपूर्ण

आधार उसका शीलगुण होता है। हम किसी व्यक्ति के किसी निश्चित गुणों को ध्यान में रखते हुए उसके व्यवहार की व्याख्या करते हैं। जैसे महात्मा गांधी ने अनेक कष्टों को सहते हुए अंग्रेजों के चंगुल से भारत को स्वतंत्र करने के अपने प्रयासों को अंत तक जारी रखा। क्योंकि उनमें राष्ट्रीयता नामक शीलगुण की अधिकता थी। आंतरिक कारक को व्यक्तिगत कारक भी कहा जाता है। गुणारोपण को निर्धारित करने में वाह्य कारकों का भी योगदान होता है। वाह्य कारकों का अर्थ वे कारक या निर्धारक हैं जिनका संबंध उस परिस्थिति से होता है, जिस परिस्थिति के कारण लक्षित व्यक्ति में कोई व्यवहार घटित होता है। अर्थात इस तरह के कारक में हम उन परिस्थितियों को निर्धारित करते हैं, जिनके कारण लक्षित व्यक्ति ने अपना व्यवहार किया। यह भी देखा जाता है कि इस व्यवहार का कारण वह व्यक्ति स्वयं नहीं है, बल्कि वह परिस्थिति है, जिसके कारण उस व्यक्ति को इस तरह के व्यवहार को करने के लिए बाध्य होना पड़ा। जैसे अगर कोई व्यक्ति अपराधी हो जाता है तो हम उन परिस्थितियों का विवरण प्रस्तुत करते हैं, जिसके कारण उस व्यक्ति को अपराध का सहारा लेना पड़ा। हम मानते हैं कि वह व्यक्ति अपराधी है। किन्तु हम उन परिस्थितियों को भी व्यक्त करते हैं जिसके कारण उस व्यक्ति के द्वारा यह व्यवहार घटित हुआ। परिस्थितिवश उत्पन्न होने वाले कारकों को निम्नलिखित रूप में जाना जा सकता है: दूसरे व्यक्ति का शीलगुण, कभी-कभी व्यक्ति अपने स्वभाव या शीलगुण के विपरीत दूसरे लोगों के स्वभाव या शीलगुण से प्रभावित होकर कोई व्यवहार कर देता है। जैसे कोई विद्यार्थी अपने शिक्षक के व्यवहार से दुखी होकर विद्यालय छोड़ कर चला जाता है। उस विद्यार्थी का विद्यालय छोड़ कर जाना, उस शिक्षक की हिंसक प्रवृत्ति या उसके द्वारा उस व्यवहार को कारण माना जाता है, जिससे परेशान होकर वह विद्यार्थी स्कूल छोड़ देता है। अर्थात कहा जा सकता है कि वाह्य कारक में दूसरे व्यक्ति का शीलगुण भी उन परिस्थितियों को उत्पन्न कर देता है, जिसके कारण व्यक्ति अपने स्वभाव के विपरीत जाकर निर्णय लेता है। विशेष घटना, व्यक्ति के व्यवहार को निर्धारित करने में किसी घटना विशेष का भी उल्लेख होता है। सामान्यतया व्यक्ति उस घटना के अनुकूल व्यवहार करता है, घटना बदल जाने पर उसका व्यवहार भी बदल जाता है। जैसे किसी की मृत्यु पर शोक प्रकट करना या किसी की सफलता पर खुशी प्रकट करना इत्यादि होने वाले व्यवहारों के कारणों की व्याख्या में विशेष घटना का उल्लेख किया जाता है। जिसके कारण उस व्यक्ति ने अपना व्यवहार प्रदर्शित किया, यहां उस घटना को कारक माना जाता है। किसी घटना को उत्पन्न करने वाले कारक आंतरिक हैं अथवा वाह्य। इसका निर्णय हो जाने के पश्चात प्रेक्षक भविष्य की घटनाओं का पूर्वकथन भी कर सकता है। मान लीजिए कि कम अंको का कारण विद्यार्थी की बुद्धिहीनता (आंतरिक कारक) को समझा गया, तो प्रेक्षक द्वारा यह पूर्वकथन किया जाएगा कि भविष्य में उस विद्यार्थी के द्वारा दी गई परीक्षाओं में भी ऐसे ही अंक प्राप्त होंगे। वहीं प्रश्नपत्र कठिन (वाह्य कारक) होने पर उसका पूर्वकथन प्रेक्षक द्वारा किया गया कि अन्य सभी विद्यार्थियों का भी परीक्षाफल संतोषजनक नहीं हुआ होगा।

2.4.2.3. गुणारोपण के सिद्धान्त

गुणारोपण के सभी सिद्धान्तों में बताया गया है कि कोई प्रेक्षक इन मूलभूत प्रक्रमों का उपयोग करते हुए किस प्रकार किसी क्रिया के कारणों के सम्बन्ध में संज्ञान प्राप्त करता है। ऐसी कौन सी सूचनाएं हैं तथा

उन सूचनाओं की प्रकृति क्या है? जिनके द्वारा प्रेक्षक यह निर्णय लेता है कि किसी व्यक्ति के किसी व्यवहार के वे कौन से आंतरिक तथा वाह्य कारक है। यह एक जटिल समस्या है जिसके समाधान के लिए मनोवैज्ञानिकों ने गुणारोपण के सिद्धांत का विकास किया। गुणारोपण के मुख्यतः तीन सिद्धांतों का उल्लेख किया गया है। जो इस प्रकार हैं:

1. कारणात्मक गुणारोपण सिद्धान्त (Causal Attribution theory)
2. सहसंवादी अनुमिति सिद्धान्त (Correspondence Inferencetheory)
3. सफलता/असफलता का गुणारोपण सिद्धांत

कारणात्मक गुणारोपण सिद्धान्त (Causal Attribution theory)

इस सिद्धांत का प्रतिपादन केली (1967) ने किया। उन्होंने इस सिद्धांत में बताया कि प्रेक्षक किसी व्यक्ति द्वारा की गई क्रिया का प्रेक्षण करने के पश्चात किस प्रकार उसका करणात्मक गुणारोपण करता है। केली के अनुसार किसी व्यक्ति द्वारा संपादित किसी क्रिया के तीन संभावित कारण हो सकते हैं, जो निम्न हैं

1. आंतरिक कारण
2. वाह्य कारण
3. परिवेशगत परिस्थितियाँ

इस सिद्धांत के अनुसार प्रेक्षक यह अनुमान करता है कि व्यक्ति के व्यवहार का कारण उपर्युक्त तीनों कारणों में से कौन सा हो सकता है।

उदाहरण : विद्यार्थी का कक्षा में प्रथम आना

1. आंतरिक कारण- विद्यार्थी की योग्यता- बुद्धिमान, परिश्रमी
2. वाह्य कारण- पाठ्यक्रम तथा प्रश्नपत्र का आसान होना
3. परिवेशगत परिस्थितियाँ- ट्यूशन

उपर्युक्त तीनों कारणों में से कौन सा कारण विद्यार्थी के प्रथम श्रेणी केअंको के लिए उत्तरदाई है यह जानने के लिए प्रेक्षक को कुछ विशेष सूचनाओं की आवश्यकता होती है केली के अनुसार गुणारोपण के लिए प्रेक्षक को तीन प्रकार की सूचनाएँ प्राप्त हो सकती है

- विशिष्टता
- सहमति
- एकरूपता

विशिष्टता

मान लीजिए कि यदि विद्यार्थी ने गणित के अतिरिक्त अन्य विषयों मे खराब अंक पाए हैं, तो मात्र गणित में ही विशेषता प्राप्त करना उसकी योग्यता के कारण नहीं समझा जाएगा। किंतु यदि गणित के अंको में कोई विशेषता नहीं हैअर्थात सभी विषयों में विद्यार्थी के प्रथम श्रेणी के अंक हैं। तो प्रेक्षक गणित

में प्रथम श्रेणी के अंकों का गुणारोपण, विद्यार्थी की योग्यता में करेगा। केली के अनुसार विशिष्टता की मात्रा जैसे-जैसे बढ़ती है आंतरिक कारणों पर गुणारोपण की संभावना घटती जाती है तथा परिवेशीय उद्दीपकों एवं परिस्थितियों पर गुणारोपण की संभावना बढ़ती जाती है।

सहमति

यदि सभी विद्यार्थियों ने मनोविज्ञान विषय में प्रथम श्रेणी के अंक प्राप्त किए हैं। तो इस सहमति के कारण कोई भी प्रेक्षक विद्यार्थी विशेष के मनोविज्ञान में अच्छे अंको का कारण विद्यार्थी की उच्च स्तरीय योग्यता पर आरोपित नहीं करेगा। बल्कि वह यह पूर्वकथन करेगा कि मनोविज्ञान का पाठ्यक्रम या प्रश्न पत्र या दोनों आसान था। इसी कारण उस विद्यार्थी को भी अच्छे अंक मिले। दूसरी ओर यदि सहमति नहीं है तो पाठ्यक्रम अथवा प्रश्न पत्र या दोनों को कठिन समझा जाएगा। प्रेक्षक उस विद्यार्थी के मनोविज्ञान में अच्छे अंकों का गुणारोपण उसकी योग्यता पर करेगा। केली के अनुसार इस सिद्धांत के द्वारा, सहमति की मात्रा जितनी ही कम होती है, आंतरिक कारणों पर गुणारोपण की संभावना बढ़ती जाती है। जबकि सहमति की उच्च मात्रा होने की स्थिति में परिवेशीय उद्दीपकों पर गुणारोपण होने की संभावना अधिक होती है।

एकरूपता

केली के अनुसार एकरूपता का न पाया जाना, प्रेक्षक को घटना का कारण परिवेशजन्य कारकों पर गुणारोपित करने के लिए प्रेरित करता है। प्रेक्षक के द्वारा ऐसा माना जायेगा कि विद्यार्थी ने अच्छा अंक इसलिए पाया है कि हो सकता है कि इस विद्यार्थी ने मनोविज्ञान के लिए ट्यूशन का सहारा लिया था। केली के अनुसार यदि प्रेक्षक को एक से अधिक प्रकार की सूचनाएं उपलब्ध है तो गुणारोपण उन सभी सूचनाओं के सम्मिलित प्रभाव से होता है उदाहरण यदि विद्यार्थी के संबंध में विशिष्टता के साथ साथ ए गुप्ता की भी सूचना उपलब्ध हो तो प्रेक्षक उसके गणित में प्रथम श्रेणी के अंगों को उसकी योग्यता अर्थात आंतरिक कारक होना मानेगा कार्यात्मक गुणारोपण के संबंध में किए गए प्रायोगिक अध्ययन यह बताते हैं कि अपने दैनिक जीवन में लोग प्रायः पूरी सूचनाओं को एकत्र किए बिना ही किसी घटना के कारण का अनुमान लगा लेते हैं और फिर अपने अगले व्यवहार का निर्धारण इसी अनुमान के आधार पर करते हैं। बल्कि एक सामान्य प्रेक्षक उपलब्ध सीमित सूचनाओं के आधार पर घटना का कोई एक कारण समझ लेता है और उसके बाद अपने अनुमान को सत्यता का आधार प्रदान करने हेतु ऐसी सूचनाओं की खोज प्रारंभ कर देता है जो उसके अनुसार की वैधता को प्रमाणित कर सके।

जोन्स तथा डेविस का सहसंवादी अनुमिति सिद्धान्त (Correspondence Inference theory)

किसी व्यक्ति द्वारा किए गए किसी व्यवहार का परीक्षण करने के पश्चात उसके कारणों का अनुमान करने के गुणारोपण प्रक्रम के संबंध में जोंस तथा डेविस (1965) ने सहसंवादी अनुमिति सिद्धांत का प्रतिपादन किया। उनके सिद्धांत के अनुसार कोई प्रेक्षक किसी व्यवहार से उत्पन्न परिणामों का प्रेक्षण करता है और इन परिणामों के आधार पर ही व्यक्ति का मूल्यांकन करता है। इनके सिद्धांत के अनुसार व्यक्ति की व्यक्तिगत प्रवृत्ति तथा अपने व्यवहार द्वारा वांछित प्रभाव अथवा परिणाम उत्पन्न करने के उसके उद्देश्यों में पारस्परिक सहमति होती है। किसी व्यक्ति द्वारा की गई सामाजिक अनुक्रिया से एक

अथवा एक से अधिक प्रभाव उत्पन्न हो सकते हैं। यदि उस अनुक्रिया से मात्र एक ही प्रभाव उत्पन्न हो तो उस प्रभाव का प्रेक्षण करके प्रेक्षक यह मान सकता है कि उस प्रभाव को उत्पन्न करना व्यक्ति का उद्देश्य था और वह व्यक्ति में कतिपय विशेषताओं का गुणारोपण कर सकता है। परंतु यदि अनुक्रिया से उत्पन्न होने वाले प्रभाव की संख्या एक से अधिक हो तो प्रेक्षक के सम्मुख दो प्रश्न उपस्थित होते हैं कि क्या व्यक्ति का उद्देश्य उन सभी प्रभावों को उत्पन्न करना था? यदि नहीं, तो व्यक्ति अपने व्यवहार द्वारा कौन से प्रभाव उत्पन्न करना चाहता था? और कौन से नहीं? जोन्स तथा डेविस के अनुसार, जब कोई व्यक्ति दो विकल्पों में से किसी एक को चुनने का निर्णय लेता है तो उसके द्वारा संपादित व्यवहार उन दोनों विकल्पों से अलग-अलग उत्पन्न हो सकने वाले प्रभावों में से 'असमान प्रभाव' उत्पन्न करने के उद्देश्य से होती है। उदाहरण : विद्यार्थियों की समस्या रहती है कि वे अंतर्विषयी अध्ययन के लिए किस विषय का चयन करें? उपरोक्त उदाहरण में विद्यार्थी सभी विषयों के अलग-अलग उत्पन्न होने वाले समस्त प्रभाव को देखता व समझता है। ज्ञान, पाठ्यचर्या, अध्यापकों के कौशल इत्यादि ध्यान में रखते हुए सोच विचार कर विषय का चयन करता है। ऐसी स्थिति में प्रेक्षक समान तथा असमान प्रभाव का विश्लेषण करेगा। यदि वह पाएगा की पुस्तकों की सुविधा, मित्र-मंडली की उपस्थिति, शिक्षण का स्तर, अच्छे अध्यापक इत्यादि अनेक प्रभाव सभी विषयों के चयन में समान रूप से है, तो वह इनमें से किसी भी प्रभाव को विद्यार्थी के निर्णय के कारण के रूप में प्रदर्शित नहीं करेगा। परंतु प्रेक्षक की जानकारी की मनोविज्ञान में परीक्षा में वस्तुनिष्ट शैली और भूगोल में निबंध शैली में होती है। उसे इसका सामान्य प्रभाव के रूप में गुणारोपण कर सकती है। विद्यार्थी ने मनोविज्ञान का चयन विशिष्ट परीक्षा शैली के कारण किया है। ऐसे बहुत से कारण भी हो सकते हैं इस विषय को चयन करने में। एक ऐतिहासिक उदाहरण लेकर विषय को और भी सही ढंग से स्पष्ट किया जा सकता है। उदाहरण सन 1975 में तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने आपातकाल की घोषणा की और उनके इस निर्णय से देश में अनेक प्रभाव उत्पन्न हुए। एक प्रेक्षक के रूप में आपको सभी प्रभाव को ध्यान में रखकर प्रधानमंत्री के व्यक्तित्व में कुछ विशेषताओं का गुणारोपण करने के लिए सर्वप्रथम आपको समस्त प्रभाव की सूची बनाकर यह निर्णय करना होगा कि उन में से किन प्रभाव को प्रधानमंत्री उत्पन्न करना चाहती थी और किन प्रभाव को नहीं। कुछ प्रमुख प्रभाव इस प्रकार से हो सकते हैं, जैसे- विपक्षी नेताओं की गिरफ्तारी, स्वतंत्र लेखन व भाषण बंद, अकारण प्रताड़ना, दफ्तरों में समय से काम होने लगना, भ्रष्टाचार कमी, अनुशासन, उत्पादन में वृद्धि इत्यादि। प्रश्न यह है कि प्रधानमंत्री की आपात काल की घोषणा का कारण क्या था? कारण का संज्ञान करने के लिए प्रेक्षक को यह अनुमिति करना होगा कि प्रधानमंत्री कौन से प्रभाव उत्पन्न करना चाहती थी? गुणारोपण में मात्र उन्हीं प्रभावों को ध्यान में रखना होगा।

वाइनर का सफलता/असफलता का गुणारोपण सिद्धांत

इस सिद्धांत का प्रतिपादन वाइनर (1974) ने किया। प्रत्येक व्यक्ति विभिन्न अवसरों पर किसी कार्य के पश्चात विभिन्न मात्रा में सफलता अथवा असफलता प्राप्त करता है। साथ ही प्रत्येक बार वह अपनी सफलता अथवा असफलता के कारणों का अनुमान लगाता है। उदाहरण किसी साक्षात्कार का परिणाम प्रकाशित होने के पश्चात आप सभी ने प्राय: अनेक अभ्यर्थियों को यह कहते सुना होगा कि

साक्षात्कार में अनुत्तीर्ण होने अथवा प्रतीक्षा सूची में आने का कारण यह है कि साक्षात्कार लेने वाले ने न्याय नहीं किया। उन्होंने साक्षात्कार के दौरान विषय से बाहर भी प्रश्नों का चयन किया, जो कि गलत है। कुछ अभ्यर्थियों ने इसका कारण अपने दुर्भाग्य को बताया। परंतु इन्हीं अभ्यर्थियों के माता-पिता साक्षात्कार में असफल होने का कारण अभ्यर्थियों के परिश्रम को जिम्मेदार माना कि उन्होंने उचित परिश्रम नहीं किया। दूसरी तरफ जिन अभ्यर्थियों ने साक्षात्कार में सफलता प्राप्त की, उन्होंने अपनी सफलता का कारण अपनी योग्यता अथवा अपने द्वारा किए गए परिश्रम को माना। किसी व्यक्ति को उसकी सफलता/असफलता का कारण/कारणों का संज्ञान विभिन्न प्रकार की सूचनाओं के उपयोग से हो सकता है। इनमें से कुछ सूचनाएं तो तात्कालिक घटना से संबंधित होती है और कुछ पुरानी घटनाओं की स्मृतियों से। इन सभी सूचनाओं के आधार पर व्यक्ति अपनी सफलता अथवा असफलता को चार संभावित कारकों में से किसी एक कारक अथवा एक से अधिक कारकों पर आरोपित करता है।

इसके चार कारक निम्न है

1. योग्यता
2. कार्य की कठिनाई
3. प्रयत्न
4. भाग्य

इन चारों कारकों में से योग्यता तथा प्रयत्न, व्यक्ति के आंतरिक कारक हैं। तो कार्य की कठिनाई और भाग्य, व्यक्ति की बाह्य कारक से संबंधित होती हैं। इसके अतिरिक्त योग्यता तथा कार्य की कठिनाई, स्थिर कारक के रूप में है और प्रयत्न तथा भाग्य अस्थिर कारक है। इन चारों कारकों के विषय में विस्तार से चर्चा की गई है, जो इस प्रकार है- योग्यता किसी प्रेक्षक को किसी अन्य व्यक्ति की अथवा स्वयं की बार-बार कि सफलता अथवा असफलता से योग्यता की उपस्थिति का संज्ञान सहज रूप से हो जाता है। सफलता का गुणारोपण योग्यता पर उस समय भी होता है, जब प्रेक्षक को व्यक्ति के अतिरिक्त अन्य व्यक्तियों के निष्पादन की भी सूचना प्राप्त हो। यदि किसी संस्कृत में अनेक व्यक्ति असफल हो जाएं और एक व्यक्ति सफल हो जाए तो उसकी सफलता उसकी योग्यता के कारण मानी जाएगी। इसी प्रकार यदि अनेक व्यक्ति सफल हो जाए और एक व्यक्ति असफल हो जाए तो उसकी असफलता का गुणारोपण योग्यता की कमी पर भी होगा। किन्ही दो व्यक्तियों का औसत निष्पादन बराबर होने पर भी जो व्यक्ति प्रारंभिक चरण में अधिक सफलता प्राप्त करता है, वह अधिक योग्य समझा जाता है। इसी प्रकार यदि दो व्यक्तियों का औसत निष्पादन बराबर हो तो किसी भी प्रयास पर निष्पादन जिस व्यक्ति का होता है, उसे अधिक योग्य समझा जाता है। स्थिर कारक होने के कारण प्रेक्षक जब किसी संकेत के आधार पर किसी व्यक्ति में योग्यता अथवा अयोग्यता का गुणारोपण कर लेता है, तो विपरीत प्रकार के संकेत प्राप्त होने पर भी पहले के गुणारोपड़ में परिवर्तन ना करने की प्रवृत्ति व्यक्ति में पाई गई है। प्रयत्न किसी भी संस्कृत का निष्पादन करने में किए गए शारीरिक अथवा मानसिक प्रयत्न की मात्रा के अनेक संकेत प्राप्त होते हैं और उनके परीक्षण से प्रयत्न की मात्रा का सही अनुमान लगाया जा सकता है। अधिक प्रयत्न करने के बावजूद यदि असफलता मिले तो इसका कारण प्रयत्न की कमी को मान लिया जाता है और यदि सफलता प्राप्त

हो जाती है तो साधारण सा प्रयत्न किए जाने की स्थिति में भी सफलता का गुणारोपण प्रयत्न पर किया जाता है। एक अध्ययन से यह प्रमाणित हुआ है कि एक के बाद एक करके अनेक संकृत्यों का निष्पादन करते समय जिस व्यक्ति की सफलता प्राप्त करने की आवृत्ति धीरे धीरे बढ़ती जाती है, वह अपने को दूसरों की अपेक्षा अधिक प्रयत्न करता हुआ मान लिया जाता है। जबकि औसत सफलता सभी व्यक्तियों की समान रहती है। कार्य की कठिनाई जिस कार्य को सभी अथवा अधिकांश व्यक्ति सफलतापूर्वक संपादित कर लेते हैं, वह कार्य अपेक्षाकृत आसान समझा जाता है। अतः किसी कार्य की कठिनाई का अनुमान बहुत से लोगों द्वारा उस कार्य पर संपादित निष्पादन के आंकड़ों से भी किया जा सकता है। परंतु वास्तविक सामाजिक जीवन के निष्पादनों का गुणारोपण करते समय किसी कार्य की कठिनाई के मानदंड का ध्यान प्राय: व्यक्ति नहीं रखते। उदाहरण कोई व्यक्ति किसी कार्य में असफल हो जाता है तो कोई प्रेक्षक उसकी इस असफलता का कारण कार्य की कठिनाई पर आरोपित करता है। जबकि बहुत सारे व्यक्ति कई प्रयासों के बाद भी उस कार्य को कर पाने में असफल होते हैं। किंतु कुछ ही व्यक्ति उस कार्य में सफल हो पाते हैं। ध्यान देने योग्य बात यह है कि वह कार्य अत्यंत ही कठिन है, जिसको कर पाना आसान नहीं है। परंतु प्रेक्षक अथवा असफल हो जाने वाला व्यक्ति, हो सकता है कि अपनी असफलता या व्यक्ति की असफलता का कारण योग्यता को समझें। क्योंकि निष्पादन की तुलना सामान्य जनसंख्या से नहीं बल्कि उन व्यक्तियों के माध्यम से करता है जो कुछ ही व्यक्ति उस कार्य को कर पाते हैं।

भाग्य

विभिन्न प्रायोगिक अध्ययनों में सफलता अथवा असफलता का गुणारोपण भाग्य पर होते हुए उस समय पाया गया है, जब किसी भी कारण से व्यक्ति यह विश्वास कर ले कि उसके प्रयत्नों के परिणाम मात्र संयोग पर आधारित है तथा उसकी योग्यता अथवा प्रयत्न की मात्रा का उसमें कोई योगदान नहीं है। भाग्य के गुणारोपण में संकृत्य की प्रकृति भी महत्वपूर्ण संकेत का कार्य करती है। उदाहरण ताश के पत्तों के खेल में, सिक्का उछालने में अथवा किसी प्रकार की जुआ खेलने में सफलता/असफलता का गुणारोपण भाग्य पर किया जाता है। यदि सफलता तथा असफलता यादृच्छिक क्रम में प्राप्त हो रही हो तथा योग्यता अथवा कौशल इत्यादि कारकों की इसमें कोई भूमिका दिखाई ना दे रही हो, तो ऐसी स्थिति में भी सफलता/असफलता का गुणारोपण भाग्य पर ही होता है। सफलता/असफलता के गुणारोपण में निहित मानसिक प्रक्रम एवं गुणारोपण से व्यक्ति की अभिवृत्तियों एवं व्यवहारों में उत्पन्न होने वाले परिवर्तनों का मनोवैज्ञानिकों ने गहन अध्ययन किया है। किसी भी व्यक्ति को जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में हमेशा सफलता/असफलता ही नहीं मिलती। जबकि व्यक्ति सफल/असफल होता है, वह स्वभावत: उसके कारणों का गुणारोपण करता है। ऐसी स्थिति में दूसरे व्यक्ति के प्रति एवं स्वयं के प्रति भी उसकी अभिवृत्तियों में परिवर्तन आ जाता है, जो आगे चलकर उसके व्यवहार को एवं पूरे व्यक्तित्व को प्रभावित करता है।

2.4.2.4. गुणारोपण को निर्धारित करने वाले कारक

गुणारोपण को निर्धारित करने वाले अनेक संज्ञानात्मक कारकों में से तीन कारक महत्वपूर्ण हैं, जो इस प्रकार हैं-

1. प्रेक्षक कुछ विशेष प्रकार की सूचनाओं के उपलब्ध रहने पर भी गुणारोपण करते समय उन सूचनाओं का या तो उचित उपयोग नहीं करते या फिर उपयोग करने की इच्छा ही नहीं रखते हैं।
2. गुणारोपण में सूचनाओं के उपयोग का ढंग प्रेक्षक के निजी दृष्टिकोण से प्रभावित होता है।
3. प्रेक्षक की निजी आवश्यकताएं भी गुणारोपण को निर्धारित कर देती है। गुणारोपण की प्रक्रिया ठीक उन्हीं तार्किक नियमों के अनुसार नहीं होती हैं, जिसका विभिन्न सिद्धांतकारों के अनुसार उसे होना चाहिए। उपरोक्त तीनों कारकों के प्रभाव से किसी व्यक्ति के किसी व्यवहार के कारणों का संज्ञान सभी प्रेक्षक एक समान करें ही यह जरूरी नहीं है। अपूर्ण सूचनाओं का उपयोग गुणारोपण करते समय सभी लोग निर्धारित सूचनाओं का उपयोग करना पसंद करते हैं। जबकि निष्पक्ष सूचनाएं भी उपयोग के लिए उपलब्ध रहती है। उदाहरण यदि ज्ञात करना है कि किसी विशेष संकटकालीन स्थिति में लोगों का व्यवहार कैसा होगा? तो इसके लिए व्यक्तियों के एक समूह प्रतिदर्श से यह पूछना चाहिए कि इस परिस्थिति में वे लोग कैसा व्यवहार करेंगे? किंतु वास्तविकता यह है कि यदि किसी से पूछा गया कि इस स्थिति में लोग क्या करेंगे? तो जो व्यवहार वह स्वयं उस स्थिति में करता, उसे ही लोगों द्वारा किया जाना बताता है। (कैसीन, 1979) गुणारोपण में त्रुटि का एक कारण यह भी होता है कि प्रेक्षक प्राप्त सूचनाओं की गुणवत्ता की जांच वस्तुनिष्ठ ढंग से ना करके एक विशेष ढंग से करता है। विभिन्न शोध अध्ययनों से ज्ञात होता है कि गुणारोपण के लिए लोग अधिक स्पष्ट तथा मूर्त उदाहरणों व सूचनाओं का उपयोग अधिक मात्रा में करते हैं। जबकि अमूर्त विचारों, सांख्यिकीय निष्कर्षों तथा तार्किक मान्यताओं का उपयोग करने से परहेज करते हैं। (कहनेमैन तथा टवस्की, 1973)

प्रेक्षक का निजी दृष्टिकोण गुणारोपण के संबंध में किया गया एक सामान्य प्रेक्षण यह है कि किसी क्रिया को संपादित करने वाला व्यक्ति अपनी क्रियाओं का कारण परिवेश में स्थित कारकों को समझता है। जबकि उन्हीं क्रियाओं को यदि दूसरा व्यक्ति करें तो वह उनका कारण कर्ता के अंदर स्थित कारकों को समझता है। ऐसी परिस्थिति सफलता/असफलता के गुणारोपण में ज्यादातर होती है कि व्यक्ति अपनी सफलता का कारण अपनी योग्यता को तथा अपनी असफलता का कारण परिवेशजन्य कारकों को मानता है। साथ ही साथ वह दूसरे व्यक्ति की सफलता का कारण परिवेश कारकों को तथा असफलता का कारण उस व्यक्ति की योग्यता को मानता है। उदाहरण यदि आप ट्रेन का टिकट खरीदने के लिए एक लंबी लाइन में खड़े हैं और एक व्यक्ति बिना लाइन में लगे सीधे खिड़की से टिकट लेने का प्रयास करता है। इस परिस्थिति में चुकी आप लाइन में पहले से ही हैं। अतः संभावना यह है कि आप उस व्यक्ति में सभ्यता, अनुशासनहीनता जैसे और गुणों का गुणारोपण करेंगे। यहां यह स्पष्ट करना उचित होगा कि आपका दृष्टिकोण लाइन में लगे रहने के कारण भिन्न प्रकार का है। वहीं दूसरी तरफ मान लीजिए कि सभी लोग लाइन में है और आप बिना लाइन के टिकट लेना चाहते हैं। तब लोग आपको भला बुरा कहेंगे। परंतु ऐसी

स्थिति में अधिक संभावना इस बात की है कि आप अपनी इस क्रिया का गुणारोपण करने में अपने अंदर सभ्यता, अनुशासनहीनता जैसे गुणों का आरोपण नहीं करना चाहेंगे। बल्कि इसके लिए परिवेश तथा अन्य कारकों का उत्तरदायी समझेंगे। हो सकता है कि आप यह भी अन्य लोगों को समझाने का प्रयास करें कि लाइन में नहीं लगने की मजबूरी मेरी अस्वस्थता है, समय की कमी है, सामान का सुरक्षित ना रहना इत्यादि कारणों से है। जिसके कारण आप देर तक लाइन में प्रतीक्षा नहीं कर सकते हैं।

प्रेक्षक की आवश्यकताएं

व्यक्ति अपनी आवश्यकता के अनुसार अपने उद्देश्य की प्राप्ति हेतु तथा उस उद्देश्य के कारण कुछ कारकों को निर्धारित करता है। अनेक ऐसी मनोवैज्ञानिक आवश्यकताएं हैं, जो गुणारोपण को प्रभावित करती हैं। उदाहरण कोई भी व्यक्ति किसी कार्य के संपादन के लिए पूर्ण स्वतंत्र है। अर्थात उसे यह स्वतंत्रता होती है कि वह कार्य को करने अथवा ना करने के दो विकल्पों में से किसी एक का चुनाव कर ले। ऐसी स्वतंत्रता की अनुभूति करना एक मनोवैज्ञानिक आवश्यकता है (स्टाइनर, 1970)। स्वयं को परिवेश का नियंत्रक समझना भी एक मनोवैज्ञानिक आवश्यकता है (वर्टमैन, 1976)। ये आवश्यकताएं हमारे गुणारोपण को प्रभावित करती हैं। किसी व्यक्ति की क्रियाओं को प्रेक्षण करने के पश्चात जब हम क्रियाओं के आधार पर कर्ता का मूल्यांकन व गुणारोपण करते हैं तो गुणारोपण इस बात से प्रभावित हो जाता है कि व्यक्ति की क्रियाएं हमारे लिए कितनी उपयोगी हैं तथा उनसे हमारी आवश्यकताओं की कितनी पूर्ति होती है।

व्यक्तिगत प्रवृतियां

कुछ व्यक्तियों को अनावश्यक रूप से हर सफलता अथवा असफलता भाग्य के कारण होती प्रतीत होती है। कुछ व्यक्ति अधिक अथवा कम योग्यता को ही गुणारोपण करते हैं। गुणारोपण इस प्रकार की व्यक्तिगत प्रवृत्तियों को उत्पन्न करने वाले अनेक संभावित कारक होते हैं। जिनमें उपलब्धि की आवश्यकता तथा यौन दो महत्वपूर्ण कारक है।

परिणामों की गंभीरता

किसी घटना के प्रभाव का अधिक गंभीर होने की दशा में प्रेक्षक उस घटना का कारण किसी व्यक्ति पर आरोपित करते हैं। जबकि परिणामों के गंभीर ना होने की दशा में उसका कारण संयोग तथा परिस्थिति पर निर्धारित करते हैं। उदाहरण यदि बच्चों के स्कूल के सामने एक ट्रक गुजरता है और तभी उस ट्रक के नीचे एक बच्चा आ गया। बच्चा सड़क के बीचो बीच था तथा अगले दोनों तथा पिछले दोनों पहियों के बीच में आने के कारण ट्रक से बच्चे को कोई क्षति नहीं हुई। केवल मामूली सी चोट जमीन पर गिरने से आयी। वहीं एक दूसरी स्थिति में मान लीजिए कि बच्चा ट्रक से कुचल कर मर गया। तो उपरोक्त दोनों परिस्थितियों में घटनाओं को देखने वाले प्रेक्षक क्या समझेंगे? ज्यादातर संभावना यह है कि पहली स्थिति में प्रेक्षक घटना का कारण ट्रक के ड्राइवर की लापरवाही को कम समझेंगे। जबकि दूसरी स्थिति में पूरा उत्तरदायित्व ट्रक ड्राइवर का ही समझा जाएगा। जबकि देखा जाए तो दोनों ही स्थितियों में ड्राइवर ने ना तो ट्रक की गति ही कम की है और ना ही कोई भी प्रयास बच्चे को बचाने का किया। अतः चोट की मात्रा चाहे जितनी भी हो ड्राइवर का दोष दोनों ही स्थितियों में समान समझा जाना चाहिए। परंतु दैनिक

जीवन में ऐसा नहीं होता है। हम उत्तरदायित्व का गुणारोपण परिणामों की गंभीरता के आधार पर करते हैं।

कर्ता की उपस्थिति का भ्रम

हम प्रायः इस भ्रम में रहते हैं कि किसी भी घटना का घटित होना अथवा घटित ना होना दोनों ही किसी न किसी व्यक्ति के प्रयास से ही होता है। जबकि वास्तविकता यह होती है कि उनमें से अधिकांश घटनाएं किसी व्यक्ति के नियंत्रण में नहीं होती, उनका घटित होना अथवा ना होना मात्र संयोग अथवा अनिवार्य कारकों पर निर्भर करता है। उदाहरण लाटरी का टिकट खरीदने वाले अनेक लोगों में भ्रम हो रहा है कि यदि हम अपने लकी नंबर का टिकट खरीद ले तो परिणामों को नियंत्रित करने का प्रयास किया जा सकता है। अनेक व्यक्ति विभिन्न अच्छी अथवा बुरी घटनाओं का कारण स्वयं को अथवा किसी अन्य व्यक्ति को मानकर उसकी प्रशंसा अथवा निंदा करते रहते हैं। जबकि घटनाएं मात्र संयोग से घटित हुई रहती है। संयोगवश हुई दुर्घटना का कारण किसी व्यक्ति को समझने में रोष उत्पन्न होता है। जबकि यह समझना की दुर्घटना को कोई रोक नहीं सकता था, निराशा एवं दुख प्रदान करता है।

2.4.3. सारांश

सामाजिक व्यवहारों को समझने में गुणारोपण प्रक्रम का अध्ययन अत्यन्त महत्वपूर्ण है। किसी व्यक्ति के व्यवहारों की दिशा दूसरे व्यक्तियों द्वारा किये जाने वाले व्यवहारों के कारणों के संज्ञान पर निर्भर करती है। गुणारोपण जहां एक तरफ हमारे व्यवहारों को निर्धारित करता है वहीं दूसरी तरफ हमारे सांवेगिक अनुभव तथा अभिप्रेरणाएं भी गुणारोपण से प्रभावित होती हैं। किसी भी व्यक्ति की यह स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है कि वह दूसरे व्यक्ति की व्यवहारओं का प्रेक्षण करने के पश्चात उन व्यवहारओं को उत्पन्न करने वाले कारणों को जानने का प्रयास करता है। इसी क्रम में वह व्यक्ति दूसरे व्यक्ति में कुछ योग्यताओं, उद्देश्यों, मूल्यों, शीलगुणों, आदि का प्रत्यक्षीकरण कर लेता है। इसी को गुणारोपण कहा जाता है। इस प्रक्रिया में प्रेक्षक व्यक्ति यह निर्धारित करता है कि उस व्यक्ति के व्यवहार का कारण व्यक्ति में निहित है अथवा परिवेश में।

2.4.4. अपनी प्रगति की जांच

बहु विकल्पीय प्रश्न

1. दुसरे लोगों के व्यवहारों के कारणों को समझाना और उनके संबंध में निर्णय देना कहलाता है ?

   अ)सामाजिक संज्ञान ब) सामाजिक अभिप्रेरणा

   स) शिलागुण द) गुणारोपण

2. निम्नलिखित विशेषता किस संप्रत्यय को दर्शाता है यह एक संज्ञानात्मक प्रक्रिया है इसका संबंध किसी व्यवहार के कारण की खोज करना है इसका संबंध संकेतिक निर्णय से होता है।

   अ) प्रत्यक्षण ब) अभिवृत्ति स) गुणारोपण द) सामाजिक संज्ञान

3. निम्नलिखित में से गुणारोपण के आतंरिक कारक इंगित करे

अ) दुसरे व्यक्ति का शिलगुण ब) दुःख या वेदना स) विशिष्ट परिवेश द) प्रसंग

4. गुणारोपण किस प्रकार की प्रक्रिया है?

अ) शोधों की विधि ब) ज्ञान की विधि

स) व्यवहारों और कारकों की पहचानने की विधि द) सम्प्रेषण की विधि

5. गुणारोपण यह एक .... अवस्था होती है ?

अ) समकालीन अवस्था ब) जटिल अवस्था

स) सरल अवस्था द) दीर्घकालीन अवस्था

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. गुणारोपण की विशेषता स्पष्ट करे?
2. गुणारोपण प्रक्रिया की त्रुटीयां बताएं ?
3. गुणारोपण प्रक्रिया के नियम बताएं?
4. गुणरोपण प्रक्रिया के कोही भी एक सिद्धांत को स्पष्ट करे..
    1. हिडर का सहज गुणारोपण सिद्धान्त
    2. जोन्स एवं डैविस का सह-संबंधी अनुमान सिद्धांत
5. गुणरोपण किसे कहते है ?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. गुणारोपण की परिभाषा को देते हुए इसके स्वरूप की चर्चा कीजिए।
2. गुणारोपण की क्या विशेषताएँ होती हैं?
3. गुणारोपण के कारकों को स्पष्ट कीजिए।
4. गुणारोपण के सिद्धान्तों की समीक्षा कीजिए।
5. गुणारोपण को निर्धारित करने वाले कारक कौन से हैं?

2.4.5. शब्दावली

गुणारोपण Attribution

आंतरिक कारक Internal factor

कारणात्मक गुणारोपण Causal Attribution

सहसंवादी अनुमिति Corresponding Inference

संज्ञानात्मक Cognitive

प्रत्यक्षीकरण Perception

प्रेक्षक Observer

आंतरिक Internal

बाह्य External

प्रक्रम Process

संकेत Cue

संकृत्य task

2.4.6. संदर्भ ग्रंथ सूची

- त्रिपाठी, ला. ब. तथा अन्य (1998). आधुनिक सामाजिक मनोविज्ञान, आगरा, हर प्रसाद भार्गव।
- सुलेमान, मु. (2009). उच्चतर समाज मनोविज्ञान, दिल्ली, मोतीलाल बनारसीदास।
- Baron, R. A. & Misra, G. (2014). Psychology: Indian Subcontinent Edition. Pearson Education

खंड-3 मनोवृत्ति
इकाई-1 मनोवृत्ति: परिभाषा, अवधारणा एवं विशेषतायें

इकाई की रूपरेखा

3.1.0. उद्देश्य
3.1.1. प्रस्तावना
3.1.2. परिभाषा:
3.1.3. मनोवृत्तिके घटक
3.1.4. मनोवृत्तिकी विशेषतायें:
3.1.5. अभ्यास
3.1.6. संदर्भ ग्रंथ सूची

3.1.0. उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

1. मनोवृत्ति को परिभाषित कर पायेंगे
2. मनोवृत्ति की अवधारणाओं से परिचित हो जायेंगे
3. मनोवृत्ति की विशेषताओं को जान पायेंगे
4. मनोवृत्ति, मूल्य एवं विश्वास में अन्तर कर पायेंगे
5. मनोवृत्ति –निर्माण के सम्प्रत्यय तथा प्रक्रिया को जान पायेंगे।

3.1.1. प्रस्तावना

प्रतिदिन हम लोग पसंद और नापसंद की बात करते हैं। जैसे, मैं "शराबियों से घृणा करता हूँ," "मैं परिश्रमी व्यक्तियों को बहुत पसंद करता/करती हूँ" आदि। यह कथन प्रदर्शित करते हैं कि हम अपने वातावरण के प्रति एक मूल्यांकन ढंग में प्रतिक्रिया करते हैं। हम वस्तुओं, व्यक्तियों, स्थानों, इत्यादि के बारे में सतत निर्णय करते रहते हैं कि ये पसंद है, ये पसंद नही है। ये अच्छा है अथवा बुरा है। ये सब कथन मनोवृत्ति को इंगित करते हैं।

इस इकाई में हम मनोवृत्तिके संप्रत्यय, अवधारणा एवं इसकी विशेषताओं को पढ़ेंगे। जब आप इस ईकाई को पढ़ चुकेंगे तब आप मनोवृत्तिके अध्ययन की प्रासंगिकता तथा इसका कैसे निर्माण होता है, इससे परिचित हो जायेंगे।

3.1.2. परिभाषा

मनोवृत्तिएक महत्वपूर्ण सम्प्रत्यय है जिसका अध्ययन मनोविज्ञान में वर्षों से हो रहा है। मनोवृत्ति व्यावहारिक रूप से मनोविज्ञान के प्रत्येक क्षेत्र से जुड़ा हुआ है जैसे, पूर्वाग्रह एवं भेदभाव, अनुपालन, अनुरूपता, अन्तर्वैयक्तिक आकर्षण इत्यादि /मनोवृत्तिको प्रारम्भ में एक विमा के आधार पर परिभाषित किया गया था।प्रारंभ में, मूल्यांकन पक्ष के आधार पर मनोवृत्ति को इस प्रकार परिभाषित किया किया (Gergen,1974)- "विशिष्ट वस्तुओं के प्रति विशेष रूपों में व्यवहार करने की प्रवृत्ति को मनोवृत्तिकहते हैं।"

इस प्रकार दूसरे विद्वानों जैसे कि फिशवीन और आजिन(1975) ने "किसी वस्तु के प्रति संगत रूप से अनुकूल या प्रतिकूल अनुक्रिया करने की अर्जित पूर्ववृत्ति को मनोवृत्तिकहा है।" मनोवृत्ति'वस्तु' शब्द के अंतर्गत व्यक्ति, घटना, मुद्दों आदि को शामिल किया जा सकता है। जब हम पसंद ना पसंद इत्यादि शब्दों का उपयोग करते हैं तब हम मनोवृत्तिका वर्णन कर रहे होते हैं। इस दृष्टि कोण के अनुसार, मनोवृत्ति किसी व्यक्ति, समूह, क्रिया, वस्तु या घटना का मूल्यांकन है।

समाज मनोवैज्ञानिकों का एक समूह ऐसा भी है जिसने मनोवृत्तिको भाव पक्ष (affect-aspect) के आधार पर परिभाषित किया है जैसे- एडवार्डस (1957) के अनुसार''किसी मनोवैज्ञानिक वस्तु से सम्बद्ध सकारात्मक या नकारात्मक भाव की मात्रा को मनोवृत्ति कहा जाता है।"

थर्स्टन (1946) ने भी मूल्यांकन के आयाम पर मनोवृत्तिको परिभाषित किया है। थर्स्टन के अनुसार, "किसी मनोवैज्ञानिक वस्तु के पक्ष या विपक्ष में धनात्मक या ऋणात्मक भाव की तीव्रता को मनोवृत्तिकहते हैं।" बाद के मनोवैज्ञानिको ने मूल्यांकन आयाम को मनोवृत्ति के तीन घटकों में शामिल किया है जिसे भावात्मक सं घटक कहते हैं। मनोवृत्तिको दो संघटकों के आधार पर भी परिभाषित किया गया है। वे दो आयाम है भावात्मक संघटक तथा संज्ञानात्मक संघटक भावात्मक संघटक से तात्यर्य किसी वस्तु, प्राणी या घटना इत्यादि के प्रति सुखद या दुखद भाव की तीव्रता से है जबकि, संज्ञानात्मक संघटक से तात्पर्य किसी वस्तु, प्राणी या घटना इत्यादि के प्रति विश्वास से है।

आधुनिक मनोवैज्ञानिकों ने मनोवृत्तिको तीन आयामों के आधार पर परिभाषित किया है। इन तीन आयामों में पूर्व के दोनों आयाम अर्थात भावात्मक संघटक तथा संज्ञानात्क संघटक को तो शामिल किया ही गया है साथ ही एक अन्य तीसरा आयाम भी जोड़ा गया है जिसका नाम है:

व्यवहारात्मक संघटक। व्यवहारात्मक संघटक से तात्पर्य किसी वस्तु, प्राणी या घटना इत्यादि के प्रति क्रिया या व्यवहार करने की तत्परता से है। सियर्स और उनके साथियों (Scarsetal, 1991)ने मनोवृत्तिके उपरोक्त तीनों आयामों को ध्यान में रखकर परिभाषित किया है। इनके अनुसार, "मनोवृत्तिवह स्थायी प्रतिक्रिया की प्रवृत्ति है, जिसमें संज्ञानात्मक, भावात्मक तथा व्यवहारात्मक संघटक शामिल होते हैं।"

3.1.3. मनोवृत्ति के घटक

जैसा कि उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि मनोवृत्तिमें तीन घटक शामिल होते हैं : भावात्मक संघटक, संज्ञानात्क संघटक एवं व्यवहारात्मक संघटक। इन तीनों घटकों को इनके अंग्रेजी अनुवाद के प्रथम अक्षर के, आधार पर ABC प्रतिरूप कहा जाता है। जहां,A अर्थात Affect (भाव), Bअर्थात Behavior (व्यवहार) तथा C अर्थात Cognition (संज्ञान) है।

उदाहरण के लिये,सुबह टहलने के प्रति मेरी मनोवृत्ति:चूंकि मेरा **विश्वास** है कि टहलना स्वास्थ्य के लिये लाभप्रद है, इसलिये में इसे **पसंद** करता हूँ इसीलिये में प्रात: काल टहलनेका इरादा रखता हूं **और टहलने जाता हूँ।**

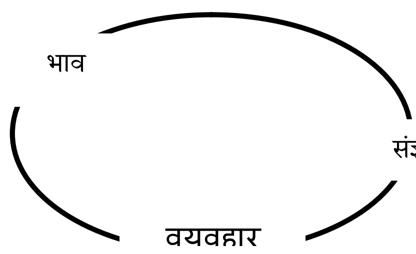

(मायर्स, 2005, P. 154 का हिंदी अनुवाद)

आइये अब मनोवृत्तिके घटकों कीविस्तार से चर्चा करते हैं। जैसा कि पहले भी उल्लेख किया गया है कि मनोवृत्तिमें तीन **घटकों को शामिल माना जाता है। ये तीनों घटक है:** भावात्मक संघटक, संज्ञानात्मक संघटक तथा व्यवहारात्मक संघटक।

- **भावात्मक संघटक:** भावात्मक घटक से तात्पर्य किसी मनोवृत्तिवस्तु के प्रति व्यक्ति के भाव से है अर्थात सुखद-दुखद भाव अथवा पसंद ना पसंद। मनोवृत्तिकी तीव्रता का संबंध भावात्मक घटक से है। जैसे- डर, सहानुभूति, घृणा, पसंद आदि/उदाहरण के लिये, आप अपने अधिकारी या शिक्षक के प्रति सकारात्मक या नकारात्मक भाव रख सकते हैं। आप किसी कविता को पसंद या ना पसंद कर सकते हैं। स्वाभाविक है कि ये भावनायें अपनी तीव्रता में भिन्न हो सकती हैं। जैसे कि मै समाज शास्त्र को बहुत पसंद करता हूँ।मैं संगीत को बहुत पसंद करता हूँ। मैं अमुक राजनैतिक पार्टी को बहुत ना पसंद करता हूँ। ये भावनायें हमारे पुराने अनुभवों से बनती है और भविष्य में हमारे द्वारा होने वाले व्यवहारों को प्रयवित तथा निर्देशित करती हैं। जैसे यदि आप समाजशास्त्र को पसंद करते हैं तो आप समाजशास्त्र के प्रोफेसर के व्याख्यान को सुनने जायेंगे या समाजशास्त्र की पुस्तकों को एकत्र करेंगे और उनका अध्ययन करेंगे। इसी प्रकार जिस राजनैतिक पार्टी या नेता को आप ना पसंद करते हैं उसे आने वाले चुनाव में वोट नहीं करेंगे।

मनोवृत्तिपर अध्ययन करने वाले अधिकतर शोध इसी घटक पर अधिक बल देते हैं। कम्पनियां अपने विज्ञापनों में संवेगात्मक अपील को जोड़ती हैं इसी तरह किस उत्पाद से आपको दूर करना होगा अथवा

जिसका उपयोग आपके लिये हानिकारक होता है, उनको आप उपयोग न करें, इसके लिये ही शराब, और धूम्रपान जैसे उत्पादों के ऊपर "शराब स्वास्थ्य के लिये हानिकारक है" "धूम्रपान से कैंसर होता है" इत्यादि लिखा जाता है। उपरोक्त उदाहरणों में भावात्मक घटक पर बल दिया गया है। शोधों के परिणामों से स्पष्ट है कि भाव मनोवृत्ति के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

- **संज्ञानात्मक घटक:**मनोवृत्तिमें भावना से भी ज्यादा कुछ शामिल होता है। जो है ज्ञान अथवामनोवृत्ति– वस्तु के प्रति/बारे में हमारा विश्वास । उदाहरण के लिये, आपका विश्वास है कि समाजशास्त्र की पढ़ाई करने के बाद आप व्यक्ति और समाज को ठीक से समझ पाओगे, सामाजिक संरचना को जान पाओगे तो आप समाजशास्त्र के अध्ययन में अधिक रूचि लेंगे। समाजशास्त्र के बारे में आपकी मनोवृत्तिका यही संज्ञानात्मक घटक है। संज्ञानात्मक घटक इस ओर संकेत करता हैकि मनोवृत्ति– वस्तु के प्रति हमारी धारणा अथवा विश्वास क्या है? संज्ञान का मतलब 'जानना', पहचान करना' होता है। इससे स्पष्ट होता है कि मनोवृत्तिका संज्ञानात्मक घटक एक भण्डारण घटक जैसा है। जहाँ पर मनोवृत्तिवस्तु के बारे में सूचनाओं को संगठित अथवा भण्डारित करते हैं। इसमें हमारे विचार, विश्वास, मत इत्यादि सग्रहित होते हैं। फिशबोब और एजेन (1975) के अनुसार संभाव्यता के बारे में विश्वास एक संज्ञान हैं जो एक वस्तु और/या घटना में दिये हुये गुण के साथ साहचर्यित होता है।

- **वयवहारात्मक घटक:** इस घटक को क्रिया घटक भी कहते हैं। मनोवृत्तिका एक अन्य महत्वपूर्ण घटक है। व्यक्ति की स्पष्ट तथा दिखाई देने वालीक्रियाओं को सामान्यत: व्यवहार के रूप में परिभाषित किया जाता है। व्यवहारत्मक घटक से तात्पर्य मनोवृत्तिके उस घटक से है जिसमें व्यक्ति की मनोवृत्ति-वस्तु के प्रति क्रिया या व्यवहार घटित होता है।

- **मनोवृन्ति, मूल्य एवं विश्वास**

मनोवृत्तिके स्वरूप को ठीक से स्पष्ट करने के लिये इससे संबंधित या मिलते-जुलते कुछ प्रमुख संप्रत्ययों को समझ लेना आवश्यक है। ये मुख्य सम्प्रत्यय इस प्रकार हैं।

मूल्य: मूल्य या ज्ञान का तात्पर्य लक्ष्य से होता है जिसे एक समाजविशेष का सदस्य प्राप्त करना चाहता है। इसमें सकारात्मक अथवा नकारात्मक भाव सम्मिलित होता है। वर्के का तथा कूपर(1979) ने मूल्य को इस प्रकार परिभाषित किया है–"मूल्य से तात्पर्य वस्तु या विचार से संबंधित सकारात्मक या नकारात्मक भाव से है।"मनोवृत्तिऔर मूल्य दोनों में यह समानता है कि दोनो सीखे हुये होते हैं अर्थात यह जन्मजात न होकर, अर्जित होते हैं। फिर भी दोनों में भिन्नतायें भी होती हैं। मूल्य में भावात्मक पक्षअभिवृत्ति की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली होता है, /मूल्य में अभिवृत्ति की अपेक्षा परिवर्तन कठिन होता है क्योंकि यह लगभग स्थिर होते हैं। मनोवृत्तिको सकारात्मक अथवा नकारात्मक में बांटा जा सकता है लेकिन /मूल्य कई प्रकार के होते है जैसे- सामाजिक मूल्य, आर्थिक मूल्य, धार्मिक मूल्य इत्यादि।

- **मनोवृत्तिएवं विश्वास:** मनोवृत्तिका विश्वास से भी गहरा संबंध है किन्तु दोनों ही सम्प्रत्यय अलग-अलग हैं। विश्वास किसी मनोवृत्तिवस्तु की सम्भावना के बारे में संज्ञान है। कुछ सिद्धांतकार, विशेषकर आधुनिक मनोवैज्ञानिक विश्वास को मनोवृत्तिका एक घटक मानते हैं। फिर भी, मनोवृत्ति और विश्वास में

भिन्नता है। मनोवृत्ति को विश्वासों के योगफल के रूप में माना जा सकता है। किसी घटना के प्रति व्यक्ति कई तरह के विश्वास रख सकता है, उस व्यक्ति की उस घटना के प्रति मनोवृत्तिउसके इन विश्वासों के मूल्यांकन के आधार पर हो सकती है। क्रेक एवं क्रचाफिल्ड (1948) के अनुसार, "व्यक्ति द्वारा संसार के किसी पक्ष के बारे में प्रत्यक्ष एवं संज्ञान के स्थायी संगठन को विश्वास कहा जाता है।"

मनोवृत्तितथा विश्वास में समानता है फिर भी, ये एक दूसरे से भिन्न हैं। मनोवृत्तिमें तीन घटक अर्थात संज्ञानात्मक, भावात्मक तथा व्यवहारात्मक घटक होते हैं जबकि विश्वास में ये तीनों घटक नहीं होते। इसमें केवल संज्ञानात्मक घटक ही प्रमुख होता है जबकि भावात्मक घटक नही होता है तथा व्यवहारात्मक घटक गौण होता है। मनोवृत्तिमें परिवर्तन तेजी से होता है जबकि विश्वास में परिवर्तन तेजी से नहीं होता है।

- **मनोवृत्तितथा मत:** मनोवृत्तिका संबंध मत से भी होता है। कई लोग इनको एक दूसरे के स्थान पर प्रयोग करते हैं जबकि ऐसा करना सही नहीं है। हालांकि मनोवृत्तिमें मत सम्मिलित होता है।इसलिये इन दोनों सम्प्रत्ययों में संबंध भी गहरा है। चेपलिन (1975) के अनुसार "मत एक विश्वास है, विशेषकर ऐसा विश्वास जो अस्थाई होता है और जिसमें परिमार्जन की संभावना बनी रहती है।"

मत में भी संज्ञानात्मक तत्व निहित होता है। चूकिं मनोवृत्ति में भी संज्ञानात्मक घटक होता है इसलिये इन दोनों में समानता है फिर भी दोनों एक –दूसरे से भिन्न हैं। कई भिन्नतओं में से जो एक मुख्य अन्तर है वहहै, भावात्मक घटक। मनोवृत्तिमें संज्ञानात्मक घटक के अलावा भावात्मक घटक भी होता है लेकिन मत में भावात्मक घटक नहीं होता।

3.1.4. मनोवृत्तिकी विशेषतायें

मनोवृत्तिके विभिन्न दृष्टिकोणों और उनकी विभिन्न परिभाषाओं तथा इसकी त्रिघटकीय संरचना से मनोवृत्तिकी कई विशेषताये स्पष्ट होती है। जिनका विवरण निम्न लिखित है।

(1) **मनोवृत्तिअर्जित की जाती है:**मनोवृत्तिव्यक्ति अपने जीवन काल में विकसित करता है। यह जन्मजात नहीं होती है। इन्हें व्यक्ति अपने जीवन के अनुभवों से निर्मित करता है। शिक्षण –प्रशिक्षण इत्यादि कई प्रकार के माध्यमों से व्यक्ति की मनोवृत्तियों का विकास होता है। उदाहरण के लिये, कोई व्यक्ति यदि भारतीय जनता पार्टी को पसंद करता है तो यहां मनोवृत्तिउसमें जन्म जात नहीं होगी बल्कि उसमें यह अपने परिवार, समाज और उस पार्टी विशेष की विचारधारा तथा उसके नेताओं के बारे में जानकर विकसित होगी।

(2) **मनोवृत्तिकिसी मनोवृत्ति–वस्तु के प्रति अनुक्रिया करने की एक तत्परता है** मनोवृत्ति अनुक्रिया करने की एक तत्परता है न कि प्रतिक्रिया। यह अनुकूल अथवा प्रतिकूल कुछ भी हो सकती है।

(3) **मनोवृत्तिअपेक्षाकृत स्थायी होती है**: मनोवृत्तिकी एक मुख्य विशेषता यह भी है कि एक बार इनका निर्माण होने के बाद तुरंत परिवर्तित नहीं होती। इनमें परिवर्तन होता है लेकिन, इस परिवर्तन में समय लगता है। अर्थात ये अपेक्षाकृत स्थायी होती हैं। ये कुछ परिस्थितियों में अस्थायी होती हैं तथा अधिकांश परिस्थितियों में स्थायी होती है।

(4) **मनोवृत्तिएक अमूर्त अवस्था है:** इसे दूसरे व्यक्ति द्वारा मूर्त रूप में देखा नहीं जा सकता। यह एक मानसिक स्थिति है जिसके बारे में किसी के व्यवहारों के आधार पर जाना जा सकता है।

(5) **मनोवृत्तिएक जटिल सम्प्रत्यय है:** इसकी एक विशेषता इसकी जटिलता है। जैसा पहले भी बताया गया है कि यह तीन घटकों से मिलकर बनी होती है अथवा इसमें तीन घटक शामिल होते हैं। भावात्मक, व्यवहारात्मक, संज्ञानात्मक, इन घटकों की जटिलता के कारणमनोवृत्तिभी जटिल होती है।

(6) **मनोवृत्तिमें एक विशिष्ट दिशा होती है:** मनोवृत्तिसकारात्मक या नकारात्मक अथवा अनुकूल या प्रतिकूल हो सकती है। ऐसा नहीं है कि किसी मनोवृत्ति -वस्तु के प्रति किसी की मनोवृत्तिअनुकूल है और प्रतिकूल भी।

(7) **मनोवृत्तिमें तीव्रता का गुण होता है:** मनोवृत्तिअनुकूल हो या प्रतिकूल हो इसमें तीव्रता का गुण होता है। इसका अर्थ है कि मनोवृत्तिकिसी सीमा तक अनुकूल अथवा प्रतिकूल है। अर्थात किसी वस्तु के प्रति अधिक अनुकूल या कम अनुकूल मनोवृत्ति अथवा अधिक प्रतिकूल या कम प्रतिकूल।

(8) **मनोवृत्तिअभिप्रेरित करती है।** मनोवृत्तिमें अभिप्रेरणा का गुण होता है अर्थात यह व्यक्ति को मनोवृत्ति -वस्तु के प्रति जैसी उसकी मनोवृत्तिवैसा व्यवहार करने के लिये प्रेरित करती है। जैसे किसी व्यक्ति में संगीत के प्रति अनुकूल मनोवृत्तिहै तो वह व्यक्ति संगीत से जुड़ी चर्चाओं में भाग लेगा, संगीतकारों से संपर्क करने की कोशिश करेगा, संगीत सुनेगा इत्यादि।

(9) **मनोवृत्तिव्यवहार को प्रभावित करती है: यद्यपि वे हमेशा हमारे प्रकट व्यवहार से परावर्तित नहीं होती, फिर भी हमारे मनोवृत्तिनिर्माण एवं विकास: व्यवहारों को प्रभावित करती हैं।**

मनोवृत्तिअपेक्षाकृत स्थायी होती है। यह एक अर्जित या सीखी जाने वाली प्रवृत्ति है। सीखने या अधिगम के नियम इसकी व्याख्या करते हैं। इसमें कई तरह के कारकों का प्रभाव होता है। बच्चा जैसे-जैसे अपनी विकास की अवस्थाओं में आगे बढ़ता जाता है, उसकी विभिन्न प्रकार की मनोवृत्तियों का निर्माण और परिवर्तन होता जाता है। यहां उन विभिन्न प्रक्रियाओं का वर्णन किया जा रहा है जिनके माध्यम से हम सीखते हैं।

(1) **प्राचीन अनुबंधन:** यह मनोविज्ञान का एकमूल नियम है। यह नियम या सिद्धांत रूसी शरीर शास्त्री इवान पी० पैवलव के प्रयोगों के फलस्वरूप आया। यह नियम साहचर्य पर आधारित है। इस नियम के अनुसार जब स्वाभाविक उद्दीपक को किसी अनुक्रिया उत्तपन्न करने वाले उद्दीपक के साथ बार –बार उपस्थित किया जाता है तो वह स्वाभाविक उद्दीपक अनानुबंधित उद्दीपक अथवा अनुक्रिया उत्पन्न करने वाले उद्दीपक का स्थान ले लेता है। अर्थात स्वाभाविक उद्दीपक अनानुबंधित उद्दीपक की तरह प्राणी में अनुक्रिया उत्पन्न करने लगता है। इस सिद्धांत या नियम से प्राणी मुख्य रूप से अनैच्छिक अर्थात वैसी अनुक्रियायें सीखता है जो उसके नियंत्रण में नहीं होती हैं। जैसे –लार साव, डरना, पसंद करना आदि। हम लोग दिन –प्रतिदिन कई तरह की मनोवृत्तियों को इस नियम के आधार पर सीख लेते हैं। विज्ञापन कर्ता इस नियम का उपयोग अपने उत्पादों के प्रति लोगों की मनोवृत्तिसकारात्मक बनाने के लिये बड़ी कुशलता से करते हैं। इसमें उनकी विद्वत्ता या कुशलता यह है कि वे अपने उत्पाद के विक्रय के लिये लक्षित जनसंख्या को चुनते हैं और ये भी देखते हैं कि ये लक्षित जनसंख्या किस अभिनेता, खिलाड़ी या व्यक्ति विशेष को पसंद करती है। यहाँ वह अभिनेता,

खिलाड़ी या व्यक्ति –विशेष अनानुबंधित उद्दीपक की तरह होता है और उत्पाद स्वाभाविक उद्दीपक की तरह इसमें होता यह कि जो स्वाभाविक अनुक्रिया अपने पसंदीदा व्यक्ति के प्रति होती हैं वही उस उत्पाद के प्रति भी हो जाती है। यह ऐसा तब होता है जब बार-बार इनको एक साथ उपस्थित किया जाता है। उदाहारण के लिए शराब की विक्री बढ़ाने के लिये कंपनी अपने उत्पाद पर किसी सुन्दर लड़की या महिला की फोटो लगाती हैं। प्राचीन अनुबंधन दो पथों द्वारा मनोवृत्तिको प्रभावित कर सकता है: प्रत्यक्ष् पथ और अप्रत्यक्ष पथ (स्वेल्डेन्ट्स, वान ओसीलेयर, तथा जानीजेप्सकी, 2010)

(2) **नैमितिक/क्रियाप्रसूत अनुबंधन:** नैमित्तिक या साधनात्मक अनुबंधन, अधिगम का एक अन्य महत्वपूर्ण नियम है। इस नियम के अनुसार प्राणी कई तरह की अनुक्रियायें करता है लेकिन जिस अनुक्रिया के बाद उसे सुखद परिणाम मिलता है उसे वह बार-बार करता है। अथवा उसे करना चाहता है, ताकि अच्छा और सुखद परिणाम मिल सके। लेकिन, जब किसी अनुक्रिया के करने पर परिणाम सुखद नहीं मिलता अर्थात परिणाम में उसे दण्ड या कोई कष्टकर उद्दीपक मिलता है तो उस,अनुक्रिया को वह दोहराना नहीं चाहता अर्थात उस अनुक्रिया से व्यक्ति बचना चाहता हैं। दूसरे शब्दों में, इस नियम के अनुसार प्राणी परिणाम के आधार पर अनुक्रिया करना सीखता हैं। परिणाम सुखद तो अनुक्रिया दोहरायी जायेगी और यदि परिणाम दुखद तो अनुक्रिया दोहरायी नहीं जायेगी। दिन प्रतिदिन के जीवन में हम ऐसे अनेकों उदाहरण देखते हैं जो स्वयं अपने साथ भी घटित होते हैं जिनमें प्राणी उसी अनुक्रिया को दोहराता है जिसका उसे सुखद परिणाम मिलता है। उदाहरण के लिये कर्मचारी इसलिये अपने काम पर जाता हैं क्यों कि उसे वेतन मिलता है। छोटे –छोटे बच्चे जो स्कूल नहीं जाना चाहते, उनके माँ-बाप उनको बाजारघूमने को लालच या मनपसंद वस्तु देते हैं ताकि वह स्कूल जाये ठीक इसी प्रकार हमें दु:खद परिणाम अनुक्रिया को करने से रोकता है जैसे, यदि कोई अपराध करता है तो उसे दण्ड दिया जाता है ताकि वह उस अपराध को न करे। मनोवृत्तिके निर्माण एवं विकास में इस नियम की बड़ी भूमिका है। बच्चे जब कोई ऐसी मनोवृत्तिदिखलाते हैं जिसे उनके आस पास वाले लोग (दोस्त, परिवार, शिक्षक) पसंद करते हैं, तो उनकी उस मनोवृत्तिकी प्रशंसा की जाती है या किसी अन्य प्रकार से उन्हें पुरस्कृत किया जाता है तो उनकी वह विशेष प्रकार की मनोवृत्तिविकसित हो जाती है।

(3) **निरीक्षणात्मक अधिगम:**यह नियम या सिद्धांत अल्बर्ट बैण्डूरा ने दिया। यह नियम कहता है कि व्यक्ति दूसरों की अनुक्रियाओं और उन अनुक्रियाओं पर दूसरों को मिलने वाले परिणाम के आधार पर सीखता है। जैसा कि पिछले अनुच्छेद में उदाहारणस्वरूप बताया गया है कि अपराध करने पर अपराधी को दण्ड दिया जाता है। इस प्रकार की व्यवस्था के दो उद्देश्यी हो सकते हैं- पहला ये कि वो व्यक्ति इस तरह का व्यवहार या अनुक्रिया फिर से न करे जो कि क्रियाप्रसूत अनुबंधन पर आधारित है जबकि दूसरा उद्देश्य –अपराधी व्यवहार पर दिया जाने वाला दण्ड दूसरे लोगों को यह सीखने में मदद करेगा कि इस तरह का व्यवहार नहीं करना है क्यों कि इस प्रकार के व्यवहार का परिणाम बुरा होता है। बच्चे अपने इर्द-गिर्द में उपस्थित लोगों अर्थात भाई-बहन, मित्र, माता-पिता, शिक्षक इत्यादि की जिस प्रकार की मनोवृत्तिदेखते हैं वैसी ही मनोवृत्तिवे स्वयं में विकसित कर लेते हैं।

(4) **सूचना का प्रभाव:** आजकल के दौर में हम सूचनाओं के विभिन्न माध्यमों से घिरे हुये हैं। हमारे चारों ओर से सूचनाओं की बमबारी सी होती रहती है। मनोवृत्तियों में परिवर्तन के लिये आवश्यक नहीं है कि दूसरे की वास्तविक उपस्थितिहो। दूसरों के द्वारा दिया गया संदेश या सूचना हमारी मनोवृत्तिका निर्माण भी करती है और उनको परिवर्तित भी करती है। रेडियो, टेलिविजन, पुस्तकों, इंटरनेट इत्यादि ऐसे अनेक माध्यम या स्रोत हैं जो हमें सूचनायें देते रहते हैं। कोई व्यक्ति समाचार-पत्र में प्रकाशित किसी विद्वान का लेख पढ़कर, किसी सफल और महान व्यक्ति की जीवनी पढ़कर, किसी नेता का भाषण सुनकर अपनी मनोवृत्तिमें किस तरह से विकास करता है, ये हम प्रतिदिन देखते है। आजकल लोक सभा या विधान सभा के चुनाव में विभिन्न राजनैतिक दल अपने पक्ष में लोगों की मनोवृत्तिकरने के लिए सूचना अभियांत्रिकी का सहारा ले रहे है।

(5) आवश्यकता: जहाँ से हमारी आवश्यकता की पूर्ति होती है, उसके प्रति हमारी मनोवृत्तिअनुकूल हो जाती है। यह व्यक्ति, वस्तु, विचार या घटना कुछ भी हो सकता है। रोजेन बर्ग (1956)के अध्ययनों में इस बात के साक्ष्य देखे जा सकते हैं।

(6) समूह से संबंद्धता: प्रत्येक समूह के अपने मानक, विश्वास, रीति- रिवाज तथा मूल्य होते हैं। जो व्यक्ति समूह का सदस्य होता है उसे इनका पालन करना होता है। ऐसे में उसकी मनोवृत्तिसंबंधित समूह के सदस्यों की तरह बन जाती है। आपने देखा होगा कि धर्म परिवर्तन करने वाले लोगों की मनोवृत्ति बाद में बदलकर विकसित हो जाती है। विवाह के बाद लड़की की मनोवृत्तिअपने अपने ससुराल के सदस्यों जैसे बन जाती है। कोई राजनैतिक दल को छोड़कर जब व्यक्ति दूसरे राजनैतिक दल की सदस्यता ले लेता है तो उसकी मनोवृत्तिदूसरे राजनैतिक दल के अन्यसदस्यों की तरह विकसित हो जाती है। इसमें संदर्भ समूह भी हो सकता है और प्राथमिक समूह भी/मनोवैज्ञानिकों ने इन दो प्रकार के समूहों में अन्तर किया है। प्राथमिक समूह ऐसा समूह होता है जिसके सदस्यों के बीच घनिष्ठता अधिक होती है। ऐसे समूह में सदस्यों की संख्या अधिक नहीं होती है। जैसे-खेल की कोई टीम, परिवार, मित्र इत्यादि। प्राथमिक समूह के सदस्यों की मनोवृत्तिलगभग एक जैसी होती है। बच्चा जिस परिवार में जन्म लेता है, उस परिवार के सदस्यों की मनोवृत्तिकी जैसी मनोवृत्तिउसमें विकसित हो जाती है। एक समूह के सदस्यों की मनोवृत्तिमें एक रूपता होती है। प्राथमिक समूह चूंकि छोटा होता है अर्थात इसमें सदस्यों की संख्या कम होती है इसलिये इसके सदस्यों के मध्य अत: क्रिया भी अधिक और अच्छी होती है। जिस कारण इनकी मनोवृत्तिभी अपने सदस्यों की तरह विकसित होती है और उसमें समरूपता होती है।

दूसरा, संदर्भ समूह है जो मनोवृत्तिके निर्माण और विकास में भूमिका निभाता है। यह एक ऐसा समूह है, जिसका व्यक्ति सदस्य नहीं भी हो सकता या उस समूह विशेष के मूल्य, मानक एवं लक्ष्य को अपना लेता है। ऐसा होने पर उसमें (व्यक्ति में) संदर्भ समूह के सदस्यों की तरह मनोवृत्तिविकसित हो जाती है। संदर्भ समूह मानकों के माध्यम से मनोवृत्तिका निर्माण करते हैं। उदाहरण के लिये, धार्मिक, राजनैतिक, व्यवसाय इत्यादि के प्रति मनोवृत्तिअक्सर इसी प्रकार के समूह के माध्यम से ही विकसित होती है।

(7) संस्कृति: प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी संस्कृति में पलता-बढ़ता है। व्यक्ति का सामाजीकरण उसी संस्कृति विशेष से होता है। संस्कृति अपने मानकर, मूल्य, परंपरायें रखती है। स्वाभाविक है कि जो व्यक्ति जिस संस्कृति में पला-बढा़ हो उस संस्कृति का प्रभाव उसकी मनोवत्ति के विकास को प्रभावित करेगा। व्यक्ति की मनोवृत्तिउसके सांस्कृतिक प्रारूप के अनुसार विकसित होती है। संस्कृति के मानक कैसे हमारी मनोवृत्तिको विकसित करते हैं, यह पूर्व में बताये गये अधिगम के नियमों से संभव होता है। जैसे जब हम किसी को हाथ जोड़कर नमस्ते करते हुये देखते है तो हम भी ऐसा ही करने लगते हैं। क्योंकि इस तरह के व्यवहार को समाज या संस्कृति से मान्यता मिल चुकी होती है। अर्थात इन्हें संस्कृति स्वीकार करती है। मानवशास्त्रीभीड़ (1935)के अध्ययन संस्कृति और मनोवृत्तिपर उल्लेखनीय हैं।

(8) **रूढ़ियाँ:** रूढ़ियॉमनोवृत्तिको विकसित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। रूढ़ियॉ किसी समूह विशेष की विशेषताओं से संबंद्ध व्यक्ति के विचार या मान्यताओं का एक समुच्चय होती है । इसमें व्यक्ति किसी विशेषता को पूरे समूह पर सामान्यीकृत करता है। जैसे नेता भ्रष्टाचारी होते है।

(9) **व्यक्तित्व संबंधी कारक:** ऐसादेखा गया है कि व्यक्ति उन मनोवृत्तियों को जल्दी अपना लेता है जो उसके व्यक्तित्व के अनुकूल होती हैं। जैसे जो लोग ईमानदार होते हैं वे इमानदारी वाली मनोवृत्तिको स्वीकार कर लेते हैं। जो लोग आक्रामक प्रवृत्ति के होते हैं उन्हें आक्रामक लोग और इस तरह के व्यवहार पसंद आते हैं । कालांतर में, उनमें इस तरह की मनोवृत्तिविकासित हो जाती है।

(10) **व्यक्तिगत अनुभव :** मनोवृत्तिके निर्माण में व्यक्तिगत अनुभव की भी बड़ी भूमिका होती है। हमारे इतिहास से इसके अनगिनत उदाहरण दिये जा सकते हैं। जैसे अंगुलीमाल डाकू एक महात्मा के संपर्क में आने के बाद अपने बुरे कामों को छोड़कर एक महात्मा बन गया। सम्राट अशोक कई लोगों की हत्या करने के बाद बौद्ध भिक्षु बन गया और अपने जीवन के अंतिम समय में एक सज्जन और साधारण व्यक्ति रहा/गोस्वामी तुलसीदास जी अपनी पत्नी को बहुत प्रेम करते थे। उनको अपनी पत्नी से इनता लगाव था कि अन्य कार्यों या विचारों के लिये उनके पास समय ही नहीं था, लेकिन पत्नी से वियोग के बाद वे एक प्रसिद्ध कवि बने और कई काव्यग्रंथों की रचना कर दी। यहाँ अपरोक्त उदाहरणों में मनोवृत्तिमें हुआ परिवर्तन उनके व्यक्तिगत अनुभव को दर्शाता है।

सारांश: प्रस्तुत इकाई में मनोवृत्ति के सम्प्रत्यय, उसके घटकों और विशेषताओं पर प्रकाश डाला गया है। मनोवृत्ति को विभिन्न दृष्टिकोणों या आयामों के आधार पर विद्वानों ने परिभाषित किया है। प्रारंभ में इसकी जो परिभाषा दी गयी वो एक विमीय थी। जिसमेंमनोवृत्ति कोमूल्यांकन की विमा के आधार पर परिभाषित किया गया/वाद में अथवा कुछ विद्वानों ने इसकी दूसरी विमा अर्थात भाव के आधार पर भी परिभाषित किया। कालांतर में इसे दो विमाओं या घटकों अर्थात भावात्मक एवं संज्ञानात्मक घटक के आधार पर परिभाषित किया गया। आधुनिक मनोवैज्ञानिकों ने मनोवृत्ति को तीन घटकों या विमाओं के आधार पर परिभाषित किया। ये तीसरी विमा या घटक व्यवहारात्मक पद है। सीयर्स एवं उनके साथियों (1991) ने मनोवृत्ति के इन्हीं तीन विमाओं के आधार पर परिभाषित किया है। जिसके अनुसार, "मनोवृत्ति" वह स्थायी प्रतिक्रिया की प्रवृत्ति है, जिसमें संज्ञानात्मक, भावात्मक तथा व्यवहारात्मक घटक शामिल होतेहैं।'' सामान्य भाव में हम कह सकते हैं कि दूसरों के बारे में सोचने,

अनुभव करने तथा व्यवहार करने का हमारा ढंग ही मनोवृत्ति कहलाता है। मनोवृत्ति के इन तीन घटकों या विमाओं को ए बी सी प्रतिरूप कहा गया। जहाँ 'ए' भावात्मक पक्ष को, बी व्यवहारात्मक पक्ष को तथा सी संज्ञानात्मक पक्ष को संकेत करना है। मनोवृत्ति के भावात्मक घटक से तात्पर्य किसी मनोवृत्ति – वस्तु के प्रति व्यक्ति के भाव से है अर्थात पसंद या ना पसंद से है। विभिन्न प्रकार के विज्ञापन इसी घटक या विमा पर सबसे अधिक बल देते हैं। मनोवृत्ति की दूसरी विमा या घटक संज्ञानात्मक घटक है। यह मनोवृत्ति वस्तु के बारे में व्यक्ति का विश्वास है। यहाँ मनोवृत्ति –वस्तु के प्रति व्यक्ति का ज्ञान या जानकारी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इसमें व्यक्ति के विचार, विश्वास, मत इत्यादि शामिल होते हैं। मनोवृत्ति की तीसरी विमा या घटक व्यवहारात्मक घटक है। इसे मनोवृत्ति का क्रिया-घटक भी कहते हैं। इससे तात्पर्य मनोवृत्ति के उस घटक से है जिसमें व्यक्ति की मनोवृत्ति – वस्तु के प्रति क्रिया या व्यवहार घटित होता है। मनोवृत्ति, मूल्य एवं विश्वास में संबंध एवं अंतर पर प्रकाश डाला गया है। मूल्य से तात्पर्य "वस्तु या विचार से संबंधित सकारात्मक या नकारात्मक भाव से होता है" (वर्केल तथा कूपर) मनोवृत्ति तथा मूल्य में कुछ समानतायें हैं और कुछ भिन्नतायें भी हैं। उदाहरण के लिये दोनों ही अर्जित हैं। लेकिन, मूल्य मनोवृत्ति की अपेक्षा लगभग स्थिर होता है, परिणाम स्वरूप इसमें परिर्वतन बहुत कठिन होता है। मनोवृत्ति की अपेक्षा लगभग स्थिर होता है, परिणाम स्वरूप इसमें परिवर्तन बहुत कठिन होता है। मूल्य मनोवृत्ति का विश्वास से भी गहरा संबंध है। क्रेक एवं क्रचफिल्ड (1948) के अनुसार, विश्वास व्यक्ति के द्वारा संसार के किसी पक्ष के बारे में प्रत्यक्ष एवं संज्ञान के स्थायी संगठन को कहते हैं। यद्यपि मनोवृत्ति एवं विश्वास में समानता है तथापि ये एक दूसरे से भिन्न हैं। मनोवृत्ति तथा मत में भी गहरा संबंध है। मत एक अस्थायी विश्वास है जिसमें परिमार्जन की संभावना बनी रहती है। मनोवृत्ति की विभिन्न विशेषताओं पर प्रकारश डाला गया हैं। जिनमें प्रमुख है: मनोवृत्ति अर्जित होती है, मनोवृत्ति अपेक्षा क्रत स्थायी होती है, यह किसी वस्तु के, व्यक्ति, या विचार के प्रति अनुक्रिया करने की तत्परता है। यह एक अमूर्त अवस्था है, मनोवृत्ति में एक विशिष्ट दिशा होती है, मनोवृत्ति में तीव्रता अथवा मात्रा का गुण होता है, मनोवृत्ति अभिप्रेरित करती है, मनोवृत्ति हमारे व्यवहार को प्रभावित करती है। अंत में मनोवृत्ति के निर्माण एवं विकास पर प्रकाश डाला गया है। मनोवृत्ति के निर्माण एवं विकास में अधिगम के नियमों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। जिनमें प्राचीन अनुबंधन, क्रियाप्रसूत अनुबंधन और निरीक्षणात्मक अधिगम मुख्य हैं। प्राचीन अनुबंधन का सिद्धान्त पैवलव ने दिया था जिसमें प्राणी मुख्य कय से अनैच्छिक अनुक्रिया करना सीखता है। इस नियम का प्रयोग विज्ञापनकर्ता मुख्य रूप से करते हैं। दूसरा, सिद्धांत या नियम क्रियाप्रसूत अधिगम है जिसमें प्राणी परिणामों के आधार पर अनुक्रिया करना सीखता है। इसमें मुख्य रूप से ऐच्छिक अनुक्रियायें सीखता है। तीसरा सिद्धांत निरीक्षणात्मक अधिगम है जिसके प्रतिपादक अलवर्ट बैण्डूरा है। इसमें व्यक्ति दूसरों की अनुक्रियाओं और उन अनुक्रियाओं पर उन्हे मिले पुरस्कार या दण्ड के आधार पर अनुक्रिया करना सीखता हैं। इसके अलावा भी कई कारक हैं जो मनोवृत्ति के निर्माण एवं विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं जैसे- सूचना का प्रभाव, आवश्यकता समूह से संबद्धता, संस्कृति, रूढ़ियाँ, व्यक्तित्व, व्यक्तिगत अनुभव आदि।

3.1.5. अभ्यास प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न

(1)इनमें से कौन सा घटक विश्वास से संबंधित है ?

(क) भावात्मक

(ख) संज्ञानात्मक

(ग) व्यवहारात्मक

(घ) प्रतिक्रियात्मक

(2) मनोवृत्ति के ए बी सी प्रतिरूप में बी किसको संकेत करता ?

(क) विश्वास

(ख) व्यवहार

(ग) विश्वास और व्यवहार दोनों

(घ) इनमें से कोई नहीं

(3) निम्न में से कौन सा कथन सत्य नहीं है?

(क) मनोवृत्ति को व्यक्ति अर्जित करता है।

(ख) मनोवृत्ति में परिवर्तन संभव है।

(ग) विज्ञापन कर्ता मनोवृत्ति के भावात्मक पक्ष पर अधिक बल देते हैं।

(घ) मनोवृत्ति में तीन घटक भावात्मक, परिणामत्मक एवं संज्ञानात्मक होते हैं।

(4) नोट बंदी और जी एस टी लागू होने के बाद भारतीय जनता पार्टी ने कई राज्यों में चुनाव जीता। जबकि पूर्व में वहाँ दूसरी पार्टी की सरकार थी। भारतीय जनता पार्टी के प्रति लोगों की मनोवृत्ति में किस प्रकार का परिवर्तन हुआ?

(क) संगत परिवर्तन

(ख) असंगत परिवर्तन

(ग) (क) और (ख) दोनों

(घ) इनमें से कोई नहीं

(5) विज्ञापनकर्ता अमिताभ बच्चन को अपने उत्पाद के प्रचार के लिये चुनता है। इस प्रकार के विज्ञापन में अधिगम के किस नियम का प्रयोग किया जा रहा है?

(क) प्राचीन अनुबंधम

(ख) क्रियाप्रसूत अनुबंधन

(ग) निरीक्षाणात्मक अनंबंधन

(घ) इनमें से कोई नहीं

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. मनोवृत्ति को परिभाषित की जिये।
2. मनोवत्ति के बी सी मॉडल को संक्षेप स्पष्ट कीजिये।
3. मनोवृत्ति की अवधारणा को स्पष्ट कीजिये।
4. मनोवृत्ति के विकास में व्यक्तित्व कारकों की भूमिका स्पष्ट कीजिये।
5. मनोवृत्ति की विषेषतायें बताइये।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न:1. मनोवृत्ति के स्वरूप को स्पष्ट करते हुये इसकी विषेताओं पर प्रकाश डालिये ।
प्रश्न:2. मनोवृत्ति मत, विश्वास और मूल्य से किस प्रकार भिन्न है? विस्तार से समझाइये
प्रश्न: 3. मनोवृत्ति के त्रिविमीय प्रतिरूप को विस्तार से समझाइये।
प्रश्न: 4.मनोवृत्ति के विकास में विभिन्न कारकों की भूमिका पर विस्तार से प्रकाश डालिये।
प्रश्न: 5. मनोवृत्ति से आप क्या समझते हैं? इसके विकास पर प्रकाश डालिये

3.1.6. संदर्भ ग्रंथ सूची

- त्रिपाठी, ला.ब.तथा अन्य (1998). *आधुनिक सामाजिक मनोविज्ञान*, आगरा, हर प्रसाद भार्गव।
- सिंह, अ.कु. (2016). *समाज मनोविज्ञान की रूपरेखा*, दिल्ली, मोतीलाल बनारसीदास।
- सुलेमान, मु.(2009) *उच्चतर समाज मनोविज्ञान*, दिल्ली, मोतीलाल बनारसीदास।
- Baron, R.A.&Misra,G.(2014) *Psychology: Indian Subcontinent Edition*. Pearson education.
- Baron, R. A. & Byrne, D (2000). *Social Psychology*, Prentice Hall of India Pvt.Ltd., New Delhi.
- Myers, G. David (2008). *Social Psychology*, the McGraw Hill Companies, Inc.

इकाई-2 मनोवृत्ति निर्धारक तत्व एवं मानव मूल्य

इकाई की रुपरेखा

3.2.0. उद्देश्य
3.2.1. प्रस्तावना
3.2.2. अभिवृत्ति एवं व्यवहार के संबंध को प्रभावित करने वाले कारक
3.2.3. वैयक्तिक भिन्नताएं एवं व्यक्तित्व शीलगुण
3.2.4. अभिवृत्ति का मापन
3.2.5. अभिवृत्ति मापन की विधियां
3.2.6. सारांश
3.2.7. स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न
3.2.8. शब्दावली
3.2.9. संदर्भ ग्रंथ सूची

3.2.0. उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरांत आप :

- अभिवृत्ति एवं व्यवहार के संबंध को प्रभावित करने वाले कारक से परिचित हो जायेंगे।
- वैयक्तिक भिन्नताएं एवं व्यक्तित्व शीलगुणों को समझ सकेंगे।
- अभिवृत्ति का मापन को समझ सकेंगे।
- अभिवृत्ति मापन की विभिन्न विधियां से परिचित हो सकेंगे।
- अभिवृत्ति मापन की विधियों के बारे उन्मुखता बढ़ेगी।

3.2.1. प्रस्तावना

अभिवृत्ति (एप्टिट्युड्) मनुष्य की वह सामान्य प्रतिक्रिया है जिसके द्वारा वस्तु का मनोवैज्ञानिक ज्ञान होता है। इसी आधार पर व्यक्ति वस्तुओं का मूल्यांकन करता है। कुछ पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने अभिवृत्ति को मनुष्य की वह अवस्था माना है जिसके द्वारा मानसिक तथा नाड़ी-व्यापार-संबंधी अनुभवों का ज्ञान होता है। इस विचारधारा के प्रमुख प्रवर्त्तक औलपार्ट हैं। उनके सिद्धांतों के अनुसार अभिवृत्ति जीवन में वस्तुबोधन का मुख्य कारण है। इस परिभाषा के द्वारा अभिवृत्ति वह सामान्य प्रत्यक्ष है जिसके द्वारा मनुष्य भिन्न-भिन्न अनुभवों का समन्वय करता है। यह वह मापदंड है जिसके द्वारा व्यक्तित्व के निर्माण में सामाजिक तथा बौद्धिक गुणों का समावेश होता है। मनोवैज्ञानिकों ने अभिवृत्तियों का

विभाजन, उनके वस्तु आधार, उनकी गहनता तथा उनकी प्रतिक्रिया के आधार पर किया है। इसका घनिष्ठ संबंध व्यक्ति के अमूर्त विचार तथा कल्पना से ही है।

3.2.2. अभिवृत्ति एवं व्यवहार के संबंध को प्रभावित करने वाले कारक-

अज्जैन एवं फिशबेन मॉडल के आधार पर इतना स्पष्ट हो गया है कि व्यक्ति के व्यवहार का निर्धारण व्यक्ति के तात्कालिक मंतव्य द्वारा होता है और विशिष्टता के जिस स्तर पर अभिव्यक्ति का मापन किया जाता है उसी विशिष्टता के स्तर पर व्यक्ति के व्यवहार और अथवा अनुक्रियाओं का अभिवृत्ति द्वारा निर्धारण होता है। तथापि लापियर के अध्ययन से स्पष्ट हुआ कि अभिवृत्ति का मापन सामान्य स्तर पर किंतु अतिथि के रूप में स्वीकार करने की अनुक्रिया दंपति विशिष्ट के स्तर पर किया गया। संभवतः इसीलिए अभिवृत्ति और अनुक्रिया के मध्य धनात्मक संबंध का अभाव पाया जाता है। मनोवैज्ञानिकों ने अनेक अध्ययनों के आधार पर निर्धारित किया है कि अनेक अनाभिवृत्यात्मक कारक अभिवृत्ति के व्यवहार के सहसंबंध में सहायक या घातक होते हैं। इनमें से कुछ महत्वपूर्ण कारकों का विवेचन किया जा रहा है।

निजी अनुभव के आधार पर निर्मित अभिवृत्ति-

अध्ययन के आधार पर ज्ञात हुआ है कि व्यक्ति कि जो अभिवृत्ति प्रत्यक्ष रूप से निजी अनुभव के आधार पर निर्मित होती है उनका प्रत्यक्ष प्रभाव व्यक्ति के अनुक्रिया पर पड़ता है जिसके परिणाम स्वरूप अभिवृत्ति एवं व्यवहार में अनुरूपता होती है। रेगन एवं फेजियो ने इस कथन का इंद्रियानुभविक सत्यापन किया है। कार्नेल विश्वविद्यालय में 1 वर्ष छात्रावासों में अपर्याप्त साधन उपलब्ध था। परिणाम स्वरूप अनेक छात्रों को अस्थाई रीती से किराए के कमरों में रहना पड़ा। इन लोगों ने भाड़े के मकान में रहने वालों और छात्रावासों में रहने वालों समतुल्य छात्रों की आवास संकट के प्रति अभिवृत्ति का मापन किया। अभिवृत्ति मापन के समय समूह को अनेक प्रकार के उपायों का सुझाव दिया गया जिसका उपयोग कर छात्रावास संकट को दूर करने की दिशा में सक्रिय हो सकते थे। परिणामों से ज्ञात हुआ कि आवास संकट का प्रत्यक्ष अनुभव करने वाले छात्रों ने संबंधित अधिकारियों के पास पत्र भेजा, समितियां बनाई और सक्रिय रूप से इस संकट का विरोध किया, जबकि छात्रावासों के आवासियों ने समान अभिवृत्ति रखते हुए भी ऐसा नहीं किया। इसी प्रकार से फेजियो तथा जान्ता 1975 ने ज्ञात किया कि मनोवैज्ञानिक प्रयोगों में भाग लेने के कारण भाग लेने के पक्ष या विपक्ष वाली अभिवृत्ति पुन: भाग लेने भाग न लेने का अधिक विश्वसनीय निर्धारक है। बिना भाग लिए निषेधात्मक या धनात्मक अभिवृत्ति वाले छात्रों के भाग लेने संबंधी व्यवहार का पूर्व कथन नहीं किया जा सकता था। इसी प्रकार रे इत्यादि 1973 एवं राथ्स चाइल्ड 1978 ने अभिवृत्ति व्यवहार संगति में वैयक्तिक संलग्नताके महत्व को स्पष्ट किया है।

अभिवृत्ति प्रमुखता-

किसी भी व्यक्ति की अनेक अभिवृत्तियां होती हैं, किंतु किसी भी स्थिति विशेष में उसकी कोई अभिवृत्ति उसकी चेतना में सक्रिय हो सकती है, क्योंकि किसी कारणवश व्यक्ति उस अभिवृत्ति के बारे में सोचने के लिए बाध्य है। ऐसी अभिवृत्ति स्थिति विशेष में प्रमुख हो जाती है और व्यक्ति उसके अनुसार अपनी अनुक्रिया करता है; अन्यथा व्यक्ति यांत्रिक तरीके से बिना समझे बुझे अनुक्रिया करता है। लैंगर ने इस प्रकार की आदतन होने वाली अनु क्रियाओं तथा अभिवृत्ति प्रमुखता से निर्धारित अनुक्रिया का प्रायोगिक प्रदर्शन किया है। लैंगर, बैंक एवं सैलोविज्ज 1978 में प्रदर्शित किया है कि लोक सामान्य विषय वस्तु की उपेक्षा कर स्थिति से प्रारूप पर ध्यान देते हुए यंत्रवत किया करते हैं। एक प्रयोग में प्रयोग कर्ता ने जिराक्स मशीन का उपयोग करने वाले छात्रों से तीन प्रकार के अनुरोध किए।

पहला- क्षमा करें, मुझे 5 पृष्ठ जेरॉक्स करना है, क्या मैं मशीन का उपयोग कर लूं?

दूसरा- क्षमा करें, मुझे पांच पृष्ठ जेरॉक्स करना है। क्या मैं मशीन का उपयोग कर लूं? बहुत जल्दी है। तथा

तीसरा - क्षमा करें, मुझे 20 पृष्ठ जेरॉक्स करना है। क्या मैं मशीन का उपयोग कर लूं? मुझे बहुत जल्दी है। प्रयोग की अन्य स्थितियों में सूचना प्रदायी कारण ना देकर कोई सूचना न देने वाले कारण का उल्लेख किया गया, जैसे क्या मैं मशीन का उपयोग कर लूं? मुझे जेरॉक्स करना है। परिणाम सारणी संख्या.1 में दिए गए हैं।

सारणी संख्या .1: जीरोक्स मशीन का उपयोग करने के लिए सहमति देने वाले प्रयोज्यों का अनुपात (लैंगर, बैंक एवं शैजोविज्ज, 1978)

कारण का प्रकार			
याचना	**अकारण**	**सूचनाहीन कारण**	**सुचना प्रदायी कारण**
छोटी	.60	.93	.94
बड़ी	.21	.24	.42

इन परिणामों से यह स्पष्ट होता है कि जब अनुरोध मामूली हो तो लोग बात मान जाते हैं। यदि वह अनुरोध से कारण हो तो लोग निश्चय ही अनुरोध स्वीकार कर लेते हैं। दूसरी ओर यदि अनुरोध के मानने में कष्ट हो तो लोग अनुरोध नहीं मानते, विशेषतः जब अनुरोध अकारण हो। किंतु कारण ज्ञात होने पर अनुरोध अधिक प्रभावी हो सकता है। तात्पर्य यह है कि सामान्यता लोग यंत्रवत एवं बिना सोचे समझे अपने अभिवृत्ति पर ध्यान दिए अनुक्रिया करते हैं, किंतु जिस अनुक्रिया में श्रम की आवश्यकता हो वहां अभिवृत्ति अनुक्रिया के लिए महत्वपूर्ण हो जाती है। स्नाइडर हम खान 1976 ने भी प्रदर्शित किया है कि स्थितियों में व्यक्ति को अपनी अभिवृत्ति की चेतना होती है व्यक्ति की अनुक्रिया अभिवृत्ति के अनुसार होती है।

3.2.3. वैयक्तिक भिन्नताएं एवं व्यक्तित्व शीलगुण-

अनेक अनुसंधानों के आधार पर ज्ञात हुआ है कि कुछ लोगों की अभिवृत्तियों और अनुक्रियाओं में संगति होती है, किंतु कुछ लोगों में इस संगति का अभाव होता है। जार्नज 1975 ने प्रदर्शित किया है कि " भावनात्मक- संज्ञानात्मक संगति" शील गुण संपन्न व्यक्तियों की अभिवृद्धि और अनुक्रिया में संगति होती है। जिनके व्यक्तित्व में लचीलापन अधिक होता है वह शायद ही अपनी अभिवृत्ति के अनुसार अनुक्रिया करते हैं (स्नाइडर एवं टैंके 1976)। जान्ना, जोल्सन एवं फेजियो 1980 ने प्रदर्शित किया है कि आत्म संचालन की व्यक्तित्व विशेषता भी अभिवृत्ति अनुक्रिया की संगति को प्रभावित करती है।

परिवेशीय संदर्भ-

राकीश एवं क्लाई जोनास 1972 ने बताया कि जैसे लोगों की अभिवृत्ति पदार्थों, घटनाओं के समूहों के प्रति होती है, उसी प्रकार उनकी अभिवृत्ति परिवेशीय संदर्भों के प्रति भी होती है। यह दोनों संयुक्त रीति से अनु क्रियाओं को प्रभावित करती हैं। इनमें जो अभिवृत्ति व्यक्ति के लिए अधिक महत्व की होती है, व्यक्ति की अनुक्रिया उसी से निर्धारित होती है। इस परिकल्पना का परीक्षण करने के लिए इन लोगों ने कक्षा और कक्षा के अध्यापक दोनों के प्रति अभिवृत्ति का मापन कर कक्षा से अनुपस्थित रहने की अनुक्रिया का अभिलेख लिया। इन लोगों ने ज्ञात किया की कक्षा तथा अध्यापक के प्रति पृथक- पृथक अभिवृत्तियों वालों के अनुपस्थित रहने की अनुक्रिया का सहसंबंध शून्य के बराबर था, किंतु दोनों अभिवृत्तियों को एक साथ लेकर देखा गया तो सहसंबंध धनात्मक पाया गया।
इस प्रकार निष्कर्ष निकला कि परिवेश के संदर्भ अभिवृत्ति अनुक्रिया संगति को प्रभावित करते हैं।

3.2.4. अभिवृत्ति का मापन -

सामाजिक मनोविज्ञान के अंतर्गत अभिवृत्ति मापन विधियों का विकास एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। अभिवृत्तियां व्यक्ति की मानसिक वृत्ति होती हैं जिनका मापन अप्रत्यक्ष रूप में ही संभव है। अभिवृत्ति मापन द्वारा अभिवृत्तियों की दिशा में तीव्रता एवं परिणाम का निर्धारण मुख्य रूप से किया जाता है। इनके मापन के लिए विशेष रूप से वस्तुनिष्ठ एवं मानकीकृत ढंग से तैयार की गई मापनियों का उपयोग किया जाता है जिन्हें अभिवृत्ति मापन की "प्रत्यक्ष विधि" कहा जाता है। इन मापनियों में कथनों का आशय स्पष्ट रहता है। व्यक्ति अपने भावों के अनुसार कथनों पर अनुक्रिया व्यक्त करता है। जटिल एवं संवेदनशील अभिवृत्तियों के मापन के लिए कुछ अन्य पर विधियों का विकास किया गया है जिनसे अभिवृत्तियों का मूल्यांकन परोक्ष ढंग से किया जा सके। अत एव कुछ दैहिक एवं प्रच्छन्न मापन विधियों का निर्माण किया गया। जो कि निम्नलिखित है-

3.2.5. अभिवृत्ति मापन की विधियां-

व्यक्ति किसी वस्तु के प्रति अनुक्रिया मानकीकृत मापनियों में दिए गए कथनों के प्रति पसंद-नापसंद के रूप में देता है। उन अनुक्रियाओं के आधार पर संपूर्ण प्राप्त अंकों की गणना करके व्यक्ति की अभिवृत्ति की दिशा एवं तीव्रता का निर्धारण किया जाता है।

(1) प्रत्यक्ष मापन विधि - अभिवृत्ति मापन की विधियों में यह विधि सर्वाधिक लोकप्रिय एवं सरलतम है। अभिवृत्ति मापनी में दिए गए कथनों पर प्रयोज्य अपनी अनुक्रिया देता है। संपूर्ण प्राप्तांकों के आधार पर उसकी अभिवृत्ति प्रबलता ज्ञात की जाती है। नीचे कुछ प्रमुख मापकों का उल्लेख किया जा रहा है-

(क) संचयी मूल्यांकन विधि- रेनसिस लिंकर्ट (1932) ने अंतरराष्ट्रीयतावाद के प्रति अभिवृत्ति मापन करने के लिए संचयी मूल्यांकन विधि का निर्माण किया। इस मापनी के प्रत्येक कथन के सामने 5 बिंदु दिए गए होते हैं- तीव्र सहमत, सहमत, अनिश्चित, असहमत एवं तीव्र असहमत। इन में से किसी एक बिंदु पर व्यक्ति अपने अनुक्रिया सही (√) का निशान लगाकर व्यक्त करता है। संपूर्ण कथनों पर दी गई अनुक्रियाओं का योग करके संपूर्ण प्राप्तांक प्राप्त कर लिया जाता है जो व्यक्ति की अभिवृत्ति प्रबलता को व्यक्त करता है। इसलिए इस विधि को संचयी मूल्यांकन विधि कहा जाता है। इस विधि के कुछ निश्चित चरण है।

1- सर्वप्रथम अभिवृत्ति वस्तु के पक्ष विपक्ष से संबंधित कथनों को अधिक संख्या में चयन कर लिया जाता है।

2- यह कथन प्रयोज्यों के समक्ष प्रस्तुत किए जाते हैं। प्रयोग अपनी सहमति/ असहमति प्रत्येक कथन के सामने 5 बिंदु मापनी पर व्यक्त करता है।

3- विभिन्न कथनों पर प्रयोज्य द्वारा दी गई अनु क्रियाओं का संपूर्ण योग कर लिया जाता है। यदि कथन अभिवृत्ति का धनात्मक पक्ष प्रस्तुत करता है तो प्राप्तांक 5,4,3,2, एवं 1 के क्रम में देंगे परंतु यदि ऋणात्मक दिशा को दर्शाता है तो अंको का क्रम उलट जाएगा अर्थात 1,2,3,4, और 5 होगा।

4- प्राप्तांकों का पद विश्लेषण किया जाता है ताकि अधिक विभेदन कारी कथनों का चुनाव किया जा सके। पद विश्लेषण के लिए प्रत्येक कथन पर प्राप्त अंक एक संपूर्ण प्राप्तांकों के बीच सहसंबंध निकाल लिया जाता है। उच्च सह संबंध वाले कथन रख लिए जाते हैं। पद विश्लेषण के आधार पर निश्चित हो जाता है कि प्रत्येक कथन वही कार्य कर रहा है जो संपूर्ण मापनी द्वारा हो रहा है एवं समान कथनों पर समूह के अनुक्रियायें परस्पर मेल खाती है या नहीं। उच्च सह संबंध वाले कथनों को लेकर लिकर्ट मापनी बनाई जाती है।

इस मापनी की कुछ प्रमुख विशेषताएं हैं-

(i) इस विधि में पद विश्लेषण हेतु उपयुक्त सांख्यिकी विधियों का उपयोग होता है। इससे मापनी की विश्वसनीयता बढ़ जाती है।

(ii) इस मापनी पर उत्तर देना अधिक सरल होता है।

इस मापनी की सीमाएं-

(i) चूंकि संपूर्ण योग के आधार पर अभिवृत्ति क्षमता को निर्धारित किया जाता है। अतः इस बिंदु पर दी गई अनुक्रियाएं कुछ हद तक अभिवृत्ति के पक्ष को व्यक्त करती हैं।

(ii) थर्स्टर्न विधि को छोड़कर, इस विधि में काफी समय लगता है।

इस विधि की विश्वसनीयता एवं वैधता उच्च पाई गई है। मर्फी एवं लिकर्ट ने अंतरराष्ट्रीयतावाद पर इसकी विश्वसनीयता .81 से .90 तक पाई। सिक्स 1938 ने टैनेनघाटी प्राधिकरण अभिवृत्ति मापनी के साथ संतोषजनक वैधता प्राप्त की है।

(ख)- थर्स्टन मापनी- थर्स्टन व चेव (1929) ने "समान दिखने वाले अंतरालों विधि" का निर्माण विशेष रूप से चर्च के प्रति अभिवृत्ति मापने के लिए किया। बाद में इसका उपयोग विभिन्न मुद्दों के प्रति अभिवृत्ति मापन हेतु किया गया।

विभिन्न स्रोतों से बहुत से कथन जो अभिवृत्ति के पक्ष विपक्ष की अवस्थाओं को दर्शाने वाले थे, एकत्र किया गया। तत्पश्चात बहुत से निर्णयाकों को चुना गया जिन्हें 11 पर्चियां दी गई। इन पर्चियों पर A से K तक अक्षर लिखे गए थे। निर्णायकों के सामने इन पर्चियों को A,B,C,D,E,F,G,H,I,J एवं K के क्रम में रखा गया। उन्हें पर्ची 'A' पर उन कथनों को लिखना था जो चर्च के प्रति अत्यधिक सम्मानजनक थे। इसी प्रकार पर्ची 'K' पर उन कथनों को लिखना था जो चर्च के प्रति अत्यधिक असम्मानजनक मूल्यांकन करते हों।

निर्णायक कथनों को इन 11 पर्चियों पर जिस पर उपयुक्त समझते थे लिख देते थे। निर्णयों का आवृत्ति वितरण तैयार करके मध्यांक निकाला गया। यह मध्यांक बिंदु इस कथन का मापनी मूल्य हुआ। कथनों की द्विअर्थता की मात्रा निर्धारित करने के लिए अंत: चतुर्थांक विचलन (Q) की गणना की गई। वे कथन जिन पर निर्णयाकोन के मतों में संगति थी उनका चतुर्थांक मूल्य कम था। ऐसे कथनों को मापनी में रख लिया गया परंतु उच्च चतुर्थांक वाले कथनों को निकाल दिया गया क्योंकि यह कथन द्विअर्थक थे। अतः अभिवृत्ति मापन के लिए अनुप्रयुक्त थे। प्रयोज्यों की प्रतिक्रियाओं में आंतरिक संगति ज्ञात करने के लिए यह 130 कथन 300 प्रयोज्यों को दिए गए एवं उन कथनों पर निशान लगाने को कहा गया जिनसे वे सहमत हों। जब प्रयोज्यों ने ऐसे कथनों पर जिनका मापनी मूल्य एक दूसरे से बहुत अधिक भिन्न था सहमति व्यक्त की तो उसे अभिवृत्ति के लिए और असम्बध्द समझ कर निकाल दिया गया।

इस मापनी की सबसे बड़ी कमी यह है कि इसमें निर्णयाकों की अपनी अभिवृत्तियां प्रभाव डाल सकती हैं (फर्गुसन 1935, हावलैंड एवं शेरीफ 1952)। इसकी दूसरी कठिनाई यह है कि यदि दो कथन सामान मापने मूल्य वाले हो तो यह निर्धारित करना कठिन हो जाता है कि कौन सा कथन अच्छा विभेधन कर रहा है। परंतु इन कमियों के बावजूद भी अभिवृत्ति मापन की यह महत्वपूर्ण मापनी है। इसकी विश्वसनीयता .75 एवं वैधता उच्च पाई गई है।

(ग) अर्थ विभेदक प्रविधि - आसगुड, सूसि एवं टैटेनबास 1975 ने अर्थ विभेदक प्रविधि का निर्माण किसी संप्रत्यय के सामान्य अर्थ का मापन करने के लिए किया जिसका उपयोग अभिवृत्तियों के मापन के लिए भी किया जाता है। यह अभिव्यक्ति संप्रत्यय प्रयोग के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है तथा इस संप्रत्यय के मापन के लिए द्विध्रुवी विशेषणों का उपयोग किया जाता है। प्रयोज्य से दिए गए अभिवृत्ति संप्रत्यय के प्रति द्विध्रुवीय विशेषणों पर अनुक्रिया व्यक्त करने को कहा जाता है। प्रयोज्य अनुक्रिया 7 बिंदु मापनी जैसे- (पसंद)-अत्यधिक, अधिक, कम, तटस्थ, कम, अधिक, अत्यधिक-(नापसंद) पर जिस बिंदु से सहमत हो उस पर व्यक्त करता है। मापनी का चौथा बिंदु तटस्थ अभिवृत्ति को प्रकट करने के लिए होता है। तीन बिंदु इसके बायीं ओर और तीन बिंदु इसके दाहिनीं ओर होते हैं जिनसे अभिवृत्ति का सुझाव एवं तीव्रता ज्ञात किया जाता है। आधुनिकीकरण के प्रति अभिवृत्ति का मापन भी इस विधि से होता है। व्यक्ति आधुनिकीकरण के प्रति अनुक्रिया 7 बिंदु मापनी पर देता है। यदि वह धनात्मक विशेषणों से सहमत होता है तो उसे अधिक अंक प्राप्त होते हैं, परंतु यदि ऋणात्मक विशेषणों पर अनुप्रिया देता है तो कम अंक प्राप्त होते हैं। सभी अनुक्रियाओं को जोड़कर संपूर्ण प्राप्तांक ज्ञात कर लिया जाता है। इससे अभिवृत्ति की दिशा एवं तीव्रता का निर्धारण किया जाता है। इस प्रविधि की विश्वसनीयता (.83 से .91, .97) एवं वैधता (.74 से .82) उच्च पाई गई है।

ये तीनों ही विधियां यद्यपि सरल है , परंतु प्रत्यक्ष विधि होने के कारण इसकी प्रमुख कमियां, प्राप्तांको की विश्वसनीयता को प्रभावित करती है। सामाजिक वांछनीयता, अनुक्रिया तत्परता एवं असावधानी के कारण प्राप्ताकों का स्वरूप प्रभावित होता है, परंतु शोधकर्ता इन्हें सावधानीपूर्वक दूर कर सकता है।

1- मापनी में ऐसे प्रश्नों को नहीं शामिल करना चाहिए जो सामाजिक वांछनीयता से जुड़े हो

2 -मापन दबावपूर्ण परिस्थिति में न किया जाए एवं

3 -प्रयोज्य को स्पष्ट निर्देश दिया जाए कि कथनों का कोई उत्तर सही या गलत नहीं है ।संभव हो सके तो संक्षिप्त प्रश्नावली का निर्माण किया जाए, इससे उत्तर दाता लापरवाही नहीं दिखाएगा। संतुलित मापनी का निर्माण करके अनुक्रिया तत्परता को दूर किया जा सकता है। पहले धनात्मक भाव वाले कथनों पर दिए गए प्राप्ताकों की गणना कर ली जाए फिर ऋणात्मक भाव वाले कथनों पर दी गई अनुक्रियाओं की। जैसा लिकर्ट मापनी में किया जाता है। इससे अनुक्रिया तत्परता से समाप्त हो जाती है। इन कमियों को ध्यान में रखते हुए एक वैकल्पिक प्रविधि का निर्माण किया गया जिसका वर्णन किया जा रहा है।

(घ) बोगस पाइप लाइन प्रविधि- यदि प्रयोज्य को यह जानकारी हो कि प्रयोगकर्ता किसी अन्य माध्यम से उसकी 'सही अभिवृत्ति' की जानकारी प्राप्त कर लेगा, तो ऐसी दशा में वह मापने के कथनों का सही सही उत्तर देगा। इस परिकल्पना के आधार पर जॉन्स एवं सिगल 1971 ने बोगस पाइप लाइन प्रविधि का विकास किया। प्रयोज्यों को बोगस यंत्र दिखाकर यह निर्देश दिया गया " यहां यंत्र पाली ग्राफ लाई डिटेक्टर की भांति दैनिक अनुक्रियाओं का सही-सही मापन करता है"। निर्देश देने के पश्चात एलेक्ट्रोड को प्रयोग के शरीर से लगा दिया जाता है। प्रयोज्यों को प्रत्येक कथन का उत्तर डायल घुमा कर देना था। वे

प्रयोज्य जिन्होंने बोगस मशीन द्वारा अनुक्रिया व्यक्त की थी उन प्रयोज्यों की तुलना में जिन्होंने बिना मशीन के अनुक्रिया व्यक्त की थी, नीग्रो के प्रति अधिक निषेधात्मक अनुक्रिया व्यक्त की।

इस प्रविधि की उपयोगिता विशेष परिस्थितियों में अभिवृत्ति निर्धारण हेतु अधिक पाई गई है परंतु जटिल अभिवृत्तियों के मापन का एकमात्र हल इस विधि को मान लेना उपयुक्त नहीं होगा। (आस्ट्राम, 1973)।

2- दैहिक मापन विधि- जटिल एवं अधिक संवेदनशील अभिवृत्तियों का सही मापन प्रत्यक्ष विधि से संभव नहीं हो पाता है। इनके शुद्ध मापन हेतु दैहिक मापकों के निर्माण पर बल दिया गया जिनसे अत्यंत व्यक्तिगत एवं संवेदनशील अभिवृत्तियों का सही मापन संभव हो सका कुछ प्रमुख दैहिक मापकों का उल्लेख यहां पर किया गया है।

(क) ये मापक है:

(1) त्वचा आकुंचन: रैनकिन एवं कैंपबेल 1955 ने इस मापक का उपयोग अभिवृत्ति मापन हेतु किया।

(2) हृदय गति (कॉटेज एवं अन्य 1965)

(3) हृदय की धड़कन एवं हृदय चक्र (वेस्ट्री एवं डिफ्लेअर 1959) एवं

(4) पुतली का आकार या फैलाव (हेस 1965) इन मापकों द्वारा अभिवृत्ति वस्तु के प्रति प्राप्त दैहिक आंकड़ों एवं तटस्थ वस्तु के प्रति प्राप्त आंकड़ों के बीच प्राप्त अंतर अभिवृत्ति प्रबलता को प्रदर्शित करता है। जितना ही अधिक अंतर प्राप्त होगा, उस वस्तु के प्रति उतनी ही तीव्र अभिवृत्ति होगी।

इस विधि की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि प्रयोज्य को यह पता नहीं चल पाता है कि उसकी अभिवृत्तियों का मापन किया जा रहा है। यदि वह जान भी लेता है तो भी वह अपने अनुक्रियाओं को नहीं बदल सकता ।

परंतु इन मापकों की कुछ सीमाएं भी हैं :

(1) दैहिक मापक अभिवृत्ति वस्तु के अतिरिक्त अन्य वस्तुएं या घटनाओं के प्रति अधिक संवेदनशील हो सकते हैं। अतः यह निर्धारित करना कठिन हो जाता है कि यह परिवर्तन अभिवृत्ति वस्तु के कारण है या किसी अन्य कारण से। जैसे समस्या समाधान जैसे कार्यों को देख कर हृदय की धड़कन में परिवर्तन या किसी नयी या कसमरूप वस्तु के कारण त्वचा में आंकुचन।

(2) दैहिक मापन से अभिवृत्ति के संदर्भ में प्राप्त सूचनाएं सीमित होती हैं । इनसे अभिवृत्ति की तीव्रता का अनुमान तो किया जा सकता है, परंतु दिशा का निर्धारण नहीं हो पाता।

(ख) मुखाभिव्यक्ति- दैहिक मापको में सर्वाधिक लोकप्रिय विधि है। "मुखाभिव्यक्ति"। इनके द्वारा विभिन्न संवेगों एवं अभिवृत्तियों का मापन किया जाता है। जो लोग किसी बात या कथन से सहमत होते हैं एक तरह की मुखाभिव्यक्ति प्रदर्शित करते हैं एवं जो लोग असहमत होते हैं, विभिन्न प्रकार की मुखाअभिव्यक्ति प्रदर्शित करते हैं। कैसिआपो एवं पेट्टी (1979) ने उपयुक्त परिकल्पना के मापन हेतु प्रयोग क्यों के तीन समूहों के चेहरे की मांसपेशियों के गति का मापन किया यह मापन दो अवस्थाओं में किया गया। कथन से पूर्व गठन के समय इन प्रयोज्यों के चेहरे की मांसपेशियों के गति का मापन किया गया। यह

पाया गया कि प्रयोज्यों की मांसपेशियों की गति में कथन से पूर्व एवं कथन के मध्य भिन्नता थी। वे प्रयोज्य जो कथन से सहमत थे एवं जो असहमत थे भिन्न अभिव्यक्ति प्रदर्शित की। इस विधि से अभिवृत्ति की दिशा का पता तो चलता है, परंतु तीव्रता का सही मूल्यांकन नहीं हो पाता।

(3) प्रकट व्यवहारों के मापक- किसी परिस्थिति में व्यक्ति क्या व्यवहार कर रहा है ? इसका प्रेक्षण करके, अभिवृत्ति के बारे में अनुमान लगाया जा सकता है । व्यक्ति के प्रकट व्यवहार उस दशा में अधिक विश्वसनीय सूचना देते हैं जब व्यक्ति को यह आभास नहीं हो पाता है कि उसके व्यवहार का प्रेक्षण किया जा रहा है। इस उद्देश्य से विभिन्न प्रच्छन्न विधियों का विकास किया गया ताकि व्यक्ति के व्यवहार का स्वाभाविक रूप से मापन किया जा सके (वेब एवं अन्य 1969)।

प्रच्छन्न विधियां- जटिल एवं विवादास्पद अभिवृत्ति वस्तुओं के प्रति अभिवृत्तियों के मापन के लिए परोक्ष प्रविधियों का विकास, अभिवृत्ति के अध्ययन में महत्वपूर्ण उपलब्धि है तीन प्रकार की प्रच्छन्न विधियों का उल्लेख किया गया है (वेब एवं अन्य 1969)।

(1) "भौतिक चिन्हों" के आधार पर किसी वस्तु की लोकप्रियता या अलोकप्रियता के बारे में अनुमान लगाया जा सकता है। उदाहरण के लिए, किसी म्यूजियम में एकत्र दर्शकों से ढंग से यह प्रश्न किया जाए कि वह इन सभी चीजों में से किसे अधिक पसंद करते हैं तो संभवत व्यक्ति उत्तर अपने ऐतिहासिक ज्ञान के आधार पर दे, परंतु यदि शोधकर्ता यह देखता है कि चीजों की और अधिक भीड़ है। अतः इन नासिका चिन्हों के आधार पर वह अनुमान लगा लेता है कि अमुक व्यक्ति अधिक पसंद की जा रही है। अतः उसके प्रति लोगों की धनात्मक अभिवृत्ति है।

(2) "पुरालेखीय संग्रहों" से अभिवृत्तियों बारे में महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है। यदि यह ज्ञात करना हो कि "क्या पिछले 20 वर्ष में स्त्री पुरुष की भूमिका संबंधी रूढ़ियों में कोई परिवर्तन हुआ या नहीं"? इसका मूल्यांकन पुरालेखीय संग्रहों द्वारा संभव है। यदि 20 वर्ष पूर्व माता पिता द्वारा लड़के लड़कियों के पालन पोषण का ढंग एवं वर्तमान समय के तरीके में भिन्नता है तो यह कहा जा सकता है कि इस अभिवृत्ति में परिवर्तन आया है एवं यह बात भी स्पष्ट होती है कि समय के साथ अभिवृत्तियों में परिवर्तन होता है।

(3) "अशाब्दिक व्यवहार" सशक्तसमप्रेरक का कार्य करते हैं। इनका वस्तुनिष्ठ तरीके से अध्ययन करके व्यक्ति की अभिवृत्ति का अनुमान लगाया जा सकता है। सामान्य रूप से यह देखा जाता है कि हम जिसे पसंद करते हैं उसके पास बैठना चाहते हैं। इस आधार पर विभिन्न समूह के लोगों का वर्गीकरण किया जा सकता है।

भय की स्थिति में मापन अंतः पारस्परिक दूरी के आधार पर किया जाता है। वेब एवं अन्य 1969 ने छोटे बच्चों को आत्माओं की कहानी सुनाते समय यह पाया कि प्रयोज्य क्रमश: एक दूसरे के निकट होते गए। परंतु इस विधि की सबसे बड़ी कमी यह है कि इसके द्वारा यह निश्चित करना कठिन हो जाता है कि व्यक्ति का कौन सा व्यवहार अभिवृत्ति को इंगित कर रहा है। एक विद्यार्थी अपनी कक्षा में प्रवेश करता है एवं अपने एक सहपाठी के पास खाली सीट पर बैठ जाता है। उसका यह व्यवहार इस बात को व्यक्त करता है

कि वह छात्र उस व्यक्ति के प्रति धनात्मक अभिवृत्ति रखता है। परंतु उस छात्र के व्यवहार के अन्य कारण भी हो सकते हैं। जैसे-

(1) उस छात्र ने उस सीट को इसलिए चुना, क्योंकि वह पंखे के नीचे थी, या अध्यापक के ध्यान के केंद्र में बने रहने के लिए वह सीट उपयुक्त थी। अतः यह तय करना कठिन हो जाता है कि प्रकट व्यवहार किस प्रकार की अभिवृत्ति को व्यक्त कर रहा है।

(2) व्यक्ति बहुत से व्यवहार बिना सोचे समझे करता है (ट्राएण्डिस,1980)। अतः ऐसे व्यवहारों को किसी अभिवृत्ति का परिणाम नहीं कहा जा सकता है। मनोवैज्ञानिकों का सुझाव है कि अभिवृत्ति मापन के लिए प्रत्यक्ष एवं परोक्ष दोनों ही विधियों का उपयोग करें तो शुद्ध एवं वस्तुनिष्ठ परिणाम प्राप्त होगा (वेब एवं अन्य 1969)।

अभिवृत्ति मापन की समस्याएं-

अभिवृत्ति का मापन करते समय शोधकर्ता के सामने कुछ समस्याएं आती हैं जिनके उपयुक्त हल के बिना अभिवृत्ति का सही-सही मापन संभव नहीं है। ये समस्याएं निम्न है:

(1) अभिवृत्ति एवं कुछ अन्य संप्रत्ययों में बहुत सूक्ष्म अंतर होता है। अतः शोधकर्ता को यह निश्चित कर पाना कठिन हो जाता है कि मापक 'मत' या 'विश्वास' का मापन कर रहा है या अभिवृत्ति का। कुछ मनोवैज्ञानिक मात्र 'विश्वास' या मूल्य का ही उपयोग मापन में करते हैं जिनसे अभिवृत्ति के स्वरूप की स्पष्ट व्याख्या नहीं होती।

(2) अभिवृत्ति मापन की दूसरी समस्या इसकी परिवर्तनशीलता है। अभिवृत्ति में समय-समय पर परिवर्तन होता रहता है। अतः यह निर्धारित कर पाना कठिन हो जाता है कि प्राप्तांको में अंतर परिवर्तनशीलता के कारण है या मापन संबंधी त्रुटि के कारण।

(3) तीसरी समस्या यह है कि अभिवृत्ति मापन किन पर परिस्थितियों में किया जाए। मापन की परिस्थितियां स्पष्ट, सापेक्षिक रूप से महत्वपूर्ण एवं अंतर्वस्तु के अनुरूप हो। अभिवृत्ति मापन की जो विषय वस्तु हो उससे उत्तर दाता परिचित हो, उसके प्रति किसी प्रकार की आस्था रखता हो, अन्यथा उस मापन का कोई अर्थ नहीं है। अभिवृत्ति मापन उन परिस्थितियों में किया जाए जबकि उत्तर दाता पर कम से कम दबाव हो, क्योंकि बाह्य दबाव का व्यक्ति के अनुक्रिया पर प्रभाव पड़ सकता है, चूंकि अभिवृत्ति मापन रेखीय सातत्य पर आधारित होता है। यह तुलनात्मक मानदंड, भौतिक माफ को की तरह वस्तुनिष्ठ नहीं होता तथा पर तुलना के आधार पर व्यक्ति के अनु क्रियाओं को विभिन्न स्थितियों पर प्रदर्शित किया जा सकता है।

3.2.6. सारांश

मानव व्यवहार के समस्त महत्त्वपूर्ण पहलुओं में अभिवृत्ति एक महत्त्वपूर्ण विषय है जिसपर प्रारंभ से ही मनोवैज्ञानिकों की रूचि रही है. अभिवृत्ति से मनुष्य के व्यवहार महज प्रभावित नहीं होता अपितु मनोवृत्ति ही व्यवहार का निर्धारण करती है. उक्त इकाई में अनेक कारकों की चर्चा की गयी है. अभिवृत्ति जो स्वयं में एक महत्त्वपूर्ण विषय ऐसे में अभिवृत्ति का मापन अति संवेदनशील विषय हो जाता है. अभिवृत्ति मापन व्यक्ति को यह सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक है की जीवन की प्रतिकूल परिस्थितियों में वह कैसा व्यवहार करेगा.

3.2.7. स्व-मूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. अभिवृत्ति एवं व्यवहार के संबंध को प्रभावित करने वाले कारकों का वर्णन करें.
2. वैयक्तिक भिन्नताएं एवं व्यक्तित्व शीलगुणों को समझायिये.
3. अभिवृत्ति का मापन को समझ सकेंगे.
4. अभिवृत्ति मापन की विभिन्न विधियों का सविस्तार वर्णन करें.

3.2.8. शब्दावली

अभिवृत्ति , व्यक्तित्व शीलगुणों, अभिवृत्ति का मापन

3.2.9. संदर्भ ग्रंथ सूची

बैरन एंड बैरनी(2000). सोशल साइकोलॉजी. पियर्सन एजुकेशन.एनडी

सिंह, ए.के.(2008). समाज मनोविज्ञान की रुपरेखा. मोतीलाल बनारसीदास पब्लिकेशन.एनडी.

जैकोन, जे.एम.(1993). सोशल साइकोलॉजी, पास्ट एंड प्रेजेंट. हिल्सडेल,एनजे

सेमिन,जी. एंड फिडलर, के.(1996). एप्लाइड सोशल साइकोलॉज.सीए: सेज

इकाई-3 मनोवृत्ति परिवर्तन एवं मनोवृत्ति सिद्धांत

इकाई की रूपरेखा

3.3.0. उद्देश्य

3.3.1. प्रस्तावना

3.3.2. विषय-विस्तार

3.3.3. विषय-विस्तार

3.3.4. अनुनय में संज्ञानात्मक प्रक्रियायें

3.3.5. सारांश

3.3.6 संदर्भ ग्रंथ सूची

3.3.0. उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप -

1 मनोवृत्ति-परिवर्तन के सम्प्रत्यय को जान पायेंगे।

2 मनोवृत्ति-परिवर्तन को प्रभावित करने वाले कारकों से अवगत होंगे।

3 अनुनय में संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं की भूमिका को जान पायेंगे।

4 अनुनय के प्रति प्रतिरोध को समझ पायेंगे।

5 मनोवृत्ति-परिवर्तन की प्रक्रिया का विष्लेषण कर पायेंगे।

6 मनोवृत्ति-परिवर्तन की सैद्धान्तिक व्याख्या कर पायेंगे।

3.3.1. प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में मनोवृत्ति-परिवर्तन के बारे में विस्तार से चर्चा की जा रही है। जैसा कि पिछली इकाई में बताया गया है कि मनोवृत्ति में परिवर्तन हो सकता है। चूंकि मनोवृत्ति का अधिगम किया जा सकता है, इसलिये इसमें परिवर्तन भी हो सकता है। मनोवृत्ति पहले से और अधिक मजबूत हो सकती है या फिर पहले से विपरीत भी हो सकती है। मनोवृत्ति में संगत परिवर्तन भी हो सकता है और असंगत परिवर्तन भी। संगत परिवर्तन मात्रात्मक परिवर्तन को दिखाता है जबकि असंगत परिवर्तन दिषा को दिखाता है। ये परिवर्तन कई कारकों से प्रभावित होते हैं, ये इन कारकों में से प्रमुख कारकों की चर्चा इस इकाई में की जा रही है। मनोवृत्ति में परिवर्तन कई बार अथवा कई परिस्थितियोंमें कठिन भी हो जाता है। कभी-कभी मनोवृत्ति में परिवर्तन नहीं भी होता है। ऐसे भी कई कारक हैं जो मनोवृत्ति परिवर्तन का प्रतिरोध करते हैं। मनोवृत्ति में परिवर्तन क्यों होता है? कैसे होता है? किन परिस्थितियों में होता है? ऐसे कई प्रकार के प्रष्न हैं जिनका मनोवैज्ञानिकों, विषेषकर समाज मनोवैज्ञानिकों ने अपने विभिन्न सिद्धांन्तों के माध्यम से व्याख्यात्मक उत्तर दिया है। जिनमें से प्रमुख सिद्धान्तों का यहाँ वर्णन किया जा रहा है। जैसा कि पूर्व की इकाई में बताया जा चुका है कि मनोवृत्ति सीखी हुयी या अर्जित प्रवृत्ति है। ये अपेक्षाकृत स्थायी है। इसके निर्माण एवं संपोषित करने वाले कारकों में परिवर्तन होने से इसमें भी परिवर्तन हो जाते हैं। मनोवृत्ति-

वस्तुु के प्रति हमारी वर्तमान में मनोवृत्ति प्रतिकूल हो सकती है लेकिन समय के साथ इसमें परिवर्तन होकर अनुकूल भी हो सकती है।

3.3.2. विषय-विस्तार

विभिन्न शोध अध्ययनों से यह स्पष्ट हुआ है कि मनोवृत्ति में परिवर्तन दो प्रकार के होते हैं। ये दो परिवर्तन इस प्रकार हैं-

1. संगत परिवर्तन
2. असंगत परिवर्तन

1. संगत परिवर्तन: मनोवृत्ति-वस्तु के प्रति, मनोवृत्ति समय के साथ और अधिक मजबूत हो जाती है। अर्थात यदि मनोवृत्ति अनुकूल है तो और अधिक अनुकूल हो जाती है और यदि प्रतिकूल है तो और अधिक प्रतिकूल हो जाती है। जैसे किसी छात्र की समाजषास्त्र के प्रति प्रारंभिक मनोवृत्ति अनुकूल है तथा जैसे ही उसने समाजषास्त्र की पुस्तकों का अध्ययन किया तो उसकी मनोवृत्ति समाजषास्त्र के प्रति और अधिक अनुकूल हो गयी। यह मात्रात्मक परिवर्तन है।

2. असंगत परिवर्तन: असंगत परिवर्तन वैसे परिवर्तन को कहा जाता है जिसमें मनोवृत्ति की दिषा में ही परिवर्तन हो जाता है। अर्थात, मनोवृत्ति-वस्तु के प्रति व्यक्ति की मनोवृत्ति समय के साथ अनुकूल से प्रतिकूल या प्रतिकूल से अनुकूल हो जाती है। जैसे यदि किसी छात्र की मनोवृत्ति समाजषास्त्र के प्रति प्रतिकूल थी लेकिन जैसे ही उसने समाजषास्त्र के प्रसिद्ध विद्वानों के विचारों के बारे पढ़ा तो उसकी मनोवृत्ति समाजषास्त्र के प्रति अनुकूल हो गयी।

संगत परिवर्तन में दिषा में परिवर्तन नहीं होता बल्कि मात्रा/तीव्रता में परिवर्तन होता है जबकि असंगत परिवर्तन में दिषा में परिवर्तन होता है। मनोवृत्ति में हुये निभिन्न शोध अध्ययन बताते हैं कि मनोवृत्ति में संगत परिवर्तन, असंगत परिवर्तन की अपेक्षा सरल है। हालांकि, जैसा पहले भी बताया गया है कि मनोवृत्ति का विकास हो जाने पर उनमें परिवर्तन सामान्यतया सरलता से नहीं होता है।

3.3.3. विषय-विस्तार

मनोवृत्ति परिवर्तन को प्रभावित करने वाले कारक:

जैसा कि पहले ही बताया गया है कि मनोवृत्ति की दिषा और मात्रा में परिवर्तन होते हैं। यहाँ उन कारकों की चर्चा की जा रही है जो इसे प्रभावित करते हैं।

1. अतिरिक्त सूचना: मनोवृत्ति में औपचारिक और अनौपचारिक दोनों तरह की सूचना का प्रभाव होता है। औपचारिक सूचना जैसे कि षिक्षा, प्रचार आदि तथा अनौपचारिक जैसे, व्यक्तिगत प्रत्यक्ष अनुभव, दूसरों से बातचीत आदि। सूचना के विभिन्न स्रोत हो सकते हैं जैसे कि समाचार पत्र, टेलिविजन, रेडियो। आजकल सोषल नेटवर्किंग साईट भी इसमें बहुत प्रभावी भूमिका निभा रही हैं जैसे - फेसबुक, ट्विटर, वाट्स-एप आदि।

2. समूह में परिवर्तन: जिस समूह में व्यक्ति रहता है, उस समूह का प्रभाव उसकी मनोवृत्ति पर पड़ता है। यदि व्यक्ति अपना समूह बदलकर दूसरे समूह में शामिल होता है तो उसकी पूर्व की मनोवृत्ति में भी परिवर्तन हो जाता है। इसके अनेक उदाहरण दिन प्रतिदिन देखने को मिलते हैं। जैसे किसी राजनैतिक दल को छोड़कर दूसरे राजनैतिक दल में शामिल हो जाना, अपना धर्म बदल कर दूसरे धर्म को अपना लेना, एक व्यवसाय को छोड़कर दूसरा व्यवसाय शुरू कर देना आदि।

न्यूकाम्ब ने एक अध्ययन के द्वारा यह बताया है कि यदि संदर्भ समूह में परिवर्तन कर दिया जाता है तो व्यक्ति की मनोवृत्ति में परिवर्तन हो जाता है। इन्होने अपने अध्ययन में देखा कि जिन विद्यार्थियों की पूर्व में अनुदार मनोवृत्ति थी उनमें नये समूह जैसे कि कालेज के वातावरण में रहने पर उनकी मनोवृत्ति उदार हो गयी। क्यों कि, का ॅलेज के अधिकारी उदारता की मनोवृत्ति को प्रोत्साहित करते थे जिससे े वहाँ के विद्यार्थियों में उदारता की मनोवृत्ति विकसित होती थी। समूह संबद्धता में परिवर्तन से मनोवृत्ति परिवर्तन होता है और यह दो कारकों पर निर्भर करती है। एक तो उस समूह की विषेषता अर्थात समूह के मानक, मूल्य एवं विष्वास आदि। तथा दूसरा उस व्यक्ति की सदस्यता की विषेषतायें। यदि समूह की विषेषतायें उसे महत्त्वपूर्ण और आकर्षक लगती है तब समूह के अनुरूप मनोवृत्ति में परिवर्तन भी होगा। यदी व्यक्ति की सदस्यता अर्थात उसकी समूह में स्थिति को महत्व दिया जाता है तो उसकी मनोवृत्ति में परिवर्तन हो जाता है। होनात्स (1950) के अध्ययन के अनुसार यदि नये समू ूह में व्यक्ति की स्थिति ऊँची है तो वह अनुरूपता प्रदर्षित करता है।

3. संचार: मनोवृत्ति परिवर्तन में संचार की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। विषेषकर अनुनयात्मक संचार मनोवृत्ति परिवर्तन का बहुत महत्वपूर्ण और प्रमुख कारण है। मनोवृत्ति परिवर्तन में अनुनयात्मक संचार के महत्व को दिखलाने के लिये समाज मनोवैज्ञानिकों ने कई महत्वपूर्ण अध्ययन किये हं ै। अनुनय का अर्थ ऐसे प्रयास से होता है जो दूसरों की मनोवृत्ति में विभिन्न प्रकार के संदेषों के माध्यम से परिवर्तन करता है। मनोवृत्ति में परिवर्तन तब होता है जब संबंधित विषय के बारे में सूचना पर्याप्त हो। होमलैण्ड, जेनिस एवं केली (1953) ने अनुनयात्मक संचार की मनोवृत्ति परिवर्तन में महत्वपूर्ण भूमिका को दिखाने के लिये कई प्रयोग एवं शोध किये। इनके शोधों के परिणाम स्वरूप कई महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकले। उन्होंने चार मुख्य कारक बताये जिनपर मनोवृत्ति परिवर्तन निर्भर करता है। ये चार कारक इस प्रकार हैं।

4. संचारक की विषेषतायें: संचारक की विषेषतायें अर्थात सूचना देने वाले की विषेषतायें मनोवृत्ति परिवर्तन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। यदि सूचना देने वाला विष्वसनीय है (त्मकपइसम ब्वउउनदपबंजवत) तो, उसकी सूचना पर व्यक्ति अधिक विष्वास करता है जिससे उसकी मनोवृत्ति में परिवर्तन सरल हो जाता है। इस तथ्य को होमलैण्ड तथा विष (1951) ने अपने एक प्रयोग के द्वारा दिखलाया है। इसमें कालेज के छात्रों को एक ही तरह की सूचनायें पढ़वायी गयीं और फिर अलग-अलग समूह में बांटकर एक समूह से कहा गया कि इन सूचनाओं का स्रोत विष्वसनीय है तथा दूसरे समूह को बताया गया कि इन सूचनाओं का स्रोत कम विष्वसनीय है। परिणाम में यह पाया गया कि विष्वसनीय स्रोत बताने पर संबंधित समूह की मनोवृत्ति में अधिक परिवर्तन आया तथा कम विष्वसनीय स्रोत के बताये जाने वाले समूह में बहुत ही कम छात्रों की मनोवृत्ति मे परिवर्तन हुआ। इस प्रयोग के एक और

पहलू जिसे स्लीपर प्रभाव कहते हैं, का भी पता चला जिसमें समय बीतने पर (लगभग एक माह बाद) दोनों समूह की मनोवृत्ति देखी गयी, जिसमें पाया गया कि उच्च विष्वसनीय संचारक का प्रभाव कम तथा निम्न विष्वसनीय संचारक का प्रभाव उच्च हो गया।

संचारक का आकर्षक होना भी मनोवृत्ति परिवर्तन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इस कारक पर भी विभिन्न विद्वानों ने कई अध्ययन किये जिनमें चिकिन (1979) तथा पलाक एवं सहयोगियों ने अपने अध्ययन में पाया कि शारीरिक रूप से सुंदर लोगों द्वारा दी गयी सूचना का प्रभाव दूसरे लोगों पर अधिक होता है जबकि जो लोग कम सुंदर होते हैं या आकर्षक नहीं होते, उनकी सूचना का प्रभाव दूसरे लोगों पर कम पड़ता है। इसी प्रकार जो लोग हमारे समान होते हैं उनको हम अधिक पसंद करते हैं, फलस्वरूप हम उनकी बातों से अधिक प्रभावित होते हैं और मनोवृत्ति में परिवर्तन होता है।

(पप) सूचना का स्वरूप एवं विषेषता: मनोवृत्ति परिवर्तन हेतु व्यक्ति को दी जाने वाली सूचना का स्वरूप एवं विषेषतायें मनोवृत्ति परिवर्तन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। अर्थात मनोवृत्ति परिवर्तन सूचना के स्वरूप पर भी बहुत निर्भर करता है।

(क) अगर सूचना ऐसी है जिससे व्यक्ति में भय या कोई अन्य नकारात्मक संवेग उत्पन्न होता है तो इसका प्रभाव मनोवृत्ति परिवर्तन में पड़ता है। जैसे यदि कोई सूचना ऐसी है कि जिसमें यह बताया जाता है कि अमुक वस्तु के सेवन से आपको गम्भीर बीमारी हो सकती है तो इससे व्यक्ति की मनोवृत्ति में सरलता से परिवर्तन हो जाता है। सिगरेट पान मसाले, अथवा अन्य मादक द्रव्यों पर यह सूचना कि इसके सेवन से आपको कैंसर हो सकता है या आपके शरीर का कोई आंतरिक अंग खराब हो सकता हैं इत्यादि प्रकार की सूचनाये व्यक्ति में भय उत्पन्न करने वाली होती हैं जिससे व्यक्ति उस वस्तु के सेवन करने से बचता है।

(ख) एक-पक्षीय और द्वि-पक्षीय सूचना: एक-पक्षीय सूचना या संदेष का अर्थ सूचना का केवल धनात्मक या केवल ऋणात्मक पक्ष ही व्यक्ति को बताना। द्विपक्षीय संदेष का मतलब किसी सूचना के दोनों पक्षों अर्थात धनात्मक तथा नकारात्मक, दोनों पक्षों से अवगत कराना। शोधों से स्पष्ट हुआ है कि केवल एक पक्ष बताने से संगत परिवर्तन होता है। जबकि सूचना के दोनों पक्षों को बताने पर मनोवृत्ति में असंगत परिवर्तन होता है।

(ग) संचार की शैली: केवल संदेष ही महत्वपूर्ण नहीं होता अपितु, संदेष देने की शैली भी मनोवृत्ति-परिवर्तन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। विभिन्न शोधकर्ताओं जैसे जिलमैन (1972) ने अपने शोधों से स्पष्ट किया है कि यदि संदेष देने वाला अपने वक्तव्य में प्रष्नवाचक वाक्यों का प्रयोग करता है तो इससे मनोवृत्ति परिवर्तन होता है।

कुछ विद्वानों एपल, स्ट्रीटर एवं क्राउस ने अपने शोधों से यह स्पष्ट किया कि यदि संदेष देने वाला व्यक्ति धारा प्रवाह न बोलकर रूक-रूक कर अपनी बात बोलता है तो मनोवृत्ति परिवर्तन, धारा प्रवाह बोलने से कम प्रभावी होता है।

(घ) सूचना का क्रम: यह देखा गया है कि किसी व्यक्ति, वस्तु अथवा घटना के बारे में जो सूचना दी जाती है वह मनोवृत्ति परिवर्तन में ज्यादा प्रभावषाली होती है, जबकि बाद वाली सूचना उतनी प्रभावी नहीं होती है।

(पपप) लक्षित व्यक्ति की विषेषतायें: आपने देखा होगा कि एक ही वक्ता के एक ही (या एक जैसे) संचार का प्रभाव सभी स्रोताओं पर एक जैसा नहीं होता। जैसे किसी राजनैतिक सभा या रैली में नेता द्वारा बोलीगयी बातों का प्रभाव सभी स्रोताओं पर एक जैसा नहीं होता। इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि अवष्य ही स्रोताओं या संदेष ग्रहण करने वालों में ही कुछ ऐसी विषेषतायें विद्यमान होती है जो संदेष प्राप्ति या संदेष के प्रभाव में अन्तर करती हैं। इस प्रकार के प्रभाव में स्रोता या संदेष प्राप्तकर्ता की वैयक्तिक विषेषतायें महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

(क) व्यक्तित्व: विभिन्न अध्ययनों में यह देखा गया है कि जिन व्यक्तियों में आत्मसम्मान का स्तर ऊँचा होता है उन व्यक्तियों का मनोवृत्ति परिवर्तन कठिन होता है क्यों कि जिन व्यक्तियों का आत्म-सम्मान का स्तर ऊँचा होता है उनमें आत्म-विष्वास भी अधिक होता है। फलस्वरूप, दूसरे की बातों का प्रभाव उन पर अधिक नहीं होता। आत्म सम्मान से तात्पर्य अपने स्व या आत्म के मूल्यांकन से होता है। यह आत्म का एक पक्ष है जो व्यक्ति के स्वयं के मूल्यांकन को बताता है। व्यक्ति श्रेष्ठ या अच्छा है यहाँ, यह मायने नहीं रखता बल्कि वह अपना मूल्यांकन सकारात्मक व्यक्ति के रूप में करता है तो उसका आत्म-सम्मान का स्तर ऊँचा होगा। इसी प्रकार व्यक्ति यदि अपनी गतिविधियों या गुणों में अच्छा और कुषल है लेकिन वो अपने आप को कमजोर आंकता है तो उसके आत्म सम्मान का स्तर निम्न होगा। कुछ व्यक्तियों का ऐसा स्वभाव होता है किवे किसी भी अनुनयात्मक संचार अथवा संदेष को आसानी से ग्रहण कर अपनी मनोवृत्ति में परिवर्तन कर लेते हैं। (सीयर्स तथा हिटनी, 1975)

(पअ) प्रचार: टीवी, रेडियो, समाचार पत्र, सिनेमा इत्यादि पर आजकल विज्ञापन दिखाना बहुत ही सामान्य हो गया है। जिसका एक मात्र उद्देष्य दर्षकों या श्रोताओं की मनोवृत्ति में परिवर्तन लाना या मनोवृत्ति का विकास करना है ताकि आप उस कंपनी के उत्पाद अधिक से अधिक क्रय करें। आजकल चुनाव में भी प्रचार की बहुत ही बड़ी भूमिका हो गयी है। विभिन्न राजनैतिक दल प्रचार के माध्यम से अपने नेता को विजयी बनाने के लिये प्रचार का सहारा लेते हैं ताकि मतदाताओं की मनोवृत्ति अपने पक्ष में परिवर्तित या विकसित की जा सके और चुनाव जीता जा सके। भारत सरकार और राज्य की सरकारें विभिन्न सामाजिक और स्वास्थ्य के मुद्दों को प्रचार के माध्यम से जन-जन तक पहुँचाती हैं ताकि लक्षित व्यक्ति की मनोवृत्ति में परिवर्तन या विकास कर उन सामाजिक या स्वास्थ्य मुद्दों में अपना उत्कृष्ठ अथवा अपेक्षित सहयोग कर सकें। प्रचार लिखित अथवा मौखिक, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष किसी भी रूप में हो सकता है।

(अ) भूमिका-निर्वहन: एक व्यक्ति जब षिक्षक बन जाता है तो उसकी भूमिका भी पहले से बदल जाती है। अब उसे एक आदर्ष नागरिक की भूमिका निभानी पड़ती है। ऐसा देखा गया है कि जिस तरह की भूमिका व्यक्ति निभाता है वैसी ही मनोवृत्ति उसमें विकसित हो जाती है।

(ख) अभिप्रेरणा: यदि लक्षित व्यक्ति को बताये जा रहे संदेष से कुछ लाभ होता है तो उसमें मनोवृत्ति परिवर्तन सरल और तेज हो जाता है। उदाहरण के लिये योग से स्वास्थ्य अच्छा रहता है। इसलिये, व्यक्ति योग के प्रति अपनी सकारात्मक मनोवृत्ति बनाता है। परिणाम-स्वरूप वह प्रतिदिन सुबह योग करता है।

हमने देखा है कि मनोवृत्ति परिवर्तन को प्रभावित करने वाले कई कारक हैं। कुछ कारक व्यक्ति या लक्ष्य से संबंधित, कुछ स्रोत से संबंधित तो कुछ संचार और संचार माध्यम से संबंधित हैं। यहाँ मुख्य कारकों की चर्चा की गयी है।

3.3.4. अनुनय में संज्ञानात्मक प्रक्रियायें

मनोवैज्ञानिकों ने कई अध्ययनों के बाद यह निष्कर्ष निकाला कि अनुयात्मक संचार या संदेष को व्यक्ति मुख्यतः दो ढंगों से ग्रहण अथवा संसाधित करता है। वे दो ढंग या तरीके इस प्रकार हैं -

1. क्रमबद्ध संसाधन या अनुनय का केंद्रीय मार्ग

2. स्वतः शोध संसाधन या अनुनय का परिधीय मार्ग

संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं से तात्पर्य वह समस्त मानसिक प्रक्रियायें जो जानने रूपान्तरण, और उसके उपयोग में शामिल होती हैं जैसे प्रत्यक्षीकरण, अवधान, स्मृति प्रक्रिया, चिंतन, तर्क, निर्णय आदि। अनुनय के केन्द्रीय मार्ग अथवा क्रमबद्ध संसाधन में व्यक्ति संदेष को ध्यानपूर्वक इस तरह से ग्रहण करता है कि उसमें निहित विचार और विषय-वस्तु को ठीक प्रकार से संसाधित कर लेता है। उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट होता है कि इसमें मानसिक प्रयास अधिक खर्च होता है। साथ ही साथ सूचना संसाधन क्षमता का भी अधिकाधिक उपयोग होता है।

दूसरी प्रक्रिया या संसाधन का दूसरा तरीका या ढंग स्वतः शोध संसाधन है इसे संसाधन का परिधीय मार्ग भी कहते हैं। इसमें व्यक्ति क्रमबद्ध संसाधन या केंद्रीय पथ के समान सूचना के विचार या विषय वस्तु पर ध्यान केंद्रित नहीं करता अपितु वह काम चलाऊ या लघुपथ का प्रयोग करता है। जिसमें मानसिक प्रयास अपेक्षाकृत कम खर्च होता है। यह एक ऐसा मार्ग या पथ है जिसमें व्यक्ति अनुनयात्मक सूचना के प्रति स्वतः ही प्रतिक्रिया करता है। अनुनय के इन दो ढंगों या मार्गों का मनोवैज्ञानिकों द्वारा विष्लेषण किया गया और इसकी व्याख्या के लिए एक प्रतिरूप का प्रतिपादन किया जिसे विस्तरण-संभाव्यता प्रतिरूप कहा जाता है। यह प्रतिरूप पेट्टी, काकिओपो (1966) एवं पेट्टी और उनके सहयोगियों (2005) ने दिया। जबकि स्वतः शोध-क्रमबद्ध प्रतिरूप चाइकेन, लिबरमैन, ईगती (1989), एवं ईमली और चएकेन (1998) ने इस प्रष्न की व्याख्या के लिये कि हम कब चिंतन के इन अलग-अलग मार्गों में संलग्न होते हैं, दिया है। ये माडल या प्रतिरूप अनुनय का संज्ञानात्मक सिद्धान्त कहलाता है। जिसे संक्षेप में ई.एल.एम. प्रतिरूप कहा जाता है।

जब अनुनयात्मक संचार से संबंधित हमारी अभिप्रेरणा और सूचना को संसाधित करने की क्षमता उच्च होती है तब हम ज्यादा प्रयास वाले और क्रमबद्ध संसाधन में संलग्न होते हैं। इस प्रकार के संसाधन में विषय के बारे में बहुत जानकारी तथा समय की आवष्यकता होती है।

इसके विपरीत, जब हमारा अभिप्रेरणा स्तर कम होता है, योग्यता की कमी, या फिर सावधानी पूर्वक संसाधित करने की क्षमता में कमी होती है, तब हम इस तरह के संसाधन में संलग्न होते है जिसमें कम प्रयास की आवष्यकता होती है। इसे स्वतः शोध संसाधन कहा जाता है। विज्ञापनकर्ता, बेचेनेवाले, राजनेता आदीलोग हमारी मनोवृत्ति को परिवर्तित करने के लिये इसी स्वतः शोध संसाधन के मार्ग का

उपयोग करते हैं क्यों कि जब हम इस ढंग में सोचते हैं या संसाधित करते हैं तब मनोवृत्ति को परिवर्तित कर पाना अक्सर आसान होता है।

इन दो पथों या मार्गों की ई.एल.एम. (विस्तारित संभाव्यता मा ॅडल) से व्याख्या की जा सकती है। अनुनय के केन्द्रीय पथ का उपयोग तब होता है जब व्यक्ति संदेष पर ध्यान देता है और क्रमबध्द रूप से इसकी विषय-वस्तु को संसाधित करता है।

अनुनय के प्रति प्रतिरोध -

जैसा कि पिछले वर्णन और व्याख्या में बताया गया है कि मनोवृत्ति परिवर्तन होना, कई कारकों पर निर्भर करता है। मनोवृत्ति अपेक्षाकृत स्थायी होती है। इसमें परिवर्तन भी होता है। यह कई बातों पर निर्भर करता हैं कि मनोवृत्ति में परिवर्तन कब, कैसे और कितना होता है। मनोवृत्ति-परिवर्तन सरल भी हो सकता है अर्थात सरलता से मनोवृत्ति में परिवर्तन हो सकता हैं। तथा यह परिवर्तन कठिन भी हो सकता है। ऐसे भी बहुत से कारक हैं जो मनोवृत्ति परिवर्तन का प्रतिरोध करते हैं जिससे मनोवृत्ति में परिवर्तन कठिन होता है। यहाँ पर हम ऐसे ही कुछ कारकों पर प्रकाष डाल रहे हैं।

1. पूर्व चेतावनी अथवा अनुनय के मंतव्य की पूर्व जानकारी: जब व्यक्ति को इस बात की जानकारी पहले से ही हो कि उसकी मनोवृत्ति में परिवर्तन किया जाना है तब किये गये अनुनयात्मक संचार से मनोवृत्ति में परिवर्तन कठिन हो जाता है। जब व्यक्ति को पूर्व में ही इस प्रकार की सूचना किसी भी माध्यम से प्राप्त हो जाती है कि उसके विचारों या मनोवृत्ति में अमुक परिवर्तन करना है तो व्यक्ति इसके लिये पहले से ही तैयार हो जाता है और किये जा रहे अनुनयात्मक संचार से वह प्रभावित नहीं होता। यह देखा गया है कि यदि पहले से सूचना या पूर्व चेतावनी नहीं दी जाती है तो मनोवृत्ति परिवर्तन सरल होता है। जब व्यक्ति यह जानता है कि यह भाषण या लिखित अपील उसके दृष्टिकोण को बदलने के उद्देष्य से संरचित किया गया है तो वह बहुत कम प्रभावित होता है, उसकी तुलना में जिसको इस प्रकार की पूर्व जानकारी नहीं होती है। पूर्व चेतावनी हमको अनुनयात्मक संचार अथवा संदेष विरोध में तर्क बनाने का अवसर प्रदान करती है। यह ऐसे तर्क होते हैं जो उस संदेष को नकारते है। और इसके प्रभाव को कम कर सकते हैं। ये पूर्व चेतावनी या जानकारी हमें उन सूचनाओं को याद करने का भी समय और अवसर देती है जो नये संदेष के प्रभाव को रोकती है।

2. अनुनयन का चयनात्मक परिहार: अनुनय या मनोवृत्ति-परिवर्तन के प्रतिरोध का एक ढंग चयनात्मक परिहार भी है जिसमें व्यक्ति दिये जा रहे संदेष अथवा सूचना से अपना ध्यान हटा लेता है, जो संदेष उसकी वर्तमान मनोवृत्ति को चुनौती देते हैं। आप ने देखा होगा कि जब कोई हमारे विचार के अनुकूल विचार या सूचना प्रस्तुत नहीं करता तो हम उससे अपना ध्यान हटा लेते हैं जैसे, जब कोई सूचना हमारी मनोवृत्ति के संगत नहीं होती तब हम उस सूचना को छोड़कर दूसरी सूचना या अन्य कार्य भर ध्यान देने लगते हैं।

3. प्रतिघात: व्यक्ति अपनी व्यक्तिगत स्वतंत्रता में किसी भी तरह के हस्तक्षेप को सामान्यता स्वीकार नहीं करते। वे अपनी व्यक्तिगत स्वतंत्रता को मिलने वाली चुनौती के प्रति नकारात्मक प्रतिक्रिया करते हैं। प्रतिघात अधिकतर, मनोवृत्ति परिवर्तन के उद्देष्य से लिये गये संचार के प्रति प्रतिरोध उत्पन्न करता है।

प्रतिघात से नकारात्मक या उल्टी दिशा में मनोवृत्ति परिवर्तन हो जाता है (बेम, 1966)। व्यक्ति को मनोवृत्ति परिवर्तन के उद्देष्य से जब कोई संदेष या सूचना दी जाती है तो व्यक्ति को उस सूचना पर भरोसा कम हो जाता है। कुछ मनोवैज्ञानिकों (बेम, 1966) एवं (पज्यूगन तथा डेविसन, 2004) ने बताया कि प्रतिघात से उल्टी या विपरीत मनोवृत्ति बन जाती है।

4. प्रतितर्क: यदि सूचना उसे संगत नहीं लगती तो, व्यक्ति उसे नकारता है और इस ढंग से वो अनुनय का प्रतिरोध करता है। लेकिन कई साक्ष्य इस बात को स्पष्ट करते हैं कि व्यक्ति इस निष्क्रीय ढंग के अलावा भी कुछ तरीके अपनाता है- वह उसके प्रति प्रतितर्क करता है। वह सूचना या संदेष के विरोध में तर्क करता है और उस अनुनय का प्रभाव अपने ऊपर पढ़ने से रोकता है। हम अधिक सक्रिय रणनीति बनाते हैं अर्थात हम उन विचारों या दृष्टिकोणों, जो हमारे विचार या दृष्टिकोण के विरोधी होते हैं के प्रति प्रतितर्क प्रस्तुत करते हैं। (ईग्ली, चेन, चाइकेन एवं शा ॅ-बार्नर्स, 1999)

मनोवृत्ति परिवर्तन की सैध्दान्तिक व्याख्या

पिछले अनुच्छेदों में मनोवृत्ति-परिवर्तन के सम्प्रत्यय, मनोवृत्ति परिवर्तन को प्रभावित करने वाले कारकों और मनोवृत्ति परिवर्तन का प्रतिरोध करने वाले कारकों की चर्चा की गयी । मनोवृत्ति परिवर्तन क्यों होता है? कैसे होता है? जैसे प्रष्नों के उत्तर इस अनुच्छेद में प्राप्त किये जा रहे हैं। इसकी सैंध्दान्तिक व्याख्या कई तरह से अर्थात कई सिद्धान्तों से अपने-अपने ढंग से की गयी है। उन सभी सिद्धान्तों का वर्णन यहाँ कर पाना संभव नहीं है इसलिये, मुख्य सिधान्तों की ही चर्चा यहाँ की जा रही है। मनोवृत्ति परिवर्तन की सैद्धान्तिक व्याख्या में जिन सिद्धान्तों का प्रतिपादन हुआ उनमें मुख्य इस प्रकार से हैं।

1. संज्ञानात्मक संगति सिद्धान्त: संज्ञानात्मक संगति सिद्धान्त की श्रेणी में कई सिद्धान्तों को रखा गया है। ये सिद्धान्त असंगति को मनोवृत्ति परिवर्तन का कारण मानते हैं। क्योंकि असंगति एक विषेष मानसिक अवस्था उत्पन्न करती है जिसे व्यक्ति बदलना चाहता है। असंगति व्यक्ति को बदलाव के लिये प्रोत्साहित करती है और यह बदलाव मनोवृत्ति परिवर्तन के रूप में प्रकट होता है। इस श्रेणी के मुख्य सिद्धान्त इस प्रकार है;

(क) हाईडर का संतुलन का सिद्धान्त: यह एक ऐसा प्राचीन सिद्धान्त है जिसे इस श्रेणी के अन्य सिद्धान्तों का उदगम या जनक कहा जा सकता है। इसका प्रतिपादन हाईडर ने 1946 में किया था। 1958 तक इसने पूर्ण रूप से एक स्थापित सिद्धान्त का रूप ले लिया था। हाईडर ने अपने इस सिद्धान्त में तीन तत्वों के माध्यम से व्याख्या की है। ये तीन तत्व इस प्रकार हैं;

1. व्यक्ति या प्रत्यक्षीकरण करने वाला (च्)
2. दूसरा (अन्य) व्यक्ति (व्)
3. कोई वस्तु अथवा व्यक्ति (ग्)
4. हाईडर ने इनमें दो प्रकार के संबंध बताये हैं, जिसमें एक इकाई संबंध है तथा दूसरा भावात्मक संबंध। इकाई संबंध यह बताता है कि तीनों तत्वों के बीच समानता, स्वामित्व, संबंधन या समान सदस्यता किस मात्रा तक है। जबकि भावात्मक संबंध इन तीनों तत्वों के बीच की पसंद या नापसंद को बताता है। या तो पसंद होगी या नापसंद। इन्हे धनात्मक और ऋणात्मक चिन्ह के रूप में दिखाया गया है।

इकाई संबंध तथा भावात्मक संबंध के आधारपर पी और एक्स के बीच आठ संबंध हो सकते हैं। ये इस प्रकार है।

च् च् च् च्

$ $ $ - -- - $

व् $ ग् व् - ग् व् $ ग् व् - ग्

च् च् च् च्

$ $ $ - - $ --

व् - ग् व् $ ग् व् $ ग् व् - ग्

इन तीनों तत्वों अर्थात पी, ओ और एक्स के बीच संबंधों के चिन्ह अर्थात धन और ऋण का गुणा करने पर गुणनफल धनात्मक होता है तो अवस्था संतुलन की होगी और यदि यह गुणनफल ऋणात्मक प्राप्त होता है तो इसका मतलब है कि इसमें संतुलन नहीं है। इनका गुणनफल बीजगणितीय नियम से होता है जैसे - धन का गुणा ऋण से करने पर गुणनफल हमेषा ऋणात्मक ही होगा। तथा ऋण तथा ऋण और धन तथा धन का आपस में गुणा करने पर गुणनफल सदैव धनात्मक ही होगा।

इस सिद्धान्त के अनुसार संतुलन या संगति की स्थिति सुख प्रदान करती है। इसके विपरीत असंतुलन या असंगति की स्थिति तनाव या अषांति या बेचैनी उत्पन्न करती है। फलस्वरूप् व्यक्ति संतुलन की स्थिति बनाये रखना चाहता है तथा असंतुलन की स्थिति को दूर करना चाहता है।

(2) भावात्मक संज्ञानात्मक संगति सिद्धन्त:

यह सिद्धान्त भी मनोवृत्ति-परिवर्तन तथा मनोवृत्ति दृढ़ता की व्याख्या करता है। इसका प्रतिपादन रोजेनबर्ग ने 1960 में किया था। जैसा कि पिछली इकाइयों में बताया गया है कि मनोवृत्ति के तीन संघटक होते हैं अर्थात संज्ञानात्मक, भावात्मक तथा व्यवहारात्मक। यह सिद्धान्त इत तीनों संघटकों को स्वीकार करता है। रोजेनबर्ग का सिद्धान्त केवल दो घटकों अर्थात संज्ञानात्मक एवं भावात्मक संघटक को ही मुख्य मानता है। अर्थात यह सिद्धान्त मनोवृत्ति के केवल भावात्मक और संज्ञानात्मक घटक के संबंधों पर ही बल देता हैं। रोजेनवर्ग का मानना है कि मनोवृत्ति के भावात्मक घटक में यदि परिवर्तन होता है तो उसके संज्ञानात्मक घटक में भी परिवर्तन होगा। इसका कारण यह है कि भावात्मक घटक में परिवर्तन होने पर संज्ञानात्मक घटक के साथ असंगति होती है। ऐसी स्थिति होने पर व्यक्ति में तनाव होने लगता है अर्थात उसकी साम्यावस्था में उतार-चढ़ाव होने लगता है जिससे वह तनाव को दूर करना चाहता है ताकि

साम्यावस्था प्राप्त की जा सके। इसके लिये वह संज्ञानात्मक घटक में परिवर्तन लाना चाहता है। इस परिवर्तन के परिणामस्वरूप मनोवृत्ति में भी परिवर्तन हो जाता है।

रोजेनबर्ग के सिद्धान्त में बताये गये गोचर को हम अपने जीवन की घटनाओं में देख सकते हैं। उदाहरण के लिये जब हमें किसी व्यक्ति से भावात्मक लगाव हो जाता है अर्थात भावात्मक संघटक में परिवर्तन हो जाता है तो हमारी मनोवृत्ति भी उसके प्रति परिवर्तित हो जाती है। रोजनेवर्ग ने एक विषेष प्रविधि को भी अपनाया है, जिसके द्वारा संज्ञानात्मक तत्वों का मापन किया जाता है। इसमें एक संज्ञानात्मक सूचकांक ज्ञात किया जाता है। संज्ञानात्मक सूचकांक से इस बात का पता चलता है कि व्यक्ति की मनोवृत्ति उसके मूल्यों से किस सीमा तक संगत अथवा किस सीमा तक असंगत है। यदि तीव्र धनात्मक भाव है तो ऐसी स्थिति में व्यक्ति में संज्ञानात्मक सूचकांक भी अधिक होगा। इसी प्रकार यदि मनोवृत्ति वस्तु के प्रति व्यक्ति में तीव्र ऋणात्मक भाव है तो संज्ञानात्मक सूचकांक भी कम होगा।

(3) फेस्टिंगर का संज्ञानात्मक-असंवादिता सिद्धान्त:

संज्ञानात्मक असंवादिता मनोविज्ञान का एक महत्वपूर्ण सम्प्रत्यय है और संज्ञानात्मक असंवादिता सिद्धान्त मनोवृत्ति परिवर्तन का एक बहुत ही प्रभावी सिद्धान्त है जिसका प्रतिपादन लियोन फेस्टिंगर ने 1957 में किया था। इसे संज्ञानात्मक विसंवादिता या विसंगति भी कहते हैं। जिसकी अंग्रेजी कोगनीटिव डिसोनेंस है। यह सिद्धान्त मनोवृत्ति के तीन घटकों अर्थात भावात्मक, संज्ञानात्मक और व्यवहारात्मक में से संज्ञानात्मक घटक पर ही बल देता है। इस सिद्धान्त का आधारभूत तत्व या विष्वास यह है कि मनोवृत्ति के संज्ञानात्मक घटक आपस में संवादी होने चाहिये। अर्थात उन्हें आपस में समान होना चाहिये। जब व्यक्ति के संज्ञान समान नहीं होते हैं अर्थात वे विरोधी होते हैं तो ऐसी स्थिति में व्यक्ति संज्ञानात्मक-विसंवादिता का अनुभव करता है। संज्ञानात्मक तत्व का तात्पर्य किसी व्यक्ति, वस्तु, घटना, व्यक्ति के प्रति व्यक्ति का मत या विष्वास से है। इसी प्रकार विसंवादिता से तात्पर्य दो संज्ञानों के बीच विसंगति से है। विसंवादिता का एक उदाहरण:

संज्ञान 1: परिश्रम सफलता की कुंजी है।

संज्ञान 2: मैं बहुत आलसी हूँ।

इन दोनों ही संज्ञानों में आपस में विसंवादिता है। और इनमें संतुलन करने का यही श्रेष्ठ उपाय है कि संज्ञान 2 मे परिवर्तन कर लिया जाय अर्थात आलस्य को छोड़कर परिश्रम किया जाय। उपरोक्त उदाहरण संज्ञानात्मक विसंवादिता का अच्छा उदाहरण है और यह स्थिति एक मानसिक तनाव उत्पन्न करती है जिसे दूर करना आवष्यक होता है। संज्ञानात्मक तत्वों के बीच दो प्रकार के संबंध हो सकते हैं-

1. संगत संबंध और

2. असंगत संबंध।

असंवादिता को दूर करना, असंवादिता की मात्रा पर निर्भर करता है।

असंवादिता की मात्रा:

1. यदि संवादी तत्वों की संख्या की तुलना में असंवादी तत्वों की संख्या बढ़ती है तो, असंवादिता की मात्रा भी बढती है। अर्थात असंवादी संज्ञानों के बीच भिन्नता ज्यादा होने पर, असंवादिता भी ज्यादा होगी।
2. असंवादी संज्ञानों की संख्या बढ़ने से असंवादिता की मात्रा बढ़ती है।
3. संवादी संज्ञानों की मात्रा अधिक होने पर असंवादिता की मात्रा कम होती है।
4. यह भिन्न-भिन्न संज्ञानात्मक तत्वों से प्रभावित होती है।

जैसा कि पहले बताया गया है कि व्यक्ति असंवादिता को दूर करना चाहता है। मनोवैज्ञानिकों ने इसको दूर करने अर्थात संवादिता लाने के लिये प्रमुख तीन उपायों का सुझाव दिया है।

1. किसी भी एक संज्ञान या संज्ञानात्मक तत्व में यदि परिवर्तन लाया जाये तो दूसरे संज्ञानात्मक तत्व के संगत बनाया जा सकता है।
2. एक या अधिक संवादी संज्ञानात्मक तत्वों को जोड़कर असंवादिता कि मात्रा को कम किया जा सकता है।
3. संवादी संज्ञानों के महत्व को बढ़ाकर असंवादिता को दूर किया जा सकता है।

मनोवृत्ति विकास एवं मनोवृत्ति परिवर्तन की व्याख्या अधिगम के एक अन्य सिद्धान्त या नियम के द्वारा भी होती है। यहनियम क्रिया प्रसूत अनुबंधन का नियम है। इस नियम के अनुसार प्राणी वह अनुक्रियायें करता है जिनसे उसे अच्छा परिणाम मिलता है। यदि परिणाम स्वरूप उसे दण्ड मिलता है तो वह उस अनुक्रिया को नहीं करता है। इस सिद्धान्त या नियम की शुरूआत थार्नडाईक ने की थी जिसको बाद में स्कीनर ने परिमार्जित कर विस्तृत रूप दिया।

(5) त्रिप्रक्रिया सिद्धान्त:

मनोवृत्ति निर्माण एवं परिवर्तन के त्रि प्रक्रिया सिद्धान्त का प्रतिपादन केलमैन ने 1961 में किया था। जैसा कि इस सिद्धान्त के नाम से ही स्पष्ट होता है कि इसमें तीन प्रक्रियाओं को महत्वपूर्ण माना गया है जिनके आधार पर मनोवृत्ति-निर्माण एवं मनोवृत्ति-परिवर्तन की व्याख्या की गयी है। ये तीन प्रक्रियायेंइस प्रकार हैं- अनुपालन, आत्मीकरण और आन्तरीकरण

(1) अनुपालन: केलमैन के अनुसार ''जब व्यक्ति किसी समूह या व्यक्ति के भाव या विचार से असहमत होने के बावजूद भी पुरस्कार अथवा लालच या दंड के भय से उसे स्वीकार कर लेता है तो इसे अनुपालन कहा जाता है।'' अनुपालन में व्यक्ति का व्यवहार दूसरे व्यक्ति के सामने उसके प्रभाव में होता है लेकिन उसकी अनुपस्थिति में उसका व्यवहार बदल जाता है। अर्थात मनोवृत्ति में परिवर्तन यहाँ अस्थायी होता है।

(2) आत्मीकरण: आत्मीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति किसी के विचारों या व्यवहारों को अपनी स्वयं की इच्छा से स्वीकार लेता है। अर्थात इनको अपने व्यवहार में लाता है। इस प्रक्रिया में व्यक्ति के ऊपर कोई दबाव नहीं होता है। अर्थात न पुरस्कार पाने की लालसा और न ही दण्ड से बचने का भय। यहाँ व्यक्ति आत्म संतुष्टि के लिये कोई व्यवहार या विचार का अपनाता है। यहाँ व्यक्ति की मनोवृत्ति में मात्रात्मक एवं दिषात्मक परिवर्तन होता है। जैसे जब कोई व्यक्ति किसी अच्छे पद पर आसीन हो जाता है

तो लोगों की मनोवृत्ति उसके प्रति अनुकूल हो जाती है। इसमें अनुपालन की तरह कोई बाह्य दबाव व्यक्ति पर नही होता। लेकिन, मनोवृत्ति में परिवर्तन अस्थायी ही होता है।

(3) आन्तरीकरण: यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति, विचारों, व्यवहारों इत्यादि को अपनी इच्छा से स्वीकार कर लेता है। वह इन्हें इसलिये स्वीकार लेता है क्योंकि यह उसके व्यक्तिगत मूल्य तंत्रों के अनुरूप होते हैं। कैलमैन के अनुसार ''जब व्यक्ति अपने व्यक्तिगत मूल्यों के समान दूसरे व्यक्ति या समूह के विचारों, प्रभावों एवं व्यवहारों को स्वीकार लेता है तो इसे आन्तरीकरण की संज्ञा दी जाती है।'' आन्तरीकरण द्वारा मनोवृत्ति में हुआ परिवर्तन अपेक्षाकृत स्थायी होता है। आन्तरीकरण को एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जा रहा है। - यदि मां-बाप चाहते हैं कि बच्चों में अच्छे संस्कार के लिये धार्मिक ग्रंथों जैसे कि भागवत गीता का स्कूल में एक विषय के रूप में अध्ययन कराया जाये और यदि स्कूल प्रषासन या सरकार इसको एक विषय के रूप में पाठ्यक्रम में शामिल करता है तो उन लोगों की मनोवृत्ति सरकार या स्कूल प्रषासन के लिये सकारात्मक बन जायेगी क्योंकि यहाँ मूल्य-तंत्र के अनुरूप कार्य हो रहा है, इसलिये व्यक्ति इसे गर्व से स्वीकार करता है।

3.3.5. सारांश

मनोवृत्ति अर्जित या सीखी गयी प्रवृत्ति है। यह अपेक्षाकृत स्थायी होती है। मनोवृत्ति में तीन घटक शामिल होते हैं- संज्ञानात्मक, भावात्मक तथा व्यवहारात्मक। मनोवृत्ति का निर्माण भी होता है और उसमें परिवर्तन भी होते हैं। मनोवृत्ति में परिवर्तन दो प्रकार के होते हैं। मनोवृत्ति में संगत परिवर्तन भी हो सकता है और असंगत परिवर्तन भी। संगत परिवर्तन से तात्पर्य मनोवृत्ति की मात्रा में परिवर्तन से है अर्थात यदि पूर्व में मनोवृत्ति किसी मनोवृत्ति-वस्तु के प्रति सकारात्मक थी तो बाद में वह और अधिक सकारात्मक हो जाये अथवा यदि पूर्व में नकारात्मक थी तो उसी दिषा में परिवर्तित अर्थात और अधिक नकारात्मक हो जाये। असंगत परिवर्तन से तात्पर्य मनोवृत्ति की दिषा में परिवर्तन से है। अर्थात यदि पूर्व में मनोवृत्ति-वस्तु के प्रति किसी व्यक्ति की मनोवृत्ति धनात्मक या अनुकूल रहे और बाद में ऋणात्मक या प्रतिकूल हो जाये। इसी प्रकार यदि पूर्व में मनोवृत्ति ऋणात्मक है और बाद में सकारात्मक या अनुकूल हो जाये।

मनोवृत्ति-परिवर्तन को कई कारक प्रभावित करते हैं। जिसमें से अतिरिक्त सूचना, समूह में परिवर्तन, संचार, संचारक की विषेषतायें, संचार की शैली, एक-पक्षीयऔर दो-पक्षीय संचार, लक्षित व्यक्ति की विषेषतायें, प्रचार, भूमिका-निर्वहन, अभिप्रेरणा आदि मुख्य कारक है जो मनोवृत्ति परिवर्तन को प्रभावित करते हैं।

अनुनयात्मक संचार में संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं की भूमिका को मनोवैज्ञानिकों ने स्पष्ट किया है। सूचना को संसाधित करने के दो ढंगों या पथों की चर्चा की गयी है। जिनमें से एक क्रमबध्द संसाधन या अनुनय का केंद्रीय मार्ग है जबकि दूसरा स्वतः शोध संसाधन या परिधीय मार्ग है। अनुनय के केंद्रीय मार्ग अथवा क्रमबद्ध संसाधन में व्यक्ति संदेष को ध्यानपूर्वक ग्रहण करता है और उसमें निहित संदेष या विषय-वस्तु को ठीक प्रकार से संसाधित करता है। इस संसाधन में मानसिक प्रयास अधिक करना पड़ता है। संसाधन का दूसरी ढंग या मार्ग स्वतः शोध या परिधीय मार्ग है। यहाँ वह काम चलाऊ या लघुपथ का

प्रयोग करता है। इसमें मानसिक प्रयास अपेक्षाकृत कम खर्च होता है। यहाँ पर ई एल एम प्रतिरूप का भी वर्णन किया गया है। जब अनुनयात्मक संसार से संबंधित हमारी अभिप्रेरणा और सूचना को संसाधित करने की क्षमता उच्च होती है तब हम क्रमबद्ध संसाधन में संलग्न होते हैं। इसके विपरीत, जब हमारा अभिप्रेरणका स्तर कम होता है, अथवा आवष्यक योग्यता की कमी होती है तब हम स्वतः शोध संसाधन को अपनाते हैं। इसमें कम प्रयास की आवष्यकता होती है। विस्तारित संभाव्यता प्रतिरूप के द्वारा इन दोनों संसाधनों और मनोवृत्ति परिवर्तन की व्याख्या प्रस्तुत की गयी है।

व्यक्ति मनोवृत्ति परिवर्तन के उद्देष्य से किये गये संचार या अनुनय के प्रति प्रतिरोध भी व्यक्त करता है। ऐसे बहुत से कारक है जो मनोवृत्ति परिवर्तन का प्रतिरोध करते है। जिनमें से पूर्व चेतावनी, अनुनय का चयनात्मक परिहार, प्रतिघात, प्रतितर्क आदि मुख्य कारकों का वर्णन किया गया है।

मनोवृत्ति परिवर्तन कैसे होता है? क्यों होता है? आदि प्रष्नों के उत्तर देने के लिये यहाँ मनोवृत्ति परिवर्तन की सैद्धान्तिक व्याख्या की गयी है। सैद्धांतिक व्याख्या में कई सिद्धान्तों का वर्णन किया गया है जिनकी कई श्रेणियाँ है। यहाँ मुख्य श्रेणियों और उन श्रेणियों के मुख्य-मुख्य सिद्धान्तों का उल्लेख किया गया है। सिद्धान्तों की पहली श्रेणी में संज्ञानात्मक संगति सिद्धान्त, फेस्टिंगर का संज्ञानात्मक विसंवादिता सिद्धान्त; दूसरी श्रेणी में सामाजिक-सीखना सिद्धान्त तीसरी श्रेणी में केलमैन के त्रि-प्रक्रिया सिद्धान्त का उल्लेख किया गया है। संज्ञानात्मक संगति सिद्धान्त असंगति को मनोवृत्ति परिवर्तन का कारण मानता है। इस श्रेणी का पहला सिद्धान्त हाईडर का है जो तीन तत्वों के बीच संबंधों के आधार पर मनोवृत्ति परिवर्तन की व्याख्या करता है। वे तीन तत्व व्यक्ति (पी), दूसरा व्यक्ति (ओ) तथा कोई वस्तु या व्यक्ति (एक्स)। इन्होंने इन तीनों तत्वों के बीच 8 तरह के संबंध के आधार पर मनोवृत्ति संगठन और परिवर्तन की व्याख्या की है। इस श्रेणी का दूसरा सिद्धान्त भावात्मक संज्ञानात्मक संगति सिद्धान्त है। जिसका प्रतिपादन रोजेसवर्ग ने किया है। यह सिद्धान्त मनोवृत्ति परिवर्तन में, मनोवृत्ति के केवल दो घटकों अर्थात भावात्मक एवं संज्ञानात्मक घटक को ही महत्वपूर्ण मानता है। इस सिद्धान्त के अनुसार आदि भावात्मक घटक में परिवर्तन होता है तो संज्ञानात्मक घटक में भी परिवर्तन होगा। इस श्रेणी का अन्य सिद्धान्त फेस्टिंगर का संज्ञानात्मक विसंवादिता का सिद्धान्त है। यह सिद्धान्त संज्ञानात्मक घटक पर ही बल देता है। यह सिद्धान्त संज्ञानात्मक घटक के संज्ञानों में संगति होना चाहिये, को आधारभूत तत्व मानता है। जब व्यक्ति के संज्ञान समान नहीं होते अर्थात इनमें विसंवादिता होती है तो उसमें एक तरह का तनाव उत्पन्न होता है जिसके कारण वह इसमें संगति लाना चाहता है। फलस्वरूप, मनोवृत्ति में परिवर्तन होता है। सिद्धान्तों की एक अन्य श्रेणी सामाजिक-सीखना सिद्धान्त की है जिसमें अधिगम के मुख्य नियम-प्राचीन अनुबंधन एवं क्रिया प्रसूत/नैमिन्तिक अनुबंधन के आधार पर मनोवृत्ति परिवर्तन की व्याख्या की गयी है। एक अन्यश्रेणी के अन्तर्गत विविध प्रकार के सिद्धान्तों को रखा गया है। जिसमें से एक मुख्य सिद्धान्त अर्थात कैलमैन के त्रिप्रक्रिया सिद्धान्त का उल्लेख किया गया है। इस सिद्धान्त में तीन प्रक्रियाओं- अनुपालन, आत्मीकरण तथा आन्तरीकरण के आधार पर मनोवृत्ति संगठन एवं मनोवृत्ति परिवर्तन की व्याख्या की गयी है।

बहुविकल्पीय प्रश्न:

प्रश्न 1: मनोवृत्ति में संगत परिवर्तन से तात्पर्य है।

क) मात्रा में परिवर्तन ख) दिशा में परिवर्तन

ग) क एवं ख दोनों घ) इनमें से कोई नहीं

प्रश्न 2: त्रिप्रक्रिया सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है।

क) रोजेनबर्ग ने ख) कैलमैन ने

ग) फ्रायड ने घ) स्कीनर ने

प्रश्न 3: कथनः पूर्व चेतावनी मनोवृत्ति परिवर्तन का प्रतिरोध करती है।

कारण: व्यक्ति अपनी व्यक्तिगत स्वतंत्रता में हस्तक्षेप नहीं चाहता।

क) कथन और कारण, दोनों सहीं हैं, व्याख्या भी सही है।

ख) कथन और कारण, दोनों सही हैं, लेकिन व्याख्या नही हो रही है।

ग) कथन सही है। कारण गलत है।

घ) कथन गलत है। कारण सही है।

प्रश्न 4: रोजेनबर्ग का सिद्धान्त मनोवृत्ति के किस घटक पर बल नहीं देता?

क) भावात्मक ख) संज्ञानात्मक

ग) व्यवहारात्मक घ) इनमें से कोई नहीं

प्रश्न 5: प्राचीन अनुबंधन का सिद्धान्त किसके प्रयोगों पर आधारित है?

क) पैवलन ख) स्कीनर

ग) बैण्डूरा घ) थार्नडाईक

लघुउत्तरीय प्रश्न

प्रश्न 1: मनोवृत्ति में संगत एवं असंगत परिवर्तन में अन्तर स्पष्ट कीजिये।

प्रश्न 2: मनोवृत्ति परिवर्तन के प्रति प्रतिरोध को समझाइये।

प्रश्न 3: मनोवृत्ति के सामाजिक अधिगम सिद्धान्त को संक्षेप में प्रस्तुत कीजिये।

प्रश्न 5: मनोवृत्ति में परिवर्तन क्यों होता है? संक्षिप्त टिप्पणी दीजिये।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न:

प्रश्न 1: मनोवृत्ति परिवर्तन के त्रिप्रक्रिया सिद्धान्त का वर्णन करें।

प्रश्न 2: मनोवृत्ति परिवर्तन तथा इसको प्रभावित करने वाले कारकों को विस्तार से समझाइये।

प्रश्न 3: रोजेनबर्ग के भावात्मक-संज्ञानात्मक संगति सिद्धान्त की व्याख्या कीजिये।

प्रश्न 4: मनोवृत्ति परिवर्तन की व्याख्या पी, ओ, एक्स - सिद्धान्त के अनुसार कीजिये।

प्रश्न 5: संज्ञानात्मक विसंवादिता सिद्धान्त की समीक्षा कीजिये।

3.3.6. संदर्भ ग्रंथ सूची

1. त्रिपाठीए लाण्बण्तथा अन्या ;1998द्धण् आधुनिक सामाजिक मनोविज्ञानए आगराए हर प्रसाद भार्गव।
2. सिंहए अण्कुण् ;2016द्धण् समाज मनोविज्ञान की रूपरेखाए दिल्लीवए मोतीलाल बनारसीदास।
3. सुलेमानए मुण्;2009द्ध उच्चसतर समाज मनोविज्ञानए दिल्लीवए मोतीलाल बनारसीदास।
4. ठंतवदए त्ण् ।ण्- डपेतंएळण्;2014द्ध च्ेलबीवसवहलरू प्दकपंद ैनइबवदजपदमदज म्कपजपवदण् च्मंतेवद मकनबंजपवदण्
5. ठंतवदए त्ण् ।ण् - ठलतदमए क् ;2000द्धण् ैवबपंस च्ेलबीवसवहलए च्तमदजपबम भ्ंसस व िप्दकपं च्अजण्स्जकण्ए छमू क्मसीपण्
6. डलमतेए क्ण् कंअपक ;2008द्धण् ैवबपंस च्ेलबीवसवहलए जीम डबळतं.ू भ्पसस ब्वउचंदपमेए प्दबण्

खंड-4 समूह एवं नेतृत्व

इकाई-1 समूह : परिभाषा, प्रकृति एवं कार्य

इकाई की रूपरेखा

4.1.0. उद्देश्य

4.1.1. प्रस्तावना

4.1.2. समूह की परिभाषा

4.1.3. समूह की प्रकृति

4.1.4. समूह के कार्य

4.1.5. समूह के प्रकार

4.1.6. समूह की संरचना

4.1.7. समूह निर्माण

4.1.8. सारांश

4.1.9. स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

4.1.10. शब्दावली

4.1.11. संदर्भ ग्रंथ सूची

4.1.0. उद्देश्य

- समूह की विभिन्न परिभाषाओं को भिन्न-भिन्न चिंतकों के दृष्टिकोणों से समझ सकेंगे.
- समूह के भिन्न-भिन्न सन्दर्भों में कार्यों में भी परिवर्तन होता है, इसकी भी सामान्य समझ विकसित कर पाएंगे.
- समूह के संरचनात्मक पहलुओं से तकनीकी रूप से रूबरू हो पाएंगे.
- समूह निर्माण की प्रक्रिया एवं उसमे निहित आवश्यक शर्तों को समझ सकेंगे.
- समूह के प्रचालिक एवं अप्रचालिक कार्यों को वृहतता में समझ सकेंगे.
- समूह की प्रकृति के बारे में एक सामान्य समझ विक्सित कर सकेंगे.

4.1.1. प्रस्तावना

मानव समाज की प्राथमिक इकाई परिवार को माना गया है. यदि ध्यान से देखा जाये तो परिवार भी एक लघु समूह ही है. अतः मानव समाज में समूह एक अनिवार्य व्यवस्था है. अनेक विद्वानों का यह भी मत है की मानव को पशु से अलग करने वाला प्राथमिक कारक समूह है हालांकि कुछ विद्वान पशुओं के झुण्ड को भी समूह मानते हैं. समूह की प्रक्रिया अव्यक्त होती है. समाज में जीव के अस्तित्त्व का स्थायित्त्व बिना समूह के शायद संभव नहीं है. निश्चित भूभाग, निश्चित आकार, उद्देश्यपूर्ण कार्य, एवं

पारस्परिक अंतःक्रिया समूह आदि समूह का सामान्य पहचान को दर्शाते हैं. उक्त क्रियाओं के परिणाम स्वरुप समूह का निर्माण होता है जो क्षणिक या दीर्घकालिक हो सकता है.

4.1.2. समूह की परिभाषा

कुछ प्रमुख समाज मनोवैज्ञानिकों की परिभाषा निम्न है-

शेरिफ तथा शेरिफ (Sheriff & Sheriff, 1957) के अनुसार, "समूह एक सामाजिक इकाई है जिसमें कई व्यक्ति होते हैं जो एक दूसरे से एक निश्चित उद्देश्य तथा भूमिका के आधार पर संबंधित होते हैं और जिसके ऐसे अपने मूल्य या मानदंड होते हैं जो व्यक्ति के सदस्य के विवादों का नियंत्रण करते हैं या कम से कम समूह के लिए होने वाले परिणामों से संबंधित विवादों को निश्चित करते हैं।" न्यूकॉम्ब(Newcomb, 1960) के अनुसार, "दो या दो से अधिक ऐसे व्यक्तियों को समूह कहा जाता है जो कुछ चीजों के बारे में मानदंडों में हिस्सा बताते हैं तथा जिनकी सामाजिक भूमिकाएं घनिष्ठ रूप से अंतर सम्बद्ध होती हैं।" लिंडग्रेन(Lindgren, 1969) के अनुसार, "दो या दो से अधिक व्यक्तियों का एक दूसरे के साथ कार्यात्मक संबंध में व्यस्त होने पर एक समूह का निर्माण होता है।"

उक्त परिभाषाओं के आधार पर स्पष्ट है कि समूह एक व्यापक शब्द है इसका प्रयोग मुख्यतः तीन अर्थों में किया जाता है जो इस प्रकार है-

1. किसी उद्देश्य से जब कई व्यक्ति एक दूसरे के नजदीक हो जाते हैं तो इसे हम समूह की संज्ञा देते हैं जैसे सड़क पर चलते व्यक्तियों का समूह या रेल में बैठे यात्रियों का समूह।
2. समूह का प्रयोग वर्गीकरण करने के उद्देश्य से भी किया जाता है। जैसे हम कहते हैं कि मिल मालिकों का समूह,छात्रों का समूह तथा रिक्शा चालकों का समूह।
3. समूह का प्रयोग प्राणियों के एक ऐसे संगठन के लिए भी किया जाता है जिनका एक निश्चित आकार होता है जिसके सदस्यों में अपने लोगों की भावना तथा निष्ठा की भावना के साथ सामाजिक अंतर क्रिया होती है।

समाज मनोविज्ञान में समूह का प्रयोग सिर्फ तीसरे अर्थ में किया जाता है क्योंकि ऐसे ही समूह में सदस्यों के बीच सामाजिक अंतर क्रिया एक सामान्य उद्देश्य की प्राप्ति के लिए किया जाता है पहले अर्थ में जो समूह बनता है उसमें भी सामाजिक अंतर-क्रिया होती है परंतु वह क्षणिक होती है साथ ही साथ उसमें एक उद्देश्य होता है परंतु सामान्य उद्देश्य नहीं।

4.1.3. समूह की प्रकृति

इन परिभाषा ओं का एक समन्वित विश्लेषण करने पर हम समूह की निम्न प्रकृति तक पहुंचते हैं।

1. समूह एक सामाजिक इकाई को कहा जाता है इसमें दो या दो से अधिक व्यक्ति एक दूसरे के साथ सामाजिक अंतर क्रिया करते हैं। यही कारण है कि समूह व्यक्तियों के संग्रह या कुल योग में भिन्न होता है ।क्योंकि इनमें सामाजिक इकाईपन की विशेषता नहीं होती है।
2. समूह के सदस्यों के बीच जो अंतर क्रिया होती है वह आमने-सामने की अंतर क्रिया हो या शारीरिक अंतर क्रिया ही हो कोई जरूरी नहीं है वे शाब्दिक या लिखित अंतर क्रिया भी हो सकती है जैसा कि फील्डमेन ने कहा है" यह आवश्यक नहीं है कि अंतर क्रिया शारीरिक और आमने सामने की ही हो शाब्दिक या लिखित अंतर क्रिया भी हो सकती है।"

4.1.4. समूह के कार्य :

समूह अपने सदस्यों के लिए अनेकों कार्य करता है। विभिन्न तरह के समूह अपने सदस्यों के लिए भिन्न-भिन्न तरह के कार्य करते हैं। इन समूहों के कुछ सामान्य कार्यों का वर्णन निम्नलिखित है -

1- आवश्यकताओं का वीभेदीय संतुष्टि- सदस्यों की आवश्यकताओं की संतुष्टि करना समूह का प्रमुख कार्य है किसी भी समूह में दो प्रकार के सदस्य होते हैं - प्रभावी एवं महत्वपूर्ण सदस्य तथा अप्रभावी एवं साधारण सदस्य। प्रभावी सदस्य उच्च कोटि के होते हैं सभी महत्वपूर्ण निर्णय इन्हीं लोगों के द्वारा किया जाता है।

2- अधिपत्त तथा तदीयत्व आवश्यकताओं की संतुष्टि- समूह के सदस्यों की आधिपत्य आवश्यकता एवं तदीयत्व आवश्यकता की संतुष्टि होती है ।आधिपत्य आवश्यकताओं से तात्पर्य वैसे आवश्यकता से होता है जिसमें व्यक्ति वह समूह का एक महत्वपूर्ण सदस्य होने की भावना तीव्र होती है । जब व्यक्ति किसी समूह का सदस्य होता है तो उसकी आर्थिक आवश्यकताओं की ही सिर्फ संतुष्टि नहीं होती बल्कि तदीयत्व आवश्यकता की भी संतुष्टि होती है। क्रैच तथा क्रैचफील्ड (1949) के अनुसार, "सभी समूह अपने कुछ सदस्यों की आधिपत्य आवश्यकताओं की पूर्ति करता है और अधिकतर सदस्यों की तदीयत्व आवश्यकताओं की पूर्ति करता है।" समूह तदीयत्व कि संतुष्टि कर सदस्यों में हम लोगों की भावना को प्रोत्साहन देता है।

3- नई आवश्यकताओं का निर्माण- समूह सिर्फ आवश्यकताओं की पूर्ति ही नहीं करता है बल्कि नई-नई आवश्यकताओं का सृजन भी करता है। जैसा कि हम जानते हैं व्यक्ति की आवश्यकता है ना तो सीमित होती हैं और न स्थिर जब व्यक्ति अपनी खास खास आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए किसी समूह का सदस्य होता है तो इसकी इन आवश्यकताओं की पूर्ति तो हो ही जाती है साथ ही साथ कुछ नई आवश्यकताएं भी पैदा होती हैं इन नई आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए वह समूह का अधिक क्रियाशील सदस्य बनने की कोशिश करता है इसका लाभ यह होता है कि समूह का अस्तित्व तो बना ही रहता है साथ ही साथ उसके कार्यक्षेत्र भी विकसित हो जाता है।

4- व्यक्ति का समाजीकरण -समूह द्वारा व्यक्ति का समाजीकरण भी होता है। विभिन्न सामाजिक समूहों जैसे परिवार, खेल का समूह कॉलेज, धार्मिक समूह, राजनीतिक समूह आदि का योगदान व्यक्ति के समाजीकरण में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से होता है। जब कोई व्यक्ति किसी अच्छे सामाजिक समूह जैसे धार्मिक समूह, स्कूल, कॉलेज का सदस्य बनता है वह अपने सामाजिक व्यवहार को उनके मानदंडों के अनुसार परिवर्तित करता है तथा उससे कुछ सीखता भी है उसी तरह यदि व्यक्ति किसी बुरे सामाजिक समूह जैसे चोर, डकैत तथा बदमाशों के समूह का सदस्य किसी कारण से बन जाता है तो वह असमाजीक व्यवहार को अधिक सीखताहै फलत: समाजीकरण के स्थान पर असमाजीकरण हो जाता है।

5- सांस्कृतिक निरंतरता को बनाए रखना- समूह सामाजिक निरंतरता को भी बनाए रखने में मदद करता है। जैसा कि हम जानते हैं प्रत्येक समूह की अपनी कुछ विशेषताएं मूल्य परंपराएं प्रथाएं आदि होती है जिन पर संस्कृति का स्पष्ट मुहर लगा होता है। एक समूह कितने समय तक इन मूल्यों परंपराओं प्रथम एवं आदर्शों को बनाए रखता है उसने समय तक सांस्कृतिक निरंतरता भी बनी रहती है।

6- अनेकों समूह की सदस्यता- समूह अपने कुछ सदस्यों को खासकर के साधारण सदस्य को अप्रत्यक्ष रूप से दूसरे समूह समूह का सदस्य बनने के लिए कुछ कारणों से प्रेरित करता है। ऐसे कारण में तीन कारण प्रमुख है-

(i) समूह के सदस्य की आवश्यकताएं धीरे-धीरे विशिष्ट होती चली जाती हैं।

(ii) सदस्यों की बदलती हुई नई आवश्यकताओं के अनुसार समूह अपने आप में परिवर्तन नहीं ला पाता है।

(iii) समूह अपने सदस्यों की सभी आवश्यकताओं की पूर्ति करने में असमर्थ होता है।

4.1.5. समूह के प्रकार

समूह कई प्रकार के होते हैं समाजशास्त्रीय एवं समाज मनोवैज्ञानिकों ने अलग-अलग कसौटीओं के आधार पर मानव समूह को विभिन्न भागों में बांटा है। इनमें से समूह के कुछ प्रमुख प्रकार की व्याख्या हम यहां अलग-अलग अनुच्छेद में करेंगे।

1. प्राथमिक समूह तथा द्वितीयक समूह

प्राथमिक समूह तथा द्वितीयक समूह का वर्गीकरण कूली 1909 ने व्यक्तिगत आवेस्टन के आधार पर किया था। प्राथमिक समूह वैसे समूह को कहा जाता है जिसके सदस्यों के बीच आमने-सामने या प्रत्यक्ष तथा घनिष्ठ संबंध होता है। यही कारण है कि प्राथमिक समूह को आमने-सामने का समूह भी कहा जाता है ऐसे समूहों के सदस्यों में एक दूसरे के प्रति सहयोग सहानुभूति प्यार आदि की भावना गहरी होती है। परिवार तथा खेलने का समूह प्राथमिक समूह का सबसे अच्छा उदाहरण है ।कुली के शब्दों में ही प्राथमिक समूह को इस प्रकार पपरिभाषित किया गया है ," प्राथमिक समूहो से आशय उन समूहों से है जिसके सदस्यों में आमने-सामने के घनिष्ठ संबंध तथा सहयोग की विशेषता पाई जाती है ऐसे समूह कई

अर्थों में प्राथमिक होते हैं लेकिन मुख्य तो इस अर्थ में प्राथमिक होते हैं कि वह व्यक्ति के सामाजिक स्वभाव एवं आदर्शों का निर्माण मौलिक रूप से करते हैं।"

प्राथमिक समूह को और भी अधिक स्पष्ट करने के लिए इसके वाह्य विशेषताओं तथा आंतरिक विशेषताओं पर ध्यान देना अनिवार्य है। प्राथमिक समूह की विशेषताओं से तात्पर्य उन व्यवहार परक विशेषताओं से होता है जो उसके सदस्यों द्वारा किए गए अंतर क्रियाओं में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

इस समूह के प्रमुख आंतरिक विशेषताओं का वर्णन इस प्रकार है-

(i) सदस्यों की कम संख्या- प्राथमिक समूह में सदस्यों की संख्या कम होती है क्योंकि इसका आकार प्रायःछोटा होता है। सामान्यतःइस तरह के समूह में सदस्यों की संख्या कम से कम दो जैसे पति-पत्नी का समूह तथा कभी-कभी 10 से 12 तक की होती है जैसा कि संयुक्त परिवार में सदस्यों की संख्या होती है।

(ii) आमने सामने का संबंध- प्राथमिक समूह में सदस्यों के बीच आमने-सामने का संबंध होता है इस तरह का संबंध रहने पर लोग एक दूसरे को व्यक्तिगत रूप से जानते और समझते हैं।

(iii) सदस्यों के बीच घनिष्ठता- प्राथमिक समूह के सदस्यों के बीच सिर्फ आमने-सामने काय संबंध नहीं होता है बल्कि उसमें घनिष्ठता भी होती है। एक दूसरे के बीच इतना अधिक शारीरिक और मानसिक घनिष्ठ संबंध होता है कि इन्हें दूसरे के लिए अपनी जिंदगी की भी कुर्बानी करनी पड़े तो ऐसा करने में हिचकिचाहट नहीं के बराबर होती है

(iv) विशिष्ट प्रकार के संबंधों का अभाव- प्राथमिक समूह के सदस्यों का सामान्य उद्देश्य होता है जिसके कारण वे आपस में प्रायः मिलते जुलते हैं और किसी समस्या का समाधान करते हैं।

(v) अपेक्षाकृत अधिक स्थायित्व का गुण- चुकी प्राथमिक समूह के सदस्यों के बीच आमने-सामने का संबंध घनिष्ठ होता है।अतः इसका अस्तित्व अन्य प्रकार के समूह की अपेक्षा अधिक स्थाई होता है।इस स्थायित्व के गुण के कारण प्राथमिक समूह किसी भी विपत्ति में जल्दी बिखरता नहीं है।

इसकी प्रमुख आंतरिक विशेषताएं निम्नलिखित है-

(i)सामान्य इच्छाएं एवं अभिरुचि- प्राथमिक समूह के सदस्यों के बीच कुछ सामान इच्छाएं होती है तथा उनकी अभिरुचि भी करीब करीब एक ही होती है।

(ii) संबंधों में सहजता- प्राथमिक समूह के सदस्यों के बीच जो घनिष्ठ संबंध पाया जाता है वह बिना किसी शर्त एवं बाहरी दबाव के स्वत: विकसित होता है।

(iii) पर्सनल संबंध- अधिक समूह के सदस्यों के बीच का संबंध व्यक्तिक होता है। प्रत्येक सदस्य में एक दूसरे के प्रति हम लोगों की भावना होती है (iv) सहयोग की तीव्र भावना- प्राथमिक समूह के बीच चुकी घनिष्ठ संबंध होता है, अतः उन्हें एक दूसरे के प्रति सहयोग की भावना तीव्र होती है।

(v) एकता तथा सुरक्षा की भावना- प्राथमिक समूह के सदस्यों के बीच एकता की भावना तीव्र होती है एकता की भावना उनमें एक दूसरे को सुरक्षा देने की प्रेरणा प्रदान करती है।

द्वितीयक समूह-

द्वितीयक समूह प्राथमिक समूह के ठीक विपरीत होता है ।इसके सदस्य में प्राथमिक समूह के विपरीत गुण पाए जाते हैं। द्वितीयक समूह के सदस्यों में आमने सामने का संबंध नहीं होता है तथा इनमें पर्सनल इंवॉल्वमेंट भी कम होता है इसके संबंध भी नहीं होता है और ना तो कोई प्रभाव कारी सामान्य उद्देश्य होता है।

हालैंडर (1947) ने द्वितीयक समूह को इस प्रकार को परिभाषित किया है " द्वितीयक समूह अवैयक्तिक होते हैं और इनके सदस्यों के बीच संविदात्मक संबंध पाया जाते हैं ।ऐसे समूहों के साथ तादात्म्य स्थापित करना अपने आप में एक लक्ष्य नहीं होता है बल्कि किसी लक्ष्य की प्राप्ति का एकमात्र साधन होता है ।"

लिंडग्रेन 1969 के अनुसार " द्वितीयक समूह अधिक अवैयक्तिक होते हैं तथा इसके सदस्यों के बीच औपचारिक अथवा संविदात्मक संबंध होते हैं।"

द्वितीयक समूह की निम्न विशेषताएं है-

(i) बड़ा आकार- द्वितीयक समूह का आकार बड़ा होता है इसका मतलब यह हुआ कि इस में सदस्यों की संख्या काफी अधिक होती है

(ii) औपचारिक संबंध- ऐसे समूह के सदस्यों में विचारों का आदान-प्रदान होता है वह प्रत्यक्ष रूप से ना होकर अप्रत्यक्ष रूप से एवं औपचारिक ढंग से अर्थात नियम कानून के अनुसार होता है।

(iii)- अप्रत्यक्ष संबंध- दीपक समूह के सदस्यों के बीच जो संबंध स्थापित होता है वह आमने-सामने के संपर्क के आधार पर नहीं होता है बल्कि कुछ अप्रत्यक्ष साधनों के द्वारा होता है जैसे समाचार पत्र, रेडियो, टेलीविजन, सिनेमा आदि के द्वारा ।

(iv) संविदात्मक संबंध- संविदात्मक संबंध एक प्रकार का अवैयक्तिक संबंध होता है जिसमें एक सदस्य को दूसरे सदस्य के बारे में विस्तृत जानकारी नहीं होती है।

(v) विशिष्ट उद्देश्य- ऐसे समूह का निर्माण किसी खास उद्देश्य की प्राप्ति के ख्याल से होता है प्राथमिक समूह के समान यहां कोई सामान्य उद्देश्य नहीं होता है इनका निर्माण ही किसी खास उद्देश्य स्वार्थ की पूर्ति करने के लिए होता है।

(vi) सीमित उत्तरदायित्व- द्वितीयक समूह के सदस्यों के बीच संबंध औपचारिक होता है ।इसका अर्थ यह हुआ कि प्रत्येक सदस्य की भूमिका परिभाषित होती है।

प्राथमिक समूह तथा द्वितीयक समूह में अंतर-

प्राथमिक समूह तथा द्वितीयक समूह की विशेषताओं पर गौर करने से यह स्पष्ट होता है कि इन दोनों समूह में मौलिक अंतर है इन मौलिक अंतर की व्याख्या हम इस प्रकार कर सकते हैं-

प्राथमिक समूह	**द्वितीयक समूह**
प्राथमिक समूह का आकार छोटा होता है इसका कारण यह है कि इनमें सदस्यों की संख्या साधारण का 2 से 12 तक होती है।	द्वितीयक समूह का आकार बड़ा होता है क्योंकि इसमें सदस्यों की संख्या और असीमित होती है।

प्राथमिक समूह में सदस्यों के बीच आमने-सामने का संबंध होता है।	द्वितीयक समूह के सदस्यों के बीच आमने-सामने का संबंध नहीं होता है।
प्राथमिक समूह के सदस्य काफी लंबे समय तक एक दूसरे के साथ अंतर क्रिया करते हैं।	द्वितीयक समूह के सदस्य थोड़ी देर के लिए एक दूसरे के साथ अंतः क्रिया करते हैं।
प्राथमिक समूह में एक सामान्य उदास होता है जिसकी प्राप्ति के लिए सभी सदस्य एक साथ मिलकर काम करते हैं।	समूह में सामान्य उद्देश्य न होकर विशेष उद्देश्य होता है कि प्राप्ति के लिए सदस्यों में मेल नहीं बल्कि स्पर्धा होती है।
ऐसे समूह के सदस्यों के बीच घनिष्ठ संबंध आसानी से बन जाता है क्योंकि समूह का आकार छोटा होता है।	समूह में सदस्यों के बीच घनिष्ठ संबंध उसका बड़ा आकार होने के कारण नहीं हो पाता है।
समूह में सदस्यों के बीच व्यक्ति के संबंध होता है।	समूह में सदस्यों के बीच अवैयक्तिक संबंध होता है।

प्राथमिक समूह तथा द्वितीयक समूह का महत्व-

प्राथमिक समूह में द्वितीयक समूह की विशेषताओं से यह स्पष्ट है कि इसका महत्व व्यक्ति के सामाजिक जीवन में काफी है समाज मनोवैज्ञानिकों ने इसे निम्नांकित शीर्षको के अंतर्गत स्पष्ट किया है-

(i) **व्यक्ति के शील गुणों का विकास-** प्रत्येक बच्चे का जन्म एवं पालन पोषण एक परिवार में होता है। परिवार में वह माता पिता, चाचा चाची, भाई बहनों के साथ अन्तःक्रिया करता है तथा सामाजिक नियमों को सीख कर वह कुछ विशेष शील गुण जैसे सहयोग करना, ईमानदारी, झूठ नहीं बोलना आदि विकसित करता है।

(ii) **व्यवहारों का नियंत्रण-** प्राथमिक समूह के सदस्य एक दूसरे को काफी नजदीक से जानते हैं फलत: प्रत्येक सदस्य एक दूसरे के व्यवहार पर कड़ा नियंत्रण आसानी से रख पाते हैं । सदस्यों के व्यक्तित्व का विकास इस ढंग से हो पाता है कि उसमें असामाजिक व्यवहार के पनपने की कोई गुंजाइश नहीं होती है।

(iii) **आवश्यक सामाजिक प्रेरणा प्रदान करना-** प्राथमिक समूह अमुक व्यक्ति में सामाजिक व्यवहार एवं सामाजिक शीलगुणों को ही सिर्फ विकसित नहीं करता है बल्कि उपयुक्त समाजिक प्रेरणा उत्पन्न कर उनमें अधिक से अधिक कार्य करने की क्षमता उत्पन्न करता है।

(iv) **संतोष की प्राप्ति-** प्राथमिक समूह के सदस्यों के बीच घनिष्ठ संबंध होता है फलस्वरुप इन के सदस्यों में एक दूसरे के प्रति अधिक प्यार, सहानुभूति एवं अनुराग आदि विकसित होते हैं।

(v) **उपयुक्त सामाजिक मानदंडों को देना-** मूलतः प्राथमिक समूह में ही बच्चे एवं व्यक्तियों के उपयुक्त सामाजिक मानदंड विकसित होता है अतः प्राथमिक समूह बच्चों के लिए एक प्रकार का मॉडल का भी कार्य करता है।

(vi)**सांस्कृतिक निरंतरता को बनाए रखना-** मौसम आज के सांस्कृतिक तत्वों को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक स्थानांतरण करने में मदद करता है एक पीड़ित के व्यक्ति सांस्कृतिक तत्वों को अपने माता पिता से ग्रहण करते हैं जो वे अपने माता पिता से ग्रहण किए होंगे।

इस प्रकार स्पष्ट है कि प्राथमिक समूह व्यक्ति और समाज दोनों के लिए काफी महत्वपूर्ण है। व्यक्ति का विकास एवं समाज की निरंतरता बनाए रखने के लिए प्राथमिक समूह की भूमिका स्पष्ट है।

अन्तः समूह तथा बाह्य समूह-

अन्तः समूह व्यवहार के आधार पर समूह को दो भागों में विभाजित किया गया है अंतः(इन) समूह या हम समूह तथा बाह्य (आउट) समूह या वे समूह। इन दोनों समूहों की कुछ अपने अपने विशेषताएं हैं जिसके आधार पर इन्हें एक दूसरे से अलग किया जाता है।

अन्तः समूह- अन्तः समूह वैसे समूह को कहा जाता है जिनके सदस्यों में आपस में सहयोग, निष्ठा एवं आदर का भाव अधिक होता है। ऐसे समूह के सदस्य अपने समूह के मानदंडों तथा रीति-रिवाजों को अधिक मान्यता देकर उसके अनुसार व्यवहार करते हैं इनमें एकता काफी होती है तथा उनका मनोबल काफी ऊंचा होता है।

रिवर (1985) के अनुसार, "एक ऐसा समूह जिसके सभी सदस्य समूह के साथ गहरा अपनापन का भाव तथा उत्कृष्टता का भाव रखते हैं तथा एकजुट होकर अन्य लोगों को अपने से अलग हटा देते हैं अन्तः समूह कहलाता है।"

बाह्य समूह- इस समूह से तात्पर्य ऐसे समूह से होता है जिसके सदस्यों के प्रति सहानुभूति निष्ठा आदि का भाव व्यक्ति में नहीं होता है। ऐसे समूह के प्रति व्यक्ति में किसी प्रकार हम आवंटन भी नहीं होता है संक्षेप में कहा जा सकता है कि अपने समूह के अलावा जो और समूह होते हैं उसे हम बाह्य समूह (out group) कहते हैं इसलिए इसे वे समूह (they group)भी कहा जाता है।

रेबर (Reber, 1985) के अनुसार- "आउट समूह से तात्पर्य वैसे समूह से होता है जिसमें एक या सभी व्यक्ति अंतर समूह का सदस्य नहीं होते हैं।" ईवांट (Ivant, 1978) के अनुसार- "कोई भी समूह जिसका व्यक्ति सदस्य नहीं होता है आउट समूह कहलाता है।"

गतिशील समूह तथा स्थिर समूह-

गतिशीलता के आधार पर समाजशास्त्रियों ने समूह को दो भागों में विभाजित किया है, गतिशील समूह तथा स्थिर समूह। गतिशील समूह जैसा के नाम से ही स्पष्ट है वैसे समूह को कहा जाता है जो प्रायः एक स्थान से दूसरे स्थान पर घूमता है और साथ ही साथ अपना जीविकोपार्जन भी करता रहता है. भारत में कुछ समूह जैसे नट एवं बंजारा का समूह एक ऐसा ही समूह है जो कभी भी किसी एक स्थान पर स्थिर नहीं रहता है इस समूह का मानदंड मूल्य तथा विश्वास कुछ अजूबा ही होता है जो अन्य समूह के लोगों में नहीं पाया जाता है।

स्थिर समूह में इस तरह की गतिशीलता नहीं होती है यह किसी एक क्षेत्र में अव्यवस्थित होता है और उसके सभी सदस्य स्थाई रूप में उसी क्षेत्र में रहकर ही अपना जीविकोपार्जन करते हैं औद्योगिक

संगठन तथा विश्वविद्यालय के सदस्यों का समूह इसका उदाहरण है कुछ समाजशास्त्रियों का कहना है कि गतिशील समूह के सदस्य स्थिर समूह के सदस्य की अपेक्षा अधिक संगठित तथा ऊंचा मनोबल रखने वाले होते हैं।

एकांतिक समूह तथा अंतर्वेशित समूह-

विशेषता के आधार पर समूह को एक आंतरिक तथा अंतर्वेशन समूह में बांटा गया है एकांतिक समूह के समूह को कहा जाता है जिस की सदस्यता किसी विशेष श्रेणी के लोगों तक ही सीमित रहता है।

लिंडग्रेन(Lindgrean, 1969) के अनुसार, "एकांतिक समूह में है जो अपनी सदस्यता व्यक्तियों के निश्चित वर्गों तक ही सीमित रखते हैं." मेयर्स (Myers, 1987) के अनुसार, "एकांतिक समूह के सदस्यों में सहयोग तथा भाईचारे की भावना अधिक होती है। सफलता ऐसे समूह सदस्य विपत्ति के समय आपस में अत्यधिक संगठित देखे जाते हैं।

अंतर्वेशन समूह ऐसे समूह को कहा जाता है जिसका सदस्य कोई भी व्यक्ति हो सकता है. ऐसे समूह के सदस्य होने के लिए कोई योग्यता नहीं निर्धारित की जाती है, हां इतना अवश्य कहा जाता है कि सदस्य होने के बाद उसकी अभिरुचि तथा प्रेरणा अन्य सदस्यों के समान अवश्य हो जाती है.

लिंडग्रेन(Lindgrean, 1962) के अनुसार, "अंतर्वेशन समूह के समूह को कहा जाता है जो अपना दरवाजा सभी आगंतुकों के लिए खोलकर रखता है और सचमुच में सक्रिय होकर सदस्यता के लिए निवेदन करता है"। अंतर्वेशन समूह का आकार एकांतिक समूह से बड़ा होता है।

आकस्मिक समूह तथा प्रयोजन आत्मक समूह-

उद्देश्य के आधार पर समूह को दो भागों में विभाजित किया गया है आकस्मिक समूह तथा प्रयोजन आत्मक समूह आकस्मिक समूह जैसा के नाम से स्पष्ट है वैसे समूह को कहा जाता है जिसका निर्माण बिना पहले से ही निश्चित किए गए उद्देश्य या प्रयोजन के ही अचानक हो जाता है प्रयोजनआत्मक समूह के समूह को कहा जाता है जिसका निर्माण पूर्व निश्चित उद्देश्य के अनुसार होता है ताकि जल्द से जल्द उस उद्देश्य प्रयोजन की प्राप्ति की जा सके इस तरह से हम है कि प्रश्न आत्मक समूह का एक निश्चित एवं स्पष्ट उद्देश्य होता है।

4.1.6. समूह की संरचना -

डोनर स्टाइलतथा डोनर स्टाइल(stile and stile, 1984) के अनुसार - समूह संरचना से इस बात का उल्लेख होता है कि समूह किस प्रकार संगठित है तथा उनके सदस्यों के स्थान या पद एक दूसरे से किस प्रकार संबंधित है । शेखर तथा बैटमैन 1974 के अनुसार- समूह संरचना से तात्पर्य किसी समूह के सदस्यों की अंतर क्रियाओं के विभिन्न पहलुओं की विशेषताओं को स्पष्ट करने वाली उच्च सनरूफ इन अनियमितताओं से होता है जो सदस्यों की भावनाओं, प्रत्यक्षीकरण एवं उनकी क्रियाओं में पाई जाती है।

उपयुक्त परिभाषा ओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि समूह संरचना से तात्पर्य समूह के उन गुणों से होता है जिसके आधार पर हमें यह पता चलता है कि समूह का आकार कैसा है, समूह में सदस्यों की

व्यक्तिगत भूमिका कैसी है, सदस्यों के बीच आपस में संबंध किस तरह का है तथा समाज के अन्य समूह के साथ उसका संबंध कैसा है स्पष्ट है कि समूह की संरचना के आधार पर हमें समूह के बारे में अनेकों लाभदायक सूचनाएं मिलती हैं क्योंकि समूह संरचना एक बहुआयामी असम प्रत्यय है।

समूह के संरचना के आवश्यक तत्व निम्नलिखित हैं-

1- **समूह का आकार-** समूह की संरचना का सबसे महत्वपूर्ण तत्व समूह का आकार है। समूह के आकार से तात्पर्य समूह में सदस्यों की संख्या से है। जब समूह में सदस्यों की संख्या कम होती है तो उसे छोटा समूह कहा जाता है। जैसे परिवार जिसमें पति पत्नी के अलावा बच्चे भाई बहन आदि सम्मिलित होते हैं। एक छोटा समूह वैसे समूह को कहा जाता है जिस में सदस्यों की संख्या मात्र दो होती है जैसे पति-पत्नी का समूह, मालिक और उसके नौकर का समूह आदि। जैसे जैसे समूह में सदस्यों की संख्या बढ़ती जाती है समूह का आकार बढ़ता जाता है। समाज मनोवैज्ञानिकों द्वारा किए गए अध्ययनों से स्पष्ट हो गया है कि समूह का आकार जैसे-जैसे बढ़ता जाता है समूह की संरचना की जटिलता भी वैसे-वैसे बढ़ती जाती है क्योंकि उनके सदस्यों के बीच अंतर क्रियात्मक संबंधों की संभावना बढ़ती जाती है।

2- समूह में व्यक्ति की भूमिकाएं- प्रत्येक समूह में प्रत्येक सदस्य की एक निश्चित भूमिका होती है व्यक्ति किसी समूह का सदस्य बनता है तो वह किस तरह से दूसरों सदस्यों के साथ व्यवहार करेगा यह बहुत कुछ समूह संरचना के स्वरूप एवं उसके संरचना के अंतर्गत उसके द्वारा की जाने वाले भूमिका पर निर्भर करता है जैसे जब समूह की संरचना औपचारिक होती है तो सदस्यों की अंतर क्रिया है एक निश्चित नियम द्वारा निर्देशित होती हैं तथा एक से दूसरे सदस्य का प्रतिक्षण उसके द्वारा की जाने वाली पूर्व निश्चित एवं परिभाषित भूमिका के रूप में ही करता है।

3- समूह संबंध- समूह संबंध समूह संरचना का तीसरा प्रमुख तत्व है।समूह संबंध से तात्पर्य सदस्यों के बीच आपसी संबंध से होता है।समाज मनोवैज्ञानिक एवं समाज शास्त्रियों का सामान्य मत यह है कि समूह प्राय: असमजातीय नहीं होते हैं और वे अक्सर कार्यात्मक रूप से कुछ छोटे-छोटे खंडों में बैठे होते हैं और ऐसे खंड प्राय: 1 रूपी होते हैं।ऐसे खंडों को उप समूह कहा जाता है जैसे विश्वविद्यालय के सदस्यों के समूह।

4- संचार संरचना- समूह संरचना की एक प्रमुख विशेषता समूह के संचार का स्वरूप होता है संचार से तात्पर्य समूह के सदस्यों को सूचना देने तथा प्राप्त करने की प्रक्रिया से होती है। संचार संरचना का आकार अन्य बातों के अलावा समूह के आकार पर प्रत्यक्ष रूप से निर्भर करता है।यदि समूह का आकार काफी छोटा है ,तो सदस्यों में संचार प्रत्यक्ष होता है परंतु यदि समूह का आकार बड़ा है ,जैसे कि औपचारिक समूह में पाया जाता है तो सदस्यों के बीच संचार का स्वरूप भी जटिल हो जाता है। ऐसी परिस्थिति में एक सदस्य पदानुक्रम में अपने ठीक ऊपर या नीचे के सदस्य से तो प्रत्यक्ष रूप से संचालित स्थापित कर पाता है परंतु उससे दूर के सदस्यों के साथ संचार केवल अन्य सदस्यों के माध्यम से ही कर पाता है। अतः ऐसी समूह संरचना में संचार बाधित होती है। सचमुच में बाधक संचार की जटिलता से ही समूह संरचना की जटिलता का अंदाज हो जाता है।

5- विभिन्न सामाजिक समूहों के बीच संबंध- किसी भी समाज में बहुत तरह के सामाजिक समूह होते हैं ।किसी समूह विशेषकर बड़े समूह की संरचना को समझने के लिए विभिन्न सामाजिक समूह के संबंध के बारे में जानना आवश्यक है। जैसे अगर किसी राज्य को एक बड़ा समूह मान लिया जाए तो यह आवश्यक है कि इसकी संरचना हम सही सही तभी समझ सकते हैं जब इस बड़े समूह के विभिन्न समूहों,धार्मिक संगठनों, मजदूरों का समूह ,मंत्रियों का समूह ,दुकानदारों का समूह आदि को आपसी संबंधों के बारे में सही सही जाने जाहिर है कि इन विभिन्न सामाजिक समूहों के बीच का संबंध है यदि सौहार्दपूर्ण होगा तो हम उस बड़े समूह अर्थात राज्य की सरचना को ठीक तरह से समझ पाएंगे क्योंकि यह अधिक स्पष्ट होगा।

ऊपर किए गए वर्णन से स्पष्ट है कि समूह की संरचना की व्याख्या समाज में वैज्ञानिकों ने विभिन्न तत्वों के रूप में किया है। इन सभी तत्वों पर ध्यान देकर ही किसी समूह संरचना की व्याख्या की जा सकती है।

4.1.7. समूह निर्माण (Group formation) -

समाज मनोवैज्ञानिकों द्वारा किए गए अध्ययनों से यह स्पष्ट हुआ है कि समूह का निर्माण कुछ विशेष कारको से होता है ऐसे कारको में निम्नांकित प्रमुख है -

1 - व्यवहार एवं मनोवृति में समानता – बर्न(Byrne) 1980, फ्लोर(Flor) 1977, बेरोन(Baron) 1982 ने अपने अध्ययनों के आधार पर यह बतलाया कि जिन व्यक्तियों की मनोवृत्ति में समानता या एकरूपता होती है तो उनके व्यवहार में भी समरूपता होती है और तब ऐसे लोगों द्वारा आसानी से एक निर्णय कर लिया जाता है जैसे कक्षा में जिन छात्रों की मनोवृत्ति पढ़ाई के प्रति एक समान होती है उनका एक समूह का निर्माण जल्दी हो जाता है ।उस समूह के सभी छात्र लगभग एक समान ढंग से व्यवहार भी करते पाए जाते हैं।

2 - स्थानिक समीपता - फेस्टिगर (feshtinger et al 1968) तथा उनके सहयोगियों का मत है कि समूह निर्माण का एक महत्वपूर्ण कारक स्थानिक समीपता होती है ।जब व्यक्तियों के बीच स्थानिक समीपता होती है अर्थात वे एक ही जगह पर रहते हैं तो उनके बीच अंतर क्रिया अधिक होती है और उन्हें एक दूसरे को समझने का पर्याप्त मौका मिलता है। इन सब का परिणाम यह होता है कि ऐसे व्यक्ति एक समूह में आसानी से संगठित हो जाते हैं ।पास पड़ोस के लोगों द्वारा विभिन्न तरह के समूह का निर्माण किए जाने का प्रमुख कारण स्थानिक समय पता होती है

3 - पूरक आवश्यकताएं या इच्छाएं - समूह के निर्माण में पूरक आवश्यकताओं की भी भूमिका प्रधान होती है ।जब दो या दो से अधिक व्यक्तियों की आवश्यकता एक दूसरे से भिन्न होती हैं परंतु साथ ही साथ एक दूसरे के द्वारा जब उनकी पूर्ति की संभावना होती है तो ऐसे व्यक्तियों के एक समूह का निर्माण आसानी से हो जाता है क्योंकि ऐसे व्यक्ति एक दूसरे के प्रति आकर्षित होती है। जैसे बेरोन 1978 तथा क्रश 1981 के अनुसार- जब किसी व्यक्ति में पोषण की आवश्यकता तथा दूसरे व्यक्ति में निर्भरता की आवश्यकता हो तो ऐसे दोनों व्यक्ति एक दूसरे के प्रति काफी आकर्षित होंगे और उनसे एक समूह का निर्माण तेजी से होगा।

4 - असुरक्षा एवं चिंता का भाव- समूह के निर्माण सुरक्षा एवं चिंता की भाव की भी प्रधानता होती है। जब व्यक्ति में किसी कारण से और सुरक्षा तथा चिंता की भाव तीव्र मात्रा में उत्पन्न हो जाती है तो ऐसे लोगों में संबंधित आवश्यकता में वृद्धि हो जाती है और तब व्यक्ति दूसरों के साथ अधिक रहने की इच्छा व्यक्त करता है ।ऐसी परिस्थिति में व्यक्ति जब अन्य व्यक्ति के साथ होता है तो उसकी चिंता तो घटती ही है साथ ही साथ अपनी चिंता के बारे में वह दूसरों को बतला कर काफी आफियत अनुभव करता है तथा उसका मन का बोझ हल्का दिखता है ।

5- बाहरी धमकी- व्यक्तिगत उस समय समूह में संगठित हो जाते हैं, जब उन्हें किसी कार्य क्या तत्व से भारी खतरा प्राप्त होता है। भारी खतरा से बचने के लिए लोगों में आपसी भेदभाव को मिटा कर एक हो जाने की प्रवृत्ति अधिक तीव्र हो जाती है। सांप्रदायिक दंगों के समय अक्सर देखा जाता है कि व्यक्तियों में अपने समुदाय के व्यक्तियों के साथ मिलकर विशेष समूह गठित करने की प्रवृत्ति अधिक तीव्र हो जाती है।

6- कार्यात्मक एकता- कार्यात्मक एकता के आधार पर भी समूह का निर्माण होता है। कार्यात्मक एकता से तात्पर्य व्यक्तियों के बीच किसी कार्यालय प्राप्ति के बारे में सहमति से होता है। लेवीन्थाल (levinthal, 1986) ने अपने अध्ययन के आधार पर यह बतलाया कि जब व्यक्तियों में कार्यात्मक एकता में वृद्धि हो जाती है तो ऐसे लोगों का एक समूह काफी आसानी से विकसित हो जाता है जैसे, यदि आसपास के अधिकतर लोग यदि यही चाहते हैं कि अमुक स्थान में ही मंदिर का निर्माण किया जाए तो ऐसे लोगों का एक समूह बहुत तेजी से विकसित हो जाता है।

7- अधिक अंतर क्रिया- समूह निर्माण का एक सामान्य कारक व्यक्तियों के बीच की गई अंतर क्रियाओं की बारंबारता है। जब व्यक्तियों के बीच प्रायः अंत क्रिया अधिक बार होती है तो इससे उनमें आपस में बोधगमव्यताअधिक बढ़ जाती है जिसका परिणाम यह होता है कि उनमें आपस में संगठित होने की प्रवृत्ति पर हो जाती है और वे लोग आसानी से एक समूह का निर्माण कर लेते हैं। (Myers, 1989)

8 - सामाजिक आर्थिक समानता- जब व्यक्तियों में सामाजिक एवं आर्थिक स्तर की समानता होती है तो उनके द्वारा एक समूह का निर्माण आसानी से कर लिया जाता है। सामाजिक आर्थिक स्तर में समानता होने से उन्हें एक दूसरे के करीब होने का आकर्षण अधिक बढ़ जाता है जिसका परिणाम यह होता है कि उनके द्वारा आसानी से एक समूह का निर्माण हो जाता है। (Spencer and Scales, 1979)

4.1.8. सारांश

समूह का प्रयोग प्राणियों के एक ऐसे संगठन के लिए भी किया जाता है जिनका एक निश्चित आकार होता है जिसके सदस्यों में अपने लोगों की भावना तथा निष्ठा की भावना के साथ सामाजिक अंतर क्रिया होती है । समाज मनोविज्ञान में समूह के विभिन्न प्रकार बताये गए हैं जिसमे प्राथमिक एवं द्वितीयक समूह सबसे प्रमुख है. समूह एक स्वनिर्मित अप्रत्यक्ष रूप से क्रिया करने वाली संरचना है.

4.1.9. स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. समूह के अर्थ को समझाइए?
2. समूह के विभिन्न प्रकारों का वर्णन कीजिये?
3. प्राथमिक एवं द्वितीयक समूह में अंतर स्पष्ट कीजिये?
4. समूह की प्रकृति का वर्णन कीजिए?
5. समूह की संरचना एवं उसके आवश्यक तत्वों का वर्णन कीजिये?
6. समूह निर्माण की प्रक्रिया को समझाईये?

4.1.10. शब्दावली : समूह, समूह निर्माण,

4.1.11. संदर्भ ग्रंथ सूची :

बैरन एंड बैरनी(2000). सोशल साइकोलॉजी. पियर्सन एजुकेशन.एनडी.

सिंह, ए.के.(2008). समाज मनोविज्ञान की रुपरेखा. मोतीलाल बनारसीदास पब्लिकेशन.एनडी.

जैकोन, जे.एम.(1993). सोशल साइकोलॉजी, पास्ट एंड प्रेजेंट. हिल्सडेल,एनजे.

सेमिन,जी. एंड फिडलर, के.(1996). एप्लाइड सोशल साइकोलॉज.सीए: सेज.

सिंह, ए.के.(2003). औद्योगिक एवं संगठनात्मक मनोविज्ञान. भारती भवन प्रकाशन.पटना.

इकाई-2 समूह प्रभाव एवं समूह मनोबल

इकाई की रूपरेखा

4.2.0. उद्देश्य

4.2.1. प्रस्तावना

4.2.2. समूह प्रभाव का परिचय

4.2.3. समूह सोच संप्रत्यय का मूल्यांकन

4.2.4. समूह मनोबल का अर्थ

4.2.5. उच्च एवं निम्न समूह मनोबल की कसौटी

4.2.6. समूह मनोबल के निर्धारक

4.2.7. समूह मनोबल को मापने की विधियां

4.2.8. समूह मनोबल को बढ़ाने की विधियां

4.2.9. सारांश

4.2.10. स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

4.2.11. शब्दावली

4.2.12. संदर्भ ग्रंथ सूची

4.2.0. उद्देश्य

- समूह प्रभाव की विभिन्न परिभाषाओं को भिन्न-भिन्न चिंतकों के दृष्टिकोणों से समझ सकेंगे.
- समूह प्रभाव के भिन्न-भिन्न संप्रत्ययों को समझने की सामान्य समझ विकसित कर पाएंगे.
- समूह मनोबल के अर्थ को स्पष्ट रूप से समझ सकेंगे.
- समूह मनोबल की विभिन्न कसौटियों को समझ सकेंगे.
- समूह मनोबल के विभिन्न निर्धारकों से अवगत हो पाएंगे.
- समूह मनोबल को मापने एवं समूह मनोबल में कैसे वृद्धि की जाये, की वृहत समझ विकसित कर पाएंगे.

4.2.1. प्रस्तावना

जीव का स्वभाव होता है साथ में रहना यदि मनुष्य हैं तो उन्हें समूह में रहना कह सकते हैं. आदिम समाज आधुनिक समाज तक की यात्रा के मूल में जायेंगे तो पतेहैन की मनुष्य की सभी तरह की प्रगतियां उसके समूह व्यवहार का ही परिणाम हैं. भोजन और सुरक्षा किसी भी जीव प्राथमिक आवश्यकता है जिनकी पूर्ति मनुष्य या जानवर समूह में रहकर ही कर सकता है. समूह में व्यक्ति का व्यवहार और अकेले में उसके व्यवहार में बहुत अंतर पाया जाता है जिसे अनेक शोधों ने स्पष्ट किया है. पहचान अस्पष्टता के कारण समूह में व्यक्ति का निष्पादन कम हो जाता है ऐसे में समूह मनोबल की आवश्यकता होती है. समूह मनोबल समूह के सदस्यों के आत्मविश्वास को भी बढ़ाता है. समूह मनोबल ऊंचा रहने पर सदस्यों में आत्मविश्वास अधिक होता है. समूह मनोबल समूह के सदस्यों में आशावाद की भावना विकसित करता है. समूह में मनोबल होने से सदस्यों में समूह लक्ष्य की प्राप्ति से संबंधित धनात्मक प्रत्याशा अधिक होती हैं.

4.2.2. समूह प्रभाव का परिचय (introduction of Group influence) -

समाज मनोवैज्ञानिकों द्वारा समूह प्रभाव का विस्तृत रूप से अध्ययन किया गया है ऐसे प्रभावों का अध्ययन हम यहां निम्नलिखित 6 प्रमुख भागों में बांटकर करेंगे -

1- सामाजिक सरलीकरण
2- जन संकुलन
3- सामाजिक श्रमावनयन
4- निरस्त्रीकरण
5 - समूह ध्रुवीकरण
6 - समूह सोच

1. **सामाजिक सरलीकरण** - जब समाज मनोवैज्ञानिकों ने शहरीकरण पर अध्ययन करना शुरू किया तो उनके सामने एक प्रश्न आता है वह प्रश्न है - दूसरों की उपस्थिति मात्र से किसी व्यक्ति का व्यवहार किस तरह प्रभावित होता है? या उपस्थिति मात्र से तात्पर्य होता है कि दूसरा व्यक्ति या व्यक्तियों का समूह उस परिस्थिति में जिस में कोई व्यक्ति कार्य कर रहा होता है, कोई अंतर क्रिया नहीं करता है बल्कि सिर्फ वह अपना केवल शारीरिक उपस्थिति बना कर रखता है भक्ति को निष्क्रिय श्रोता या सहभागी वार्ता कहा जाता है.

परीक्षण-इस पर सबसे पहले ट्रिपलेट (Triplett, 1897) ने साधारण परीक्षण किया जिसमें उन्होंने पाया कि जब साइकिल चलाने वाला व्यक्ति अन्य व्यक्तियों के साथ प्रतियोगिता करते हुए चलाता है, तो वह काफी तेजी से दौड़ लगा पाता है परंतु यदि वह अकेले साइकिल चलाता है, तो उसकी गति धीमी हो जाती है. इस परीक्षण के पीछे सोच यह थी कि अन्य लोगों की उपस्थिति से साइकिल चलाने वाले व्यक्ति में शायद अतिरिक्त शारीरिक उर्जा उत्पन्न हो जाती है जो उसे तेजी से दौड़ लगाने के लिए बाध्य करता है. अपने इस शोध प्राकल्पना की जांच करने के उद्देश्य से उन्होंने एक प्रयोग बच्चों पर किया जो समाज

मनोविज्ञान के क्षेत्र में पहला प्रयोग था. उन्होंने बच्चों को रील पर रस्सी लपेटने का कार्य जल्द से जल्द करने को कहा. कुल प्रयास के आधे प्रयासों में प्रत्येक बच्चा इस कार्य को एकांत परिस्थिति में अलग अलग किया परंतु बाकी आधे प्रयासों में दो के समूह में जिसमें आपस में प्रतियोगिता थी, किया. परिणामों में देखा गया कि प्रतियोगिता की परिस्थिति में बच्चे एकांत परिस्थिति की तुलना में अधिक तेजी से कार्य किए तथा उनका निष्पादन भी काफी अच्छा था. विभिन्न प्रकार के अध्ययनों के आलोक में यह कहा जा सकता है कि दूसरों की उपस्थिति में कार्य निष्पादन में मदद तथा बाधा दोनों ही होती है विरोधी परिणाम में समाज मनोवैज्ञानिकों को एक ऐसी व्याख्या की खोज के लिए मजबूर कर दिया जिससे समूह के बाधक तथा सरली कृत दोनों प्रभाव का वर्णन संतोषजनक ढंग से हो सके.

2. **जन संकुलन -** जन संकुलन एक महत्वपूर्ण संप्रत्यय है जिसके माध्यम से समाज मनोवैज्ञानिकों द्वारा व्यक्ति के व्यवहार पर पड़ने वाले समूह प्रभावों का अध्ययन किया जाता है समानता जन संकुलन से तात्पर्य कम जगह में अधिक लोगों के एकत्रित हो जाने से उत्पन्न स्थिति से होता है स्पष्ट तो हर जगह तथा व्यक्तियों की संख्या के साथ जन संतुलन को यहां जोड़ा गया है परंतु वास्तविकता यह है कि जन संकुलन की वैज्ञानिक परिभाषा में जगह तथा व्यक्तियों की संख्या को महत्व नहीं दिया जाता है व्यक्ति एक बस में होने पर जल संतुलन का अनुभव कर सकता है परंतु बस के जगह के बराबर वाले किसी कमरे में स्थित की गई पार्टी में ऐसा अनुभव नहीं कर सकता है.

स्टोकोल्स (Stocols, 1978) को सही अर्थ में समझने के लिए यह आवश्यक है कि उपलब्ध जगह तथा व्यक्तियों की संख्या दोनों के प्रति व्यक्ति की मनोवैज्ञानिक अनुभूति को जानना आवश्यक है. ऐसी स्थिति में तब जन संकुलन तथा उससे संबंधित पद घनत्व के अंतर को समझना अति आवश्यक है. स्टोकोल्स (Stocols, 1972) के अनुसार-" स्थानिक, सामाजिक एवं व्यक्तिगत कारको की अंतर क्रिया से उत्पन्न अभीप्रेरणात्मक अवस्था को जन संकुलन कहा जाता है." फेल्डमैन(Feldman, 1985) के अनुसार-" जन संकुलन से तात्पर्य एक परिस्थिति में उत्पन्न मनोवैज्ञानिक या आत्मगत कारको से होता है - किसी विशेष स्थान में व्यक्तियों को दी गई संख्याओं को व्यक्ति किस तरह प्रत्यक्षण करता है." इस प्रकार हम जन संकुलन के स्वरूप के बारे में निम्नांकित तथ्य प्राप्त करते हैं-

i: जनसंकुलन का संबंध व्यक्ति के मनोवैज्ञानिक अनुभूति से होता है ना की परिस्थिति के भौतिक एवं स्थानीय हालातों से.

ii: जन संकुलन घनत्व से प्रत्यक्ष रूप से संबंधित हो भी सकता है या नहीं भी हो सकता है.

iii: जन संकुलन में व्यक्ति उपलब्ध स्थान में उपस्थित व्यक्तियों की संख्या का विशेष ढंग से प्रशिक्षण करता है.

3. **सामाजिक श्रमावनयन -** सामाजिक सरलीकरण के समान ही व्यक्ति के व्यवहार पर समूह के प्रभाव के कारण एक दूसरी घटना अक्सर देखने को मिलती है . लताने 1981 ने सामाजिक श्रमावनयन कहां है. अक्सर यह देखा गया है कि जब व्यक्ति एक समूह से होकर कोई कार्य करता है, तो वह अपने ऊपर उठने जवाबदेही रहकर कार्य नहीं करता है जितना कि वह कार्य को

अकेले करता है. इसका परिणाम यह होता है कि उस कार्य का निष्पादन खराब हो जाता है इसे ही सामाजिक श्रमावनयन कहा जाता है. मायर्स (Myres, 1988) के शब्दों में- "सामाजिक श्रमावनयन से तात्पर्य लोगों की उस प्रवृत्ति से होता है जिसमें वह किसी सामान्य लक्ष्य की प्राप्ति की और कार्य करने पर उस कार्य के लिए अकेले उत्तरदाई होने की अपेक्षा कम प्रयास करते हैं.

4. **निर्वैयक्तिकरण** - व्यक्ति के व्यवहार पर समूह का एक ऐसा भी प्रभाव पड़ता है जिसमें व्यक्ति अपने व्यक्तित्व खो देता है क्योंकि आत्म जानकारी लगभग समाप्त हो जाती है और वह अपने आप को समूह में पड़ता समावेशित कर लेता है. इस स्थिति को festinger, Pepitone, and Newcomb 1952 ने निर्वैयक्तिकरण (deindividuation) संज्ञा दिया है. उसकी एक उत्तम परिभाषा फिशर (Fisher, 1982) ने इस प्रकार दी है-" निर्वैयक्तिकरण एक ऐसी अवस्था होती है जिसमें समूह में होने पर भी व्यक्ति को व्यक्ति विशेष के रूप में नहीं देखा जाता है बल्कि वे समूह में ही आप लावित हो जाते हैं और अपनी व्यक्ति की पहचान खो जाने का अनुभव करते हैं."

फेल्डमैन (Feldman, 1985) के अनुसार- "यह एक ऐसी मनोवैज्ञानिक स्थिति है जिसमें आत्मा विश्वास जानकारी की कमी हो जाती है, अन्य लोगों द्वारा नकारात्मक मूल्यांकन का डर में कमी हो जाती है और परिणाम स्वरूप व्यक्ति आवेग शील, समाज विरोधी रूप से प्रचलित व्यवहारो को करता पाया जाता है."
इन परिभाषा के आधार पर हमें निम्नांकित तथ्य प्राप्त होते हैं.

- एक मनोवैज्ञानिक स्थिति होती है जो विशेष प्रकार की समूह परिस्थिति खासकर वैसी परिस्थिति जो व्यक्ति में गुमनामी उत्पन्न करता है तथा व्यक्ति के ध्यान को अपने आप से अविकसित करता है.
- इसमें व्यक्ति समूह में होते हुए भी अपने व्यक्तित्व से अवगत नहीं होता है.
- इसमें व्यक्ति को नकारात्मक मूल्यांकन का डर नहीं रहता है क्योंकि वह जानता है कि उसकी पहचान संभव नहीं हो पाएगी.
- इसके कारण व्यक्ति प्राय: आवेगसील, आक्रामक, एवं समाज विरोधी व्यवहार करता पाया जाता है.

अतः यह स्पष्ट हुआ कि यह एक ऐसी मनोवैज्ञानिक स्थिति है जिसमें समूह में होते हुए भी व्यक्ति की अपनी पहचान खत्म हो जाती है और इस गुमनामी की आड़ में तरह-तरह के समाज विरोधी व्यवहार को अंजाम देने में वह तनिक भी मुकरता नहीं है.

5. **समूह ध्रुवीकरण-** समूह ध्रुवीकरण के संप्रत्यय का प्रतिपादन मोस्कोवीसी (Moscovici) एवं फ्रेजर(Fraser) द्वारा किया गया. समूह ध्रुवीकरण से तात्पर्य इस बात से होता है कि समूह परिचर्चा से समूह के सदस्यों की आरंभिक मनोवृति का झुकाव पहले से और भी अधिक मजबूत हो जाती है. जैसे- यदि किसी समूह के सदस्य में भारत के विदेश नीति के प्रति एक विशेष और सर झुकाओ नकारात्मक है ,तो समूह परिचर्या के बाद दिया झुकाओ और भी

अधिक नकारात्मक हो सकता है. उसी तरह से समूह के सदस्यों का औषध झुकाओ सकारात्मक है, तो समूह परिचर्या के बाद या झुकाओ और भी अधिक सकारात्मक हो सकता है. स्पष्टत: तब समूह ध्रुवीकरण प्राप्त कल्पना इस बात की ओर इशारा करता है कि समूह के सदस्यों की मनोवृत्ति झुकाओ समूह परिचर्चा से और भी अधिक मजबूत हो जाती है. ध्रुवीकरण को दिखाने के लिए मनोवैज्ञानिकों द्वारा कई तरह के प्रयोग किए गए हैं एक प्रमुख प्रयोग मोस्कोवीसी तथा जावालोवी(Zavallovi, 1969) द्वारा किया गया. यह अध्ययन फ्रेंच छात्रों के एक समूह पर किया गया. परिचर्या के प्रारंभ के पहले इन छात्रों की मनोवृत्ति फ्रांस के प्रधानमंत्री के प्रति अनुकूल तथा अमेरिकन के प्रति नकारात्मक थी. समूह परिचर्या के समाप्त होने के बाद यह देखा गया कि फ्रांस के प्रधानमंत्री के प्रति इन छात्रों की मनोवृत्ति पहले से और अधिक अनुकूल तथा अमेरिकन के प्रति पहले से और अधिक प्रतिकूल हो गई. मायर्स तथा बिशप(Myres and Bishop, 1970) ने एक दूसरा अध्ययन किया- जिसमें यह पाया गया कि हाईस्कूल के पूर्वाग्रह छात्रों की मनोवृत्ति समूह परिचर्चा के बाद और अधिक पूर्वाग्रहित हो गई तथा कम पूर्वाग्रह छात्रों की मनोवृत्ति समूह परिचर्चा के बाद और कम हो गई. इन अध्ययनों से स्पष्ट होता है कि समूह परिचर्चा के बाद समूह की मनोवृत्ति का अंत की ओर ध्रुवीकरण हो जाता है. ध्रुवीकरण निम्नांकित दो तरह के प्रभाव के कारण होता है.

i: सूचना संबंधी प्रभाव- जब व्यक्ति समूह में किसी समस्या के बारे में परिचर्चा करता है, तो इससे सदस्यों का एक दूसरे का तर्क सुनने का मौका मिलता है तथा साथ ही समस्या के प्रति व्यक्ति की अपनी स्थिति का पता भी चलता है.

ii: मानक संबंधी प्रभाव - ध्रुवीकरण की दूसरी व्याख्या अन्य लोगों के साथ सामाजिक तुलना के रूप में की गई है. इस व्याख्या का आधार फेस्टिंगर (festinger, 1954) द्वारा प्रतिपादित सामाजिक तुलना सिद्धांत में व्यक्त किया गया वह विचार है जिसमें यह कहा गया है कि व्यक्ति अपने विचारों का मूल्यांकन अन्य लोगों के विचारों के साथ तुलना करके करता है. प्रत्येक व्यक्ति की इच्छा यह होती है कि उनका प्रत्यक्ष और तथा मूल्यांकन अन्य व्यक्तियों द्वारा अनुकूल ढंग से किया जाए. जब समूह में वे यह पाते हैं कि अन्य सदस्यों द्वारा उनके विचारों का अनुकूल मूल्यांकन उतना किया जा रहा है जितना कि वे उम्मीद भी नहीं किए थे, तो साधारण वे अपने विचार या मत को और भी अधिक ढंग से व्यक्त करने लगते हैं. परिचर्चा में जब सदस्य अपने विचारों की तुलना अन्य व्यक्ति की विचारों से करने के बाद इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि अधिकतर लोग उनके विचार के आरंभिक स्थिति का समर्थन करने वाले हैं तो इससे उनकी आरंभिक विचार और भी मजबूत हो जाता है. जिसके कारण ध्रुवीकरण की घटना होते देखी गई है.

कुछ मनोवैज्ञानिकों का मत है कि सामाजिक तुलना तथा अर्थात मानक संबंधी प्रभाव तथा सूचना संबंधी प्रभाव दोनों ही एक दूसरे के विरोधी ना होकर साथ साथ होते हैं और समूह ध्रुवीकरण उत्पन्न करते हैं. जब समूह परिचर्या में व्यक्ति को यह पता चलता है कि अन्य लोग भी उनके विचारों से सहमत हैं उनका तर्क या सूचना में विश्वास अधिक बढ़ जाता है और तब इससे उस व्यक्ति की आरंभिक मनोवृति और भी अधिक मजबूत हो जाती है.

6. समूह सोच- व्यक्ति का व्यवहार समूह सोच द्वारा काफी प्रभावित होता पाया गया है. समूह सोच एक ऐसी अवस्था होती है जिसमें समूह के लोग अपने वास्तविक विचार को इस कारण अभिव्यक्त नहीं कर पाते हैं क्योंकि समूह की असहमति की समग्रता बनाए रखने के ख्याल से इसे कहीं अधिक महत्वपूर्ण समझा जाता है. जैनिस 1971 ,1972 ने निम्नांकित रूप से परिभाषित किया है-" समूह सोच से तात्पर्य समूह के भीतर के दबावों के परिणाम स्वरूप नैतिक निर्णय, वास्तविकता की जांच तथा मानसिक क्षमता में उत्पन्न कमी से होता है."

इस परिभाषा से यह स्पष्ट है कि समूह सोच की अवस्था उत्पन्न होने पर व्यक्ति की अपनी आलोचनात्मक चिंतन क्षमता समूह के भीतर के दबावों को सामने समाप्त हो जाती है और समूह समग्रता के दिखावे के नाम पर गलत निर्णय ले लिया जाता है.

4.2.3. समूह सोच संप्रत्यय का मूल्यांकन -

समाज में वैज्ञानिकों ने समूह सोच के संप्रत्यय का मूल्यांकन दिनांक 2 कसौटी ऊपर करने की कोशिश की है

1 - क्या समूह सोच के संप्रत्यय का समूह प्रभाव को शोधो के साथ तालमेल है?

2 - समूह सोच का प्रत्यक्ष जांच

दोनों का वर्णन निम्नलिखित है -

1 - सोच के संप्रत्यय का समूह प्रभाव के सौदों के साथ तालमेल है? - यदि समूह प्रभाव के अन्य क्षेत्र में किए गए शोधों के परिणाम पर देखें तो हम संभवत इस निष्कर्ष पर पहुंचेंगे की समूह सोच के जो लक्षण बतलाए गए हैं, वे इन सौदों के साथ सही बैठते हैं. आत्मा संपोषित पूर्वाग्रह कथा अनुपालन के क्षेत्र में किए गए अध्ययनों के परिणाम समूह सोच के लक्षणों के अनुकूल है. स्टनर (Stunnar, 1982) ने कहा है कि समूह सोच की प्रक्रिया समूह प्रभाव के क्षेत्र में किए गए गत शोध के अनुरूप है. स्पिनर ने भी इस बिंदु को स्पष्ट कर दिया है कि समूह समग्रता अपने आप में समूह सोच उत्पन्न नहीं करता है बल्कि समग्रता की इच्छा से समूह सोच उत्पन्न होता है. स्पष्ट है कि इस कसौटी पर समूह सोच का संप्रत्यय सही उतरता है.

2- समूह सोच का प्रत्यक्ष जांच- जैनिस ने समूह सोच की प्रत्यक्ष जांच करने के लिए किस अध्ययनों का सहारा लिया. इन्होंने एक विशेष प्रश्न का निर्माण किया प्रश्न था क्या समूह प्रक्रियाओं के आधार पर लिए गए उत्तम या बुरे निर्णय द्वारा बताए गए पूर्व कथनों के आधार पर एक दूसरे से भिन्न साबित होते हैं?

स्पष्ट हुआ कि समूह सोच का उक्त दोनों कार्यों पर किया गया मूल्यांकन अनुकूल प्रतीत होता है. अतः इसकी वास्तविकता तथा वैधता दोनों सही है., फल स्वरूप, समूह प्रक्रियाओं के अध्ययनों में समूह सोच जैसी संप्रदाय की उत्पत्ति न हो, इस पर ध्यान देने की विशेष जरूरत है.

4.2.4. समूह मनोबल :

1.5 समूह मनोबल का अर्थ - समाज मनोवैज्ञानिकों के अनुसार समूह मनोबल एक जटिल एवं बहु विमीय संप्रत्यय है जिसके परिणाम स्वरूप इसकी परिभाषा में कुछ विभिन्नता हमें मिलती है. इस विभिन्नता के बावजूद समाज मनोवैज्ञानिकों में इस बात के सहमति है कि मनोबल समूह का एक वांछित गुण है. क्रैच तथा क्रचफील्ड (1948) के अनुसार," मनोबल से तात्पर्य समूह का कार्य के स्तर तथा समूह की एकता, एकात्मता एवं सामूहिक भावना से होता है." लिंडग्रेन (1973) के अनुसार," समूह की समस्या या कार्य के प्रति सदस्यों में आशावाद एवं विश्वास की भावना को मनोबल कहा जाता है समूह मनोबल व्यक्ति के सदस्यों के मनोबल का योगिक होता है ."

समूह मनोबल की विशेषताएं-

उपयुक्त परिभाषा ओं के आधार पर समूह मनोबल की निम्न विशेषताएं प्राप्त होती हैं .

i. समूह मनोबल का संबंध एकता तथा उनमें व्याप्त सामूहिक भावना से होता है . यदि किसी समूह के सदस्यों द्वारा समूह लक्ष्य को प्राप्त करने में काफी संयोगिता तथा सभा गीता दिखलाई जाती है तो ऐसा समझा जाता है कि समूह में मनोबल अधिक है .

ii. समूह मनोबल का संबंध सदस्यों के आत्मविश्वास से भी होता है . समूह मनोबल ऊंचा रहने पर सदस्यों में आत्मविश्वास अधिक होता है .

iii. समूह मनोबल का संबंध सदस्य में आशावाद की भावना से भी है .समूह में मनोबल होने से सदस्यों में समूह लक्ष्य की प्राप्ति से संबंधित धनात्मक प्रत्याशा अधिक होती हैं .

iv. समूह मनोबल में सदस्यों में समग्रता अधिक होती है क्योंकि समूह का लक्ष्य, क्रियाएं आदि सदस्यों के लिए काफी आकर्षक होती है .

v. समूह मनोबल सभी सदस्यों के व्यक्ति का मनोबल का एक योग होता है . यदि सभी सदस्यों का व्यक्ति का मनोबल ऊंचा होता है तो समूह का मनोबल भी ऊंचा होता है परंतु यदि सभी सदस्यों का व्यक्ति का मनोबल नीचा होता है तो समूह का मनोबल भी नीचा होता है .

4.2.5. उच्च एवं निम्न समूह मनोबल की कसौटी- (Criteria of high and low group moral)

किसी समूह का मनोबल ऊंचा हो सकता है तथा नीचा भी हो सकता है. समाज मनोवैज्ञानिकों ने कुछ कसौटी या सूचक का वर्णन किया है जिनके आधार पर हम आसानी से जान सकते हैं कि समूह का मनोबल ऊंचा है या नीचा है. किसी समूह में यदि निम्नांकित सूचक मौजूद हो तो समूह का मनोबल ऊंचा समझा जाता है परंतु यदि समूह में विपरीत स्थिति होती है, तो समूह का मनोबल नीचे समझा जाता है.

i: समूह में एकता तथा एकात्मकता- समूह के सदस्यों में एकता तथा एकात्मकता कि भावना किसी बाय दबाव के कारण नहीं बल्कि आंतरिक समग्रता के कारण होती है, तो वैसी परिस्थिति में समूह का मनोबल ऊंचा समझा जाता है. आंतरिक समग्रता के आधार पर एकता होने पर सदस्य अपनी इच्छा अनुसार एक दूसरे से मिलकर समूह लक्ष्य की प्राप्ति की ओर अग्रसर होते हैं फलता समूह का मनोबल ऊंचा होता है. किसी समूह में कभी कभी किसी बाहरी प्रसिद्धि के कारण भी थोड़े समय के लिए एकता उत्पन्न हो जाती

है परंतु इसके आधार पर हम या नहीं कहेंगे कि समूह मनोबल ऊंचा है क्योंकि बाहरी परिस्थिति में पड़ने वाला दबाव समाप्त होते ही समूह की एकता भी समाप्त हो जाती है.

ii: विभाजन संघर्ष का न्यूनतम स्तर- जिस समूह के सदस्यों में भेदभाव एवं फूट डालने वाली प्रवृत्ति कम होती है वह समूह अधिक संगठित होता है तथा साथ ही साथ उसका मनोबल ऊंचा होता है . परंतु जी समूह में विभाजक शक्तियां अधिक होती है, उनके सदस्यों में संगठन काफी कम होता है. जिसके कारण समूह का मनोबल काफी नीचा होता है .

iii: समूह को सदस्यों एवं नेतृत्व के प्रति अनुकूल मनोवृति- जब समूह में सदस्यों की मनोवृत्ति एक दूसरे के प्रति एवं समूह के नेता के प्रति अनुकूल होती है तो समूह का मनोबल ऊंचा होता है . ऐसी परिस्थिति में समूह के सदस्य एक दूसरे के प्रति तथा साथ ही साथ समूह के नेता के प्रति काफी नष्ट होते हैं . इसके विपरीत जब सदस्यों की मनोवृत्ति एक दूसरे के प्रति एवं साथ ही साथ समूह के नेता के प्रति नकारात्मक होती है तो इस स्थिति भयावह हो जाती है और समूह का मनोबल काफी नीचे समझा जाता है.

iv: नई एवं परिवर्तनशील परिस्थितियों के प्रति अनुकूलता- जब समूह के सदस्यों में नई एवं परिवर्तनशील परिस्थितियों के प्रति अपने आप को अनुकूल करने की क्षमता अधिक होती है, तो वैसी परिस्थिति में सदस्यों में आंतरिक संघर्ष होने की संभावना कम होती है. जिसके फलस्वरूप मनोबल काफी ऊंचा होता है . की तरफ यदि सदस्यों में नई एवं परिवर्तनशील परिस्थिति के साथ अनुकूलन करने की क्षमता नहीं होती है तो वैसी परिस्थिति में समूह में आंतरिक संघर्ष अधिक होता है और समूह का मनोबल नीचे समझा जाता है .

v: सदस्यों में पर्याप्त मात्रा में मैत्री भाव- अगर समूह के सदस्यों के बीच मैत्री भाव पर्याप्त मात्रा में है तो समूह का मनोबल ऊंचा होता है . ऐसी परिस्थिति में समूह के सदस्यों में एक दूसरे के प्रति पसंदगी भी अधिक होती है . दूसरी तरफ यदि समूह के सदस्यों में मैत्री भाव का अभाव होता है तो सदस्यों में एक दूसरे के प्रति नापसंदगी अधिक होती है और समूह का मनोबल नीचा होता है.

vi: व्यक्तिक सदस्यों के उद्देश्यों की समानता- समूह में प्रत्येक सदस्य का अपना अपना एक विशेष उद्देश्य होता है. वैसे समूह का मनोबल ऊंचा समझा जाता है जिसकी अधिकतम सदस्यों का व्यक्ति का उद्देश्य करीब करीब एक ही समान हो . इस समानता के कारण सदस्यों में एकजुट होकर कार्य करने की प्रवृत्ति अधिक होती है जिससे उनमें एकता की वृद्धि होती है और समूह का मनोबल ऊंचा होता है . दूसरी तरफ यदि व्यक्ति के सदस्यों के उद्देश्यों में और समानता पता होती है तो इससे सदस्यों में आपस में मनमुटाव बढ़ता है और समूह का मनोबल नीचा समझा जाता है.

vii: समूह समग्रता- जब समूह के सदस्यों में समूह में बने रहने के लिए आकर्षण अधिक होती है, तो उस समूह का मनोबल ऊंचा होता है. दूसरी तरफ जब सदस्यों के लिए समूह आकर्षक नहीं रह जाता जिसके परिणामस्वरूप वे सदस्यता को स्वेच्छा से त्यागने के लिए तैयार रहते हैं, तो समूह का मनोबल नीचे समझा जाता है.

viii: अहम-संहिता- जब समूह में सदस्यों में अहम संहिता का भाव अधिक होता है, तो वह समूह के साथ एक तरह का तादात्म्य या एकीकरण स्थापित कर लेता है. वह समूह के लिए ही जीता है या मरता है

ऐसे समूह का मनोबल ऊंचा ही होता है. दूसरी तरफ जब सदस्यों में अहम की भावना कम होती है तो वह समूह के सदस्यों के रूप में जो आवश्यक औपचारिकता होती है, मात्र उसे किसी तरह निभा देता है, इसके परिणाम स्वरूप ऐसे समूह का मनोबल प्राय: नीचा होता है

ix: उत्तरदायित्व की एवं समूह में होने की भावना- किसी समूह के उच्च मनोबल की एक पहचान यह भी है कि उसके सदस्यों में उत्तरदायित्व की भावना अधिक होती है तथा साथ ही साथ वह यह भी समझता है कि समूह हमारा है या हम समूह के हैं . दूसरी तरफ जब समूह का मनोबल नीचा होता है तो उसके सदस्यों में उत्तरदायित्व की भावना कम होती है और वे समूह की सदस्यता को एक बार एवं औपचारिकता समझते हैं .

x: उत्पादकता - कुछ समाज मनोवैज्ञानिकों का विचार है कि उत्पादकता के आधार पर भी मनोबल की पहचान की जा सकती है . यदि समूह की उत्पादकता अधिक है तो ऐसा समझा जाता है कि अवश्य ही उस समूह का मनोबल भी ऊंचा होगा . दूसरी तरफ यदि समूह की उत्पादकता कम हो तो ऐसा समझा जाता है कि समूह का मनोबल भी नीचा होगा .

परंतु आधुनिक समाज मनोवैज्ञानिकों ने उत्पादकता है तथा मनोबल के बीच इस तरह के धनात्मक संबंध का खंडन किया है. इन लोगों का कहना है कि समूह का मनोबल कम रहने पर भी अन्य कारणों से समूह की उत्पादकता अधिक हो सकती है. जैसे- मेयर्स 1987 के अनुसार- यदि समूह में अधिक उत्पादकता के लिए विशेष पुरस्कार की घोषणा कर दी जाती है तो मनोबल कम रहने पर भी समूह की उत्पादकता बढ़ जाती है.

उपरोक्त मानदंडों के आधार पर हम यहां आसानी से पहचान कर सकते हैं कि किसी समूह का मनोबल ऊंचा है या नीचा है.

4.2.6. समूह मनोबल के निर्धारक – (Determinants of group morale)-

समाज मनोवैज्ञानिकों ने कुछ ऐसे कारणों का विशेष वर्णन किया है जिनके द्वारा किसी समूह का मनोबल प्रभावित होता है इन कारकों को मुख्य रूप से दो भागों में बांटा गया है -

1 - सकारात्मक निर्धारक (positive determinants)

2 - नकारात्मक निर्धारक (negative determinants)

1. सकारात्मक निर्धारक - मनोबल के कुछ सकारात्मक निर्धारक है . सकारात्मक निर्धारक का संबंध सदस्यों के धनात्मक उद्देश्य से होता है धन की प्राप्ति करने के लिए समूह का प्रत्येक सदस्य प्रेरणात्मक, संवेगात्मक तथा संज्ञानात्मक प्रयास करता है . प्रमुख सकारात्मक कारकों का वर्णन निम्नलिखित है-

i: धनात्मक लक्ष्य- किसी समूह में ऊंचा मनोबल होने के लिए यह अति आवश्यक है कि समूह के सदस्यों के सामने एक धनात्मक एवं स्पष्ट लक्ष्य हो . समाज मनोवैज्ञानिकों का मत है कि जब समूह का लक्ष्य स्पष्ट एवं धनात्मक होता है अर्थात ऐसा होता है जो सदस्यों में आकर्षण प्रदान करता है, तो उस

समूह का मनोबल अच्छा एवं ऊंचा होता है . धनात्मक लक्ष्य सदस्यों में एकता पैदा करके उन्हें अपनी और आकर्षित कर लेता है . अतः धनात्मक लक्ष्य एक तरह का चुंबकीय बल्ला के रूप में कार्य करता है जो सदस्यों में एकात्मता का भाव उत्पन्न करके उन्हें संगठित करता है और समूह का मनोबल ऊंचा करता है .

ii: सहायक आवश्यकताओं की संतुष्टि- समूह सदस्यता का मूल उद्देश्य मां ने लक्ष्य की प्राप्ति होती है . इस मुल्ले उद्देश्य के अलावा भी एक और लक्ष्य होता है जो समूह सदस्यता को प्रेरित करता है . वह लक्ष्य है- सहायक आवश्यकताओं की संतुष्टि . प्रत्येक सदस्य की कुछ सहायक आवश्यकता जैसे सहभागिता की आवश्यकता, आत्म अभिव्यक्ति की आवश्यकता तथा आदर एवं सम्मान की आवश्यकता आदि होती है, जिनकी संतुष्टि समूह में होती है . जिस समूह में उन सहायक आवश्यकताओं की संतुष्टि जितने ही अधिक होती है, उस समूह का मनोबल उतना ही ऊंचा होता है. फिशर 1983 तथा मेयर 1987 के अनुसार- समूह में जिस सीमा तक इन सहायक आवश्यकताओं की संतुष्टि होती है, उस सीमा तक समूह में संयोगिता उत्पन्न होती है और समूह का मनोबल ऊंचा होता है .

iii: लक्ष्य की प्रगति की भावना- समूह मनोबल को ऊंचा बनाए रखने के लिए सिर्फ यही आवश्यक नहीं है कि समूह लक्ष्य धनात्मक हो तथा उसे प्राप्त करने के लिए स्पष्ट प्रविधियां मौजूद हो बल्कि यह भी आवश्यक है कि सदस्यों में इस बात का ज्ञान हो कि वह प्रगति की ओर अग्रसर हो रहे हैं . ऐसी भावना से उनका हौसला बुलंद होता है और समूह का मनोबल ऊंचा होता है . कारण है कि युद्ध के समय सैनिकों का मनोबल ऊंचा रखने के लिए बार-बार यह घोषणा की जाती है कि हम लोग मैदान में आगे बढ़ रहे हैं तथा दुश्मन पीछे की ओर हटते जा रहे हैं .

iv: समय परिप्रेक्ष्य- किसी समूह का मनोबल समय परिप्रेक्ष्य द्वारा भी प्रभावित होता है . समय परिप्रेक्ष्य का संबंध समूह में अतीत की घटनाओं तथा भविष्य में समूह लक्ष्य की प्राप्ति के संबंध में बनाए जाने वाली नीतियों योजनाओं से है . इसके अलावा समय परिप्रेक्ष्य का संबंध इस बात से भी होता है कि कहां तक समूह के सदस्य समूह की वर्तमान क्रियाओं का संबंध समूह लक्ष्य से जोड़ पाते हैं . अगर समूह ऐसा है जिसके सदस्य समूह लक्ष्य के लिए समूह की वर्तमान क्रियाओं की महत्ता को सही सही समझता है, तो उस समूह का मनोबल ऊंचा हो जाता है.

क्रैच तथा क्लच क्रशफिल्ड 1948 के अनुसार- जब समूह के सदस्य को समूह के लक्ष्य तथा उससे संबंधित भविष्य निधि एवं योजनाओं के बारे में कुछ नहीं बताया जाता है तथा समूह की क्रमिक क्रियाएं सदस्यों के दृष्टिकोण से पृथक एवं असंबंधित होती हैं, तो समूह का मनोबल नीचा हो जाता है . इन लोगों ने विशेषकर इस बात पर बल डाला है कि जब सदस्यों को भविष्य की योजनाओं एवं नीतियों के बारे में अंधेरे में रखा जाता है, तो इससे सदस्यों में और सुरक्षा की भावना उत्पन्न होती है एवं साथ ही साथ उन में कुंठा भी उत्पन्न होती है जो समूह मनोबल को गिरा देती है.

लेविन 1942 बताया कि उच्च मनोबल तथा लंबा समय परिपेक्ष में संबंध पारस्परिक होता है.

v: आकांक्षा स्तर तथा उपलब्धि स्तर- समूह के मनोबल को ऊंचा रखने के लिए आवश्यक है कि सदस्यों का आकांक्षा स्तर तथा उपलब्धि स्तर मैं एक ऐसा तालमेल हो कि दोनों में एक निश्चित संतुलन बना रहे. सदस्य अपनी उपलब्धि स्तर के आधार पर ही आकांक्षा स्तर का निर्माण करते हैं .

लेविन 1942 ने अपने प्रयोगों के आधार पर यह बताया कि यदि समूह का आकांक्षा स्तर पहले की उपलब्धि स्तर से काफी ऊंचा होता है, तो इससे समूह में कुंठा तथा संघर्ष की भावना बढ़ती है क्योंकि आकांक्षा के उस बड़े हुए स्तर पर पहुंचना समूह के लिए नाकों चने चबाने के समान होता है ऐसी परिस्थिति में समूह का मनोबल गिर जाता है. दूसरी तरफ यदि समूह के आकांक्षा स्तर का निर्धारण पहले के उपलब्धि स्तर को ध्यान में रखते हुए एक ऐसे बिंदु पर किया जाता है के सदस्य आसानी से पहुंच सकते हैं तो ऐसी परिस्थिति में समूह के सदस्यों में लक्ष्य तक पहुंचने के लिए सहयोग की भावना तीव्र हो जाती है और समूह का मनोबल ऊंचा हो जाता है .

vi: समूह के अंतर्गत त्याग या लाभ में समानता- समूह में ऊंचा मनोबल के लिए यह आवश्यक है कि समूह के सभी सदस्यों में भावना हो कि उन्हें सामान लाभ हो रहा है या यदि समूह को लक्ष्मी प्राप्ति के लिए कुछ त्याग करना पड़ रहा है तो सभी सदस्य समान रूप से त्याग कर रहे हैं . कहने का तात्पर्य यह है कि सदस्यों में सामान लाभ या त्याग की भावना का होना उनका मनोबल के लिए आवश्यक है . यदि किसी कारण से सदस्यों में यह भावना उत्पन्न हो जाती है कि उन्हें समूह में दूसरे सदस्यों की अपेक्षा कम लाभ हो रहा है परंतु उसे त्याग अधिक करना पड़ रहा है तो ऐसी परिस्थिति में समूह के नेतृत्व में सदस्यों का विश्वास समाप्त हो जाता है और समूह के भीतर अनेक उप समूह कायम हो जाते हैं और आपस में बैर भाव अधिक बढ़ जाता है . जिसके कारण समूह का मनोबल नीचा हो जाता है .

vii: एकात्मकता तथा तादात्म्य की भावना- समूह का मनोबल सदस्यों में एकता तथा तादात्म्य की भावना द्वारा भी प्रभावित होता है . मनोबल का यह एक संवेगात्मक निर्धारक है संवेगात्मक कारको का प्रभाव मनोबल पर सीधा पड़ता है .

वाटसन (1942) के अध्ययनों के अनुसार सदस्यों में जब एकात्मक ताकि भावना तीव्र होती है तो ऐसी परिस्थिति में उन्हें एकजुट होकर समूह लक्ष्य और कार्य करने की प्रेरणा अधिक मिलती है . इससे समूह का मनोबल ऊंचा हो जाता है. तदात्म्य का भी प्रभाव समूह मनोबल पर पड़ता है . समूह तदात्म्य से तात्पर्य सदस्यों द्वारा समूह को अपना समूह, समूह कल्याण को अपना कल्याण तथा मो की उपलब्धियों को अपनी उपलब्धि समझने की प्रवृत्ति से होता है . मनोवैज्ञानिक प्रयोगों से यह सिद्ध हो चुका है कि अन्य बातों के सामान रहने पर, सदस्य समूह के साथ जितना ही अधिक तादाद में स्थापित करते हैं, समूह मनोबल उतना ही अधिक ऊंचा होता है .

viii: नेतृत्व- समूह का मनोबल नेतृत्व पर भी निर्भर करता है क्योंकि समूह के लिए नेता एक महत्वपूर्ण शक्ति होता है . समाजवाद वैज्ञानिकों द्वारा किए गए अध्ययनों से यह स्पष्ट हुआ कि सत्ता वादी नेता की अपेक्षा प्रजातंत्र आत्मक नेता के होने पर समूह का मनोबल अधिक ऊंचा होता है क्योंकि इस प्रकार के नेतृत्व में सदस्यों द्वारा समूह कार्य में सहयोग, एकता की भावना, विचारों की स्वतंत्रता तथा अन्य प्रेरणात्मक बल अधिक होते हैं . फिशर 1983 तथा ऑलपोर्ट 1980 के अनुसार प्रजातंत्र आत्मक नेतृत्व

में सत्ता वादी नेतृत्व की अपेक्षा मनोबल ऊंचा होने का बढ़िया है कि इस तरह के समूह में आपसी संघर्ष कम तथा हम का भाव अधिक होता है जिसका सीधा प्रभाव मनोबल पर पड़ता है अर्थात मनोबल ऊंचा हो जाता है.

ix: सामाजिक एवं आर्थिक कारक- समूह का मनोबल सामाजिक व्यवस्था सदस्य की आर्थिक स्थिति पर भी निर्भर करता है . यदि सामाजिक व्यवस्था ऐसी है जिसमें सभी योग्य व्यक्तियों को उचित स्थान दिया जाता है, तो वैसे समूह या समाज में अधिक से अधिक व्यक्ति शामिल होना चाहते हैं और प्रायः ऐसे समूह का मनोबल ऊंचा होता है .

हिल्टन तथा डैनली 1985 द्वारा किए गए अध्ययनों से भी यह स्पष्ट होता है . सदस्यों की आर्थिक स्थिति का भी प्रभाव समूह मनोबल पर पड़ता है . यदि समूह के लोगों को धन कमाने का स्पष्ट स्रोत है और साथ ही साथ और में बेरोजगारी नहीं है तो ऐसी परिस्थिति में सदस्यों का मनोबल ऊंचा होता है . परंतु यदि सदस्यों में गरीबी एवं भुखमरी व्याप्त है तो इससे समूह के सदस्यों का मनोबल नीचा होता है .

2- नकारात्मक निर्धारक-

ऊपर वर्णन किए गए सकारात्मक निर्धारकों के अलावा कुछ नकारात्मक निर्धारक भी है जिनका प्रभाव समूह मनोबल पर पड़ता है . नकारात्मक निर्धारक में चिंता, खतरा, भय आदि प्रमुख हैं . अनेक ऐसे उदाहरण हमें मिलते हैं जिनमें या देखा गया है कि जब जब समूह के सदस्यों में बाहर के समूहों से खतरा या डर उत्पन्न हो जाता है, वे आपसी भेदभाव को भुला कर तुरंत संगठित हो जाते हैं तथा काफी एकता एवं सहयोग दिखलाते हैं. इससे समूह का मनोबल ऊंचा होता है. कुछ समाज मनोवैज्ञानिकों ने धनात्मक निर्धारक तथा नकारात्मक निर्धारक द्वारा उत्पन्न समूह मनोबल की तुलना किया है और बताया कि नकारात्मक निर्धारण से निम्नांकित दो अर्थों में भिन्न है -

a: नकारात्मक निर्धारक जैसे- भय, चिंता आदि समूह के मनोबल को ऊंचा करने में उतना प्रभाव कारी नहीं होते हैं जितना कि धनात्मक निर्धारक होते हैं .

b: नकारात्मक निर्धारक द्वारा उत्पन्न मनोबल सकारात्मक या धनात्मक निर्धारक द्वारा उत्पन्न मनोबल की अपेक्षा कम स्थाई होता है .

गोल्डन (1940) ने अपने अध्ययन में पाया कि धनात्मक निर्धारकों के आधार पर बना समूह नकारात्मक निर्धारकों के आधार पर बने समूह की अपेक्षा प्रयोग करता द्वारा उत्पन्न किए गए भेद भाव से लगभग ना के बराबर प्रभावित हुआ क्योंकि पहले तरह के समूह का मनोबल दूसरे तरह के मनोबल की अपेक्षा ऊंचा एवं स्थिरता .

लेविन, लिपिट तथा वाइट (1939) ने अपने अध्ययन में पाया कि नकारात्मक निर्धारकों के आधार पर बने समूह में संघर्ष तथा आपसी भेदभाव धनात्मक निर्धारकों के आधार पर समूह का अपेक्षा अधिक था. परिणाम स्वरूप पहले तरह के समूह का मनोबल थोड़े समय के लिए अवश्य ही ऊंचा हो जाता था परंतु बाद में वैसे समूह का मनोबल बिल्कुल ही रसातल में चला जाता था .

निष्कर्ष के रूप में हम यह कह सकते हैं कि समूह का मनोबल सकारात्मक या धनात्मक कारको तथा नकारात्मक कारको दोनों से ही प्रभावित होता है . सकारात्मक कारकों का प्रभाव मनोबल को ऊंचा तथा स्थिर बनाना होता है.

4.2.7. समूह मनोबल को मापने की विधियां -

समाज मनोवैज्ञानिकों ने समूह मनोबल को मापने के लिए विभिन्न विधियों का प्रतिपादन किया है . इनमें चार प्रमुख है जो निम्नलिखित है .

1- साक्षात्कार विधि- इस विधि द्वारा समूह का मनोबल मापने में समूह के सदस्यों का साक्षात्कार किया जाता है जिसमें भेंटकरता (interviewer) सदस्यों से समूह के मनोबल के विभिन्न पहलुओं जैसे समूह की एकता, एकात्मकता, आपसी संबंध, अन्य सदस्यों एवं समूह के नेता के प्रति मनोवृति आदि से संबंधित प्रश्नों को पूछता है और दिए गए उत्तरों का विश्लेषण करके यह पता लगाया जाता है कि समूह का मनोबल ऊंचा है या नीचा है.

साक्षात्कार का स्वरूप संरचित तथा और असंरचित कुछ भी हो सकता है. संरचित साक्षात्कार होने पर भेटकर्ता द्वारा समूह के सदस्यों से पूर्व निर्मित प्रश्नों को एक निश्चित क्रम में पूछता है. असंरचित साक्षात्कार में भेटकर्ता समूह के सदस्यों से जिन प्रश्नों को पूछता है वे ना तो पूर्व निर्मित होते हैं और ना ही उनका कोई क्रम होता है. फल स्वरूप असंरचित साक्षात्कार में लचीलापन का गुण अधिक होता है. चाहे साक्षात्कार संरक्षित हो या असंरचित, इसे प्रारंभ करने के पहले भेंट करता को यह देख लेना होता है कि समूह का आकार क्या है? यदि समूह का आकार छोटा है तो वैसी परिस्थिति में सभी सदस्यों का साक्षात्कार किया जाता है. परंतु यदि समूह का आकार बड़ा है तो साक्षात्कार प्रारंभ करने से पहले उस बड़े समूह में से एक प्रतिदर्श यादृच्छिक रूप से ऐसा चुनता है जो पूरे समूह का सही सही प्रतिनिधित्व कर सके और इस प्रतिदर्श के प्रत्येक सदस्य के साक्षात्कार द्वारा मनो बल की माप की जाती है. यदि इस प्रतिदर्श का मनोबल ऊंचा पाया जाता है तो समझा जाता है कि पूरे समूह का मनोबल ऊंचा होगा और यदि उस प्रतिदर्श का मनोबल नीचा होता है तो उस समूह का मनोबल नीचे समझा जाता है. समूह मनोबल को मापने में साक्षात्कार विधि का प्रयोग प्राय: किया जाता है फिर भी इस विधि के कुछ दोष है जो निम्न है-

- इस विधि का सबसे प्रमुख दोष यह है कि इसमें आत्मानिष्ठता अधिक होती है
- इस विधि में यह भी देखा गया है कि साक्षात्कार करता साक्षात्कार में दिए गए उत्तरों के आधार पर समूह मनोबल के बारे में अंतिम निर्णय करते समय पक्षपात, पूर्वाग्रह से काफी प्रभावित होते हैं, जिसके कारण है सही से निर्णय नहीं ले पाते हैं
- चुकी समूह के सदस्यों को पूछे गए प्रश्नों का उत्तर देना होता है इसलिए कुछ सदस्य परिस्थिति की नवीनता के कारण घबराकर सही उत्तर नहीं दे पाते हैं . इस कारण समूह मनोबल के बारे में कुछ भी अंदाज लगाना मुश्किल हो जाता है .

2- समाजमिति विधि- समाजमिति विधि का प्रतिपादन मोरेनो (1943) द्वारा किया गया . जेनकिंस (1947) ने इसमें संशोधन किया और इसे मनोनयन विधि कहा है. जेनकिंस ने इस विधि का प्रयोग सफलतापूर्वक नौसेना के सदस्यों का मनोबल मापने में किया है. इस विधि में जिस समूह के सदस्यों का मनोबल मापना है, उनसे व्यक्तिगत रूप में यह पूछा जाता है कि किसके साथ मिलकर के साथ मिलकर वे समूह की क्रियाओं मैं हाथ बटाना पसंद करेंगे . प्रत्येक सदस्य अपने इस पसंदगी की अभिव्यक्ति गुप्त रूप से करता है. जब प्रत्येक सदस्य की पसंदगी का पता चलता है तो उसे एक विशेष चित्र द्वारा हम दिखाते हैं जिसे समाज आलेख कहा जाता है . इस आलेख पर नजर डालने से रचना के बारे में स्पष्ट रूप से कुछ ऐसी बातों का पता चलता है जिससे समूह मनोबल को आसानी से मापा जा सकता है .

समूह के मनोबल का मापन समाजमिति विधि द्वारा वैज्ञानिक तरीके से होता है फिर भी इस विधि में कुछ दोष पाए गए हैं जो निम्न हैं -

- इस विधि द्वारा समूह के मनोबल का मापन तभी सही ढंग से होता है जब समूह का आकार छोटा हो. फिशर के अनुसार जब समूह का आकार बड़ा होता है तो समाज आलेख से कुछ निश्चित निष्कर्ष निकालना कठिन हो जाता है .अतः समूह का आकार छोटा होने से समूह मनोबल का मापन आसानी से हो जाता है .
- समाजमिति विधि द्वारा समूह मनोबल के कुछ घटकों जैसे उपलब्धि स्तर, आकांक्षा स्तर, अहम- आवेष्टन आदि का सही सही मापन नहीं होता है .

3- प्रश्नावली विधि- समूह मनोबल का मापन प्रश्नावली विधि द्वारा भी होता है. इस विधि में शोधकर्ता द्वारा समूह में एकता तथा सहयोग के द्वारा एक दूसरे के प्रति मनोवृति, नेता में विश्वास आदि के संबंध में छोटे-छोटे प्रश्नों या कथनों की एक सूची बना ली जाती है. इस सूची को प्रश्नावली कहा जाता है. प्रायः इन प्रश्नों या कथनों का उत्तर समूह के सदस्यों का 'हां 'या 'नहीं' के रूप में देना होता है. उनके द्वारा किए गए उत्तरों का सांख्यिकीय विश्लेषण करके समूह के मनोबल का मापन किया जाता है. सांख्यिकी विश्लेषण करने के बाद यदि यह पता चलता है कि समूह के सदस्यों का नेता में विश्वास है, तथा सदस्यों में एक दूसरे के प्रति आदर भाव, सहकारिता, एकता की भावना है तो, समूह का मनोबल ऊंचा समझा जाता है. परंतु यदि यह पता चलता है कि समूह के सदस्यों मैं उपयुक्त तथ्यों की कमी है तो ऐसा समझा जाता है कि समूह में मनोबल नीचा है .

इन गुणों के अलावा भी प्रश्नावली विधि के कुछ दोष है जो निम्नलिखित हैं-

- अक्सर यह देखा गया है कि प्रश्नावली में दिए गए प्रश्नों के सही उत्तर को सदस्य छुपा लेते हैं और उसकी जगह पर मनगढ़ंत उत्तर दे देते हैं . इसका परिणाम यह होता है कि समूह के बारे में सही तस्वीर नहीं मिल पाती है और फिर उसके आधार पर मनोबल को सही-सही मापना संभव नहीं हो पाता है .

- प्रश्नावली विधि द्वारा समूह मनोबल मापने में कभी कभी एक और कठिनाई सामने आती है . ऐसा देखा गया है कि समूह के सदस्य अंगूठा छाप अर्थात अनपढ़ होते हैं . फल स्वरूप वे प्रश्नों को पढ़ नहीं सकते हैं . अतः ऐसे सदस्यों के विचारों को हम प्रश्नावली विधि द्वारा नहीं जान पाते हैं .
- कभी कभी कोई कोई सदस्य प्रश्नावली के कुछ प्रश्नों का उत्तर छोड़ देते हैं . ऐसी परिस्थिति में भी इस विधि द्वारा समूह मनोबल को मापना संभव नहीं है .
- जब समूह का आकार बड़ा होता है और उसके सदस्य एक जगह पर ना होकर एक बड़े भूभाग में बिखरे होते हैं तो शोधकर्ता ऐसे समूह को मनोबल को मापन करने के लिए डाक प्रश्नावली का प्रयोग करता है . ऐसी परिस्थिति में समूह मनोबल का मापन सही सही करना संभव नहीं हो पाता है .

4- मनोवृति मापनी- समूह मनोबल को मापने के लिए समाज मनोवैज्ञानिक ने मनोवृति मापनी का भी सहारा लिया है. एक सदस्य की मनोवृत्ति दूसरे सदस्यों के प्रति, नेता के प्रति तथा समूह लक्ष्य के प्रति अध्ययन करके समूह के मनोबल का मापन किया जाता है. यदि सदस्यों की मनोवृत्ति अपने नेता, समूह के अन्य सदस्यों तथा समूह लक्ष्य के प्रति सकारात्मक होती है समूह का मनोबल ऊंचा समझा जाता है परंतु जब ऐसी मनोवृत्ति नकारात्मक होती हैं तो समूह का मनोबल नीचे समझा जाता है.

मनोवृति मापनी विधि के भी कुछ दोष हैं जो निम्नलिखित है-

- मनोवृति मापनी में प्रायः सदस्य वास्तविक मनोवृति की अभिव्यक्ति ना करके एक सामाजिक रूप से वंचित मनोवृति की अभिव्यक्ति करते हैं .
- मनोवृति मापने द्वारा मनोवृति का मापन उस मापने में छपे हुए कथनों को पढ़कर तथा उसके प्रति अनुक्रिया करने पर होता है . इसका स्पष्ट मतलब तब यह हुआ कि यदि सदस्य में छपे हुए प्रश्नों को पढ़कर समझने तथा करने की क्षमता नहीं है, तो उन पर मनोवृत्ति मापने का प्रयोग समूह मनोबल को मापने में नहीं किया जा सकता है .

उपर्युक्त विधियों के अलावा भी समाज मनोवैज्ञानिकों ने समूह मनोबल को मापने के लिए कुछ वस्तुनिष्ठ मानदंडों का वर्णन किया है . इन मापदंडों में समूह की उत्पादकता, सदस्यों की शिकायतें, सदस्यों की अनुपस्थिति आदि प्रमुख है यदि किसी समूह में सदस्यों की शिकायतें अधिक होती हैं, तो सदस्य समूह कार्य से प्रायः अनुपस्थित रहते हैं और समूह की उत्पादकता कम रहती है, तो समूह का मनोबल नीचे समझा जाता है . इसके विपरीत यदि समूह में सदस्यों की शिकायतें काफी कम होती है, सदस्यों की अनुपस्थिति कम होती है तथा समूह की उत्पादकता अधिक होती है, तो समझा जाता है कि समूह मनोबल ऊंचा है .

इस प्रकार स्पष्ट है कि समूह मनोबल को मापने के अनेक विधियां समाज मनोवैज्ञानिकों द्वारा प्रतिपादित की गई है.

4.2.8. समूह मनोबल को बढ़ाने की विधियां-

समाज मनोवैज्ञानिकों ने ऐसी विधियों का भी प्रतिपादन किया है जिनके सहारे समूह का मनोबल यह भी कम है, तो उसे और अधिक बढ़ाया जा सकता है . समूह मनोबल ऊंचा होने से समूह के निष्पादन पर सीधा असर पड़ता है. बढ़े हुए मनोबल से समूह का निष्पादन भी अधिक बढ़ जाता है. यही कारण है कि इन विधियों की महत्ता समाज मनोवैज्ञानिकों में काफी है. कुछ ऐसी विधियां निम्नलिखित हैं-

1- विशेषज्ञ विधि- समूह मनोबल ऊंचा करने की यह एक सरलतम विधि है. इस विधि में समूह में एक विशेषज्ञ बुलाया जाता है जो समूह के सदस्यों से सीधा बातचीत कर नीचा मनोबल के कारणों का पता लगाता है. इस तरह से समूह का अध्ययन विशेषज्ञ स्थान पर जाकर करता है तथा सदस्यों के साथ सीधा बातचीत करके अनुभव प्राप्त करता है. आवश्यकताअनुसार वह विशेष प्रश्नावली तथा साक्षात्कार का प्रयोग करके निम्न मनोबल के सही कारणों का पता लगाता है तथा उसे दूर करने के लिए सुझाव देता है. उसकी सलाह या सुझाव के अनुसार कार्य करके समूह का नेता समूह मनोबल को ऊंचा करने का प्रयास करता है. कभी कभी ऐसा भी होता है कि एक विशेषज्ञ का सुझाव अधिक प्रभाव कारी नहीं होने के कारण समूह के नेता दूसरे विशेषज्ञ को भी बुलाते हैं जो फिर समूह के सदस्यों से बातचीत कर निम्न मनोबल के कारण का पता लगाने की कोशिश करते हैं.

यद्यपि समूह मनोबल को ऊंचा करने की यह एक सरलतम विधि है फिर भी इस विधि में एक प्रमुख दोष है - ऐसा देखा गया है कि विशेषज्ञ को समूह के सदस्य नेता के भय या अन्य सामाजिक परिस्थितियों के कारण सही एवं वास्तविक बात नहीं बता पाते हैं. इसका परिणाम यह होता है कि विशेषज्ञ को निम्न मनोबल के प्रमुख कारणों का पता नहीं चल पाता है. जिसके फलस्वरूप, उनके द्वारा मनोबल को ऊंचा करने के लिए दिया गया सुझाव अधिक प्रभाव कारी नहीं हो पाता है.

2- जासूस विधि- समाज मनोवैज्ञानिकों ने विशेषज्ञ विधि के उपर्युक्त दोष को दूर करने के ख्याल से समूह मनोबल के मापन के लिए एक दूसरी विधि का प्रतिपादन किया है जिसे जासूस विधि कहा जाता है. सीधी में भी किसी विशेषज्ञ का ही सहारा लिया जाता है जो समूह के सदस्यों के बीच विशेषज्ञ के रूप में नहीं बल्कि एक नए सदस्य के रूप में रहकर एवं उन लोगों से बातचीत करके निम्न मनोबल के कारणों का पता लगाता है समूह के अन्य सदस्य उसे सामान्य सदस्य समझकर स्पष्ट रूप से बातचीत करते हैं और समूह में निम्न मनोबल के कारणों पर नहीं संकोच प्रकाश डालते हैं. इसका परिणाम यह होता है कि जासूस विशेषज्ञ को निम्न मनोबल के सही कारणों का पता चल जाता है और फिर वह समूह के नेता को मनोबल ऊंचा करने का सुझाव देकर समूह से गायब हो जाता है.

इस विधि का सबसे प्रमुख लाभ यह है कि इसके द्वारा निम्न समूह मनोबल के वास्तविक कारणों का आसानी से पता चल जाता है. फलतः विशेषज्ञ द्वारा किया गया सुझाव काफी लाभप्रद होता है.

जासूस विधि के भी कुछ दोष है जो निम्नलिखित हैं-

- सभी सदस्यों को जासूस विशेषज्ञ पर शक हो जाता है . जिसके फलस्वरूप सदस्य या समझने लगते हैं कि यह नया सदस्य नहीं है बल्कि कोई प्रेक्षक है जो हमारे समूह की गुप्त बात को जानना

चाहता है . ऐसा समझकर सदस्य अपना स्वभाविक व्यवहार बंद कर अस्वाभाविक व्यवहार करना प्रारंभ कर देते हैं जिसके परिणामस्वरूप समूह के निम्न मनोबल के वास्तविक कारणों का पता नहीं चलता है .

- जासूस विशेषज्ञ अपना कार्य समाप्त करने पर समूह से अचानक गायब हो जाता है . इससे समूह के सदस्यों की मनोवृत्ति समूह के नेता के प्रति नकारात्मक हो जाती है तथा साथ ही साथ उसमें विश्वास कम हो जाता है . इसका परिणाम यह होता है कि समूह मनोबल ऊंचा होने के बजाय और भी नीचा हो जाता है .

3- सलाहकार विधि- इस विधि में समूह के निम्न मनोबल को ऊंचा करने के लिए एक सलाहकार का प्रयोग किया जाता है जो वास्तव में मानव संबंधों को समझने में एक विशेषज्ञ होता है . समूह के सदस्यों को यह कहा जाता है कि इस व्यक्ति को वास्तव में सदस्यों के कल्याण का ध्यान रखने के लिए बुलाया गया है . अतः इन्हें सदस्यों का एक अच्छा प्रतिनिधि माना जा सकता है . सदस्य अपनी समस्याओं के बारे में इस सलाहकार से खुलकर बातचीत करते हैं तथा इन के काम में सहयोग देते हैं . सदस्यगण समूह में व्याप्त संघर्ष, प्रतियोगिता की भावना, एक दूसरे के प्रति नकारात्मक मनोवृत्ति के बारे में सलाहकार को बतलाते हैं . सलाहकार इन सभी समस्याओं का अध्ययन करके उसे दूर करने के तरीकों का सुझाव देता है ताकि समूह का मनोबल ऊंचा हो सके .

यह विधि उपर्युक्त दोनों विधियों से इस अर्थ में भिन्न है कि समूह के सदस्यगण को यह पता होता है कि यह एक सलाहकार है जिस का कार्य हम लोगों के कल्याण से संबंधित है . शायद यही कारण है कि सदस्यगण इस सलाहकार के कार्य में अपना पूर्ण सहयोग देते हैं .

यद्यपि यह विधि उपर्युक्त दोनों विधियों में अधिक लाभप्रद है, फिर भी इसमें एक दोष बतलाया गया है . कुछ समाज मनोवैज्ञानिकों का विचार है कि प्राय: सलाहकार कुछ विशेष कारणों से समूह में व्याप्त निम्न मनोबल के कारणों को ठीक ढंग से एवं गहन रूप से अध्ययन नहीं कर पाते हैं जिससे इस विधि की सार्थकता बहुत नहीं रह जाती है .

4- सदस्य समस्या विधि- समूह मनोबल को ऊंचा करने की यह विधि अन्य तीन विधियों से अधिक लोकप्रिय है . सचमुच में इस विधि में प्रजातंत्रात्मक ढंग से समूह के मनोबल को ऊंचा उठाने का प्रयत्न किया जाता है . इस विधि में एक प्रशिक्षित मनोवैज्ञानिक या विशेषज्ञ सदस्यगण के सामने निम्न मनोबल के कारणों से संबंधित समस्या को रखते हैं और सदस्यगण को आपस में राय मशवरा करके उस समस्या का समाधान करना होता है . विशेषज्ञ या प्रशिक्षित मनोवैज्ञानिक समस्या के समाधान में अपनी ओर से कोई बाधा तो नहीं डालते हैं परंतु बीच-बीच में आवश्यकता पड़ने पर अपना निर्देशन अवश्य देते हैं . जब सदस्यगण समस्या के समाधान के बारे में एक निर्णय पर पहुंच जाते हैं तो उसमें दो तरह की भावनाओं का विकास होता है-1 सामूहिक सहयोग भावना, समूह की क्रियाओं में सहयोग तथा 2- आवेस्टन की भावना. इन दोनों तरह की भावनाओं का स्वाभाविक परिणाम यह होता है कि इससे समूह का मनोबल

अपने आप ऊंचा हो जाता है क्योंकि समूह में एकता, एकात्मकता तथा अहम-आवेस्टन आदि की वृद्धि हो जाती है .

इस विधि के कुछ ऐसे गुण हैं जो निम्नलिखित है-

- इस विधि में सदस्य गण स्वयं ही समस्या के समाधान के बारे में निर्णय लेते हैं . फलस्वरूप सदस्यों में सहयोग, संयोगिता की भावना इतनी तीव्र हो जाती है कि मनोबल अपने आप ऊंचा हो जाता है .
- क्योंकि इस विधि में समूह के मनोबल को ऊंचा करने के लिए एक प्रजातंत्र आत्मक तरीका अपनाया जाता है, इसलिए सदस्यों की मनोवृत्ति समूह लक्ष्य एवं समूह नेतृत्व के प्रति अधिक सकारात्मक होता है जो मनोबल को ऊंचा करने में काफी सहायक होती है .

इन विशेषताओं के बावजूद भी इस विधि का एक प्रधान अवगुण यह है कि इस विधि का संचालन एक प्रशिक्षित मनोवैज्ञानिक या कुशल विशेषज्ञ ही कर सकता है . इसका मतलब यह हुआ कि ऐसे व्यक्तियों के अभाव में इस विधि का प्रयोग करना संभव नहीं है .

निष्कर्ष यह है कि समाज मनोवैज्ञानिकों ने समूह मनोबल को ऊंचा करने के लिए अनेक विधियां का प्रतिपादन किया है. इन विधियो में से किसी एक या एक से अधिक का एक साथ प्रयोग करके समूह के मनोबल को ऊंचा किया जा सकता है .

4.2.9. सारांश

समूह में जब व्यक्ति एक दूसरे की उपस्थिति में कोई कार्य करते हैं तो उनके निष्पादन में अंतर पाया जाता है. यह समूह प्रभाव के कारण होता है जो की सकारात्मक या नकारात्मक दोनों हो सकता है. मनुष्य के किसी भी कार्य करने के लिए उसके अन्दर उत्पन्न आतंरिक प्रेरणा या शक्ति जो उसे कार्य करने की ऊर्जा देती है उसे मनोबल कहते है. किसी व्यक्ति या समूह मनोबल एक अनिवार्य शर्त है अन्यथा उस समूह का अस्तित्त्व बहुत दिनों तक नहीं रहे पायेगा.

4.2.10. स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. समूह प्रभाव के अर्थ को समझाइए?
2. समूह मनोबल को परिभाषित कीजिये?
3. समूह मनोबल की विभिन्न कसौटियों को स्पष्ट कीजिये?
4. समूह मनोबल की निर्धारकों का वर्णन कीजिए?
5. समूह मनोबल को मापने की विधियों को समझाईये?
6. समूह मनोबल को बढाने की विधियों का वर्णन कीजिये?

4.2.11. शब्दावली : समूह प्रभाव, समूह मनोबल,

4.2.12. संदर्भ ग्रंथ सूची :

- बैरन एंड बैरनी(2000). सोशल साइकोलॉजी. पियर्सन एजुकेशन.एनडी
- सिंह, ए.के.(2008). समाज मनोविज्ञान की रुपरेखा. मोतीलाल बनारसीदास पब्लिकेशन.एनडी.
- जैकोन, जे.एम.(1993). सोशल साइकोलॉजी, पास्ट एंड प्रेजेंट. हिल्सडेल,एनजे
- सेमिन,जी. एंड फिडलर, के.(1996). एप्लाइड सोशल साइकोलॉज.सीए: सेज

इकाई-3 नेतृत्त्व : अर्थ, प्रकृति, विशेषताएं, एवं कार्य

इकाई की रूपरेखा

4.3.0. उद्देश्य
4.3.1.प्रस्तावना
4.3.2. नेतृत्त्व का अर्थ
4.3.3. नेतृत्त्व का उद्धव
4.3.4. नेतृत्त्व की प्रकृति
4.3.5. नेतृत्त्व की विशेषताएं
4.3.6. नेतृत्व के नियम
4.3.7. नेता के कार्य
4.3.8. सारांश
4.3.9. स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न
4.3.10. शब्दावली
4.3.11. संदर्भ ग्रंथ सूची

4.3.0. उद्देश्य

- नेतृत्त्व की विभिन्न परिभाषाओं को भिन्न-भिन्न चिंतकों के दृष्टिकोणों से समझ सकेंगे.
- नेतृत्त्व के भिन्न-भिन्न सन्दर्भों में कार्यों में भी परिवर्तन होता है, इसकी भी सामान्य समझ विकसित कर पाएंगे.
- नेतृत्त्व के उद्धव को समझ सकेंगे.
- नेता के विभिन्न कार्यों के बारे में जानकारी प्राप्त कर पाएंगे.
- नेतृत्त्व की विशेषताओं एवं उसमे निहित आवश्यक शर्तों को समझ सकेंगे.
- नेतृत्त्व के नियमों की समझ का विकास होगा.

4.3.1. प्रस्तावना

शासन करना, निर्णय लेना, निर्देशन करना आज्ञा देना आदि सब एक कला है, एक कठिन तकनीक है। परन्तु अन्य कलाओं की तरह यह भी एक नैसर्गिक गुण है। प्रत्येक व्यक्ति में यह गुण या कला समान नहीं होती है। उद्योग में व्यक्ति के समायोजन के लिए पर्यवेक्षण (supervision), प्रबंध तथा शासन का बहुत महत्व होता है। उद्योग में असंतुलन बहुधा कर्मचारियों के स्वभाव दोष से ही नहीं होता बल्कि गलत और बुद्धिहीन नेतृत्व के कारण भी होता है। प्रबंधक अपने नीचे काम करने वाले कर्मचारियों से अपने निर्देशानुसार ही कार्य करवाता है। जैसा प्रबंधक का व्यवहार होता है, जैसे उसके आदर्श होते हो, कर्मचारी भी वैसा ही व्यवहार निर्धारित करते हैं। इसलिए प्रबंधक का नेतृत्व जैसा होगा, कर्मचारी भी उसी के अनुरूप कार्य करेंगे। प्रत्येक समूह के लिए नेतृत्व की आवश्यकता होती है। चाहे वह राजनैतिक हो या सामाजिक, धार्मिक हो या औद्योगिक। कोई भी समूह बिना नेतृत्व के आस्तित्वहीन होता है। औद्योगिक क्षेत्र में मालिक या कर्मचारी ही नेता का चयन करते है। होना यह चाहिए कि मालिक और कर्मचारी दोनों मिलकर नेता का चुनाव करें। इस प्रकार की आदर्श चयन प्रणाली के द्वारा मालिक और कर्मचारी के बीच के छोटे-छोटे झगड़ों को रोका जा सकता है। इससे समस्याओं का समाधान भी जल्दी हो सकता है। मालिकों तथा प्रबंधकों द्वारा चुना व्यक्ति अधिक स्वामि-भक्ति रखता है और कर्मचारियों के हितों को उपेक्षित कर सकता है। इसके विपरीत कर्मचारियों द्वारा चुना व्यक्ति कर्मचारियों के प्रति उत्तरदायी होता है।

4.3.2. नेतृत्व का अर्थ

"नेतृत्व एक प्रक्रिया है जिसमें कोई व्यक्ति सामाजिक प्रभाव के द्वारा अन्य लोगों की सहायता लेते हुए एक सर्वनिष्ट कार्य सिद्ध करता है। एक और परिभाषा एलन कीथ गेनेंटेक ने दी जिसके अधिक अनुयायी थे। "नेतृत्व वह है जो अंततः लोगों के लिए एक ऐसा मार्ग बनाना जिसमें लोग अपना योगदान दे कर कुछ असाधारण कर सकें."

ऑक्सफ़ोर्ड शब्दकोष के अनुसार नेतृत्व में दो अर्थ समाहित हैं, पहला अग्रणी होना और दूसरा आदेश देना। नेतृत्व निजी या प्रशासनिक दोनों संगठनों में लक्ष्य प्राप्ति के लिए अधीनस्थों से व्यवहार का एक उपकरण है । नेतृत्व वह है जो निर्धारित लक्ष्यों को अधीनस्थों के व्यवहार से एकीकृत कर दे । विद्वानों ने नेतृत्व को भिन्न-भिन्न प्रकार से स्पष्ट किया है। कभी-कभी इसका अर्थ प्रसिद्धि से समझा जाता है। लोकतांत्रिक दृष्टि से इसका अर्थ उस स्थिति से समझा जाता है जिसमें कुछ व्यक्ति स्वेच्छा से दूसरे व्यक्तियों के आदेशों का पालन कर रहे हों।

परिभाषा-

जॉर्ज आर. टेरी ने नेतृत्व को उस योग्यता के रूप में परिभाषित किया है "जो उद्देश्यों के लिए स्वेच्छा से कार्य करने हेतु प्रभावित करता है।"

लिंविग्स्टन के अनुसार "नेतृत्व से आशय उस योग्यता से है जो अन्य लोगों में एक सामाजिक उद्देश्य का अनुसरण करने की इच्छा जाग्रत करती है।"

मूरे "नेतृत्व को एक ऐसी योग्यता मानते हैं जो व्यक्तियों कोनेता द्वारा अपेक्षित विधि के अनुसार कार्य करने के लिए प्रेरित करती है।"

लेपियर और फार्न्सवर्थ (Lapiere and Farnisworth) के अनुसार- ''नेतृत्व वह व्यवहार है जो दूसरों के व्यवहार को उससे अधिक प्रभावित करता है जितना कि दूसरे व्यक्तियों के व्यवहार नेता को प्रभावित करते हैं।''

सीमेन तथा मौरिस (Seemen and Morris) के अनुसार- ''नेतृत्व व्यक्तियों द्वारा दी जाने वाली उन क्रियाओं में है जो दूसरे व्यक्तियों को एक विशेष दिशा में प्रभावित करती हो।'' किंवाल यंग के अनुसार- ''नेतृत्व की विवेचना प्रभुत्त्व के रूप में की जानी चाहिए।''

4.3.3. नेतृत्व का उद्भव-

समूह का नेता अपने विशेष पद के कारण समूह के लक्ष्यों, संरचना, विचार आदि को प्रभावित कर उनमें परिवर्तन लाता है . परंतु समूह की संरचना, विचारधाराओं एवं लक्ष्यों द्वारा यह भी निर्धारित होता है कि समूह में किस तरह से नेतृत्व का उद्भव होता है . समाज मनोवैज्ञानिकों एवं समाज शास्त्रियों ने मिलकर कुछ ऐसे कारको का वर्णन किया है जिनसे समूह में नेतृत्व का उद्भव सीधे प्रभावित होता है . कुछ ऐसे ही कारकों का वर्णन निम्नांकित है-

1. **समूह की जटिलता-** जैसे- जैसे किसी समूह की जटिलता बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे समूह में नए-नए नेताओं के बढ़ने की संभावना भी बढ़ती जाती है . दूसरे शब्दों में, जैसे-जैसे समूह का आकार एवं कार्य में वृद्धि होती जाती है, समूह में प्राथमिक नेता तथा द्वितीयक नेता के उत्पन्न होने की संभावना भी बढ़ती जाती है . इस तरह से यह स्पष्ट है कि समूह की जटिलता बढ़ने से नेता की एक श्रृंखला का जन्म होता है . इस श्रृंखला के सबसे ऊपरी सतह पर प्राथमिक नेता होते हैं तथा निचली सतह ऊपर द्वितीयक नेतागण होते हैं . अतः यह स्पष्ट है कि बड़ा संगठन या समूह होने से कई तरह के नेताओं का जन्म हो जाता है . प्रसिद्ध समाजशास्त्री व्हाइट 1948 ने रेस्त्रां उद्योग मे अध्ययन कर उपर्युक्त तथ्य की पुष्टि की है .
2. **समूह संकट-** जब किसी समूह को बाहरी तत्वों से अपनी सुरक्षा का खतरा होता है या समूह अपने निर्धारित लक्ष्य को प्राप्त करने में असफल रहता है तो ऐसी परिस्थिति में नए नेता का जन्म होता है . इस प्रकार की संकट कालीन परिस्थिति में यदि कोई व्यक्ति अपने व्यक्तिगत विशेषता या अन्य कारणों से उस खतरा को दूर करने में या समूह को अपने निर्धारित लक्ष्य तक पहुंचाने में समर्थ होता है, उसे आसानी से लोग समूह का नेता मान लेते हैं .

हैमब्लिन(Hamblin, 1958) ने एक प्रयोग कर इसे साबित कर दिया है. इस अध्ययन में तीन-तीन व्यक्तियों का 24 समूह था जिसमें से 12 संकटग्रस्त समूह थे तथा 12 नियंत्रित समूह थे. संकटग्रस्त समूह को खेल के विशेष नियम एक संकट कालीन परिस्थिति में सीखना था जहां खेल के नियम में अचानक परिवर्तन कर उसे सीखना जानबूझकर कठिन बना दिया जाता था . परंतु नियंत्रित समूह को खेल के नियम को एक सामान्य परिस्थिति में सीखना था . परिणाम में दो बातें पाई गई, पहला तो यह कि संकट कालीन

परिस्थिति में नेता की शक्ति बढ़ जाती है तथा अनुयायियों द्वारा ऐसी परिस्थिति में नेता को तुरंत ही स्वीकार कर लिया जाता है. दूसरी परिस्थिति में संकटकालीन परिस्थिति की समस्याओं को यदि पुराना नेता ठीक ढंग से समाधान नहीं कर पाता है तो उसे तुरंत ही नया नेता द्वारा पति स्थापित कर दिया जाता है . हैमब्लिन ने अपने प्रयोगों में पाया कि 12 संकटग्रस्त समूहों में से 9 ने अपने पुराने नेता को नए नेता द्वारा प्रतिस्थापित कर दिया जबकि 12 नियंत्रित समूहों में से मात्र तीन समूह नहीं ऐसा किया .

समूह संकट का प्रभाव सिर्फ नेतृत्व के उद्भव पर ही नहीं पड़ता है बल्कि नेतृत्व के वितरण पर भी पड़ता है . जब संकट अधिक तीव्र होती है या फिर समूह को खतरा अधिक हो जाता है तो वैसी परिस्थिति में सत्ताधारी नेता के उत्पन्न होने की संभावना अधिक होती है . उसी तरह जब समूह के सामने कोई कठिन कार्य आ जाता है तो वैसी परिस्थिति में कई सदस्यों द्वारा मिलकर आपस में नेतृत्व संबंधी कार्यों का बंटवारा कर लिया जाता है .

3. **समूह अस्थिरता-** कभी-कभी ऐसा होता है कि समूह के सदस्यों में आपसी मतभेद काफी बढ़ जाता है ऐसे मे समूह लक्ष्य की प्राप्ति खतरे में पड़ जाती है तथा समूह में अस्थिरता की स्थिति उत्पन्न हो जाती है . ऐसी परिस्थिति में नए नेता के बनने की और पुराने नेता के हटने की संभावना तीव्र हो जाती है . समूह का कोई भी व्यक्ति जो इस तरह की अस्थिरता को दूर करके लक्ष्य की प्राप्ति की ओर समूह को ले जाता है, उसे समूह अपना नेता मान लेता है . क्रॉकेट 1955 में अध्ययन करके यह बतलाया कि समूह के बारे में सदस्यों के विचार आपस में विभाजित होते हैं तो वैसी परिस्थिति में नेता के उभरने की संभावना काफी तीव्र हो जाती है . इसका ज्वलंत उदाहरण हमें राज्य के मुख्यमंत्रियों के फेर-बदलाव से मिलता है .
4. **अधिकृत अध्यक्षों की असफलता-** जब समूह का वर्तमान अधिकृत अध्यक्ष अपनी जवाबदेही निभाने में असमर्थ हो जाता है तो ऐसी परिस्थिति में नए नेता के उभरने की संभावना अधिक तीव्र हो जाती है . एक अधिकृत अध्यक्ष अनेकों कार्य जैसे योजना का निर्माण करना, समूह की नीति बनाना, विरोध का कार्य करना आदि करते हैं . जब किसी कारणवश अध्यक्ष इन कार्यों को नहीं कर पाते हैं तो इससे समूह लक्ष्य की प्राप्ति नहीं होती है और उनका पद दूसरे को दे दिया जाता है अर्थात समूह का नेता कोई दूसरा व्यक्ति हो जाता है .

क्रोकेट (1955) में अपने अध्ययन में पाया है कि 83% अबफल औपचारिक अध्यक्ष तथा मात्र 39 प्रतिशत सफल औपचारिक अध्यक्ष के जगह पर समूह के सदस्यों ने नए नेताओं का चयन किया . कोज एवं उनके सहयोगियों 1951 ने रेल सड़क कर्मचारियों के समूह के नेताओं के अध्ययन में भी इस प्रकार का तथ्य पाया गया है .

5. **नेता की असफलताएं -** कुछ आवश्यकताएं ही इस प्रकार की होती हैं जिनसे नेतृत्व के उद्भव में सहायता मिलती हैथ उदाहरण स्वरूप, सत्ता में आने की आवश्यकता, प्रतिष्ठा पाने की आवश्यकता, धन कमाने की इच्छा, दूसरों पर प्रभुत्व दिखाने की इच्छा इत्यादि कुछ ऐसी ही आवश्यकताएं हैं . यदि समूह ऐसा है जिसके अधिकतर सदस्यों में इन आवश्यकताओं का भरमार है, तो वैसी परिस्थिति में समूह के कई नेता के उभरने की संभावना बढ़ जाती है . दूसरे

तरफ यदि समूह ऐसा है जिसके एकाध सदस्य में ही इस तरह की आवश्यकताएं हैं, तो वैसी परिस्थिति में समूह में वह व्यक्ति तुरंत नेता बन जाएगा . परंतु यदि समूह के कोई भी सदस्य में ऐसी आवश्यकता नहीं है, तो ऐसी परिस्थिति में कोई भी व्यक्ति समूह का नेतृत्व संभाल नहीं पाएगा और समूह विघटित हो जाएगा .

6. **व्यक्तित्व कारक**- नेतृत्व की उत्पत्ति व्यक्ति के प्रभावशाली व्यक्तित्व के कारण भी हो सकती हैं . कुछ समाज मनोवैज्ञानिकों का मत है कि यदि किसी व्यक्ति में बुद्धि, शक्ति, सूझबूझ, शब्दआडंबर, सावेगीक स्थिरता आदि का गुण पर्याप्त होता है तो वह व्यक्ति आसानी से समूह का नेता बन जाता है . इन गुणों से व्यक्ति में कार्य करने की क्षमता बढ़ती है सामाजिक समस्याओं का समाधान करने एवं विभिन्न प्रकार की योजनाओं एवं नीतियों को कार्यरूप देने में मदद मिलती है . इन सब के बावजूद भी आधुनिक समाज मनोवैज्ञानिकों को यह मंजूर नहीं है कि कोई भी व्यक्ति मात्र व्यक्तित्व के शील गुणों के आधार पर समूह का नेता बन सकता है . इन लोगों के अनुसार नेता बनने के लिए शील गुणों के साथ-साथ उपयुक्त सामाजिक परिस्थिति का भी होना अनिवार्य है .

ऊपर के विवरण से यह स्पष्ट है कि नेता का उद्भव कई कारको से होता है जिसमें समूह से संबंधित कारक एवं शील गुण महत्वपूर्ण है .

4.3.4. नेतृत्व की प्रकृति-

उद्योग में कर्मचारी के कार्य की देखभाल हेतु सुपरवाईजर या निरीक्षक होते है, ये निरीक्षक ही नेता कहलाते हैं। निरीक्षकों की विशेषताएं और सौम्य व्यवहार इस बात पर निर्भर करता है कि कारखाने की नीतियां किस तरह की हैं। इन नीतियों का निर्माण प्रबंधकगण द्वारा किया जाता है। नीतियां इस प्रकार की होनी चाहिए जिससे कर्मचारियों में विश्वास की भावना जागे। इन नीतियों को कार्य रूप देने वाला निरीक्षक होता है इसलिए यह आवश्यक है कि कारखाने में निरीक्षकों के चुनाव में उनकी ईमानदारी, सहानुभूति, कार्य के प्रति लगन तथा सभी अच्छे गुणों को महत्व दिया जाए। योग्य निरीक्षक ही कर्मचारियों और कार्य के बीच संतुलन स्थापित कर सकता है। व्यवहारकुशल और सहनशील निरीक्षक कर्मचारियों पर विशिष्ठ छाप छोड़ते हैं। वे इच्छानुसार कर्मचारियों से कार्य करवाने में सफल होते हैं। यह आवश्यक नहीं है कि निरीक्षक अधिक बुद्धिमान हो लेकिन यह आवश्यक है कि निरीक्षक को व्यवहारकुशल होना चाहिए, निरीक्षक को प्रशिक्षित होना चाहिए।

4.3.5. नेतृत्व की विशेषताएं-

नेतृत्व की निम्नलिखित विशेषताएं हैं.

(i) अनुयायियों को एकत्रित करना:

नेतृत्व का अनिवार्य लक्षण है उसके अनुयायी जो उसके प्रति निष्ठावान हों और उसके आदेशों के अनुरूप कार्य करें। बिना अनुयायियों के कोई नेता हो ही नहीं सकता।

(ii) सामूहिक उद्देश्य:

नेतृत्व का लक्षण यह भी हैं कि वह अपने अनुयायियों को एक सामूहिक लक्ष्य की तरफ निर्देशित करें। नेता और अनुयायियों के सामान्य उद्देश्य होते है, अन्यथा अलग अलग उद्देश्य होने पर वहां नेतृत्व अनुपस्थित होगा।

(iii) अनुयायियों को प्रभावित करना:

नेतृत्व का अनिवार्य लक्षण है कि वह अपनी इच्छानुसार अनुयायियों के व्यवहार को परिवर्तित कर सके।

(iv) प्राधिकार या शक्ति:

लोक प्रशासन में नेता के पास अधिकार होते हैं, जिनके द्वारा वह अधीनस्थों का नेतृत्व करता है। निजी संगठनों में भी नेतृत्व की शक्ति नेता को प्रबन्ध मण्डल से ही मिलती है। समाज में जो नेता दिखाई देते हैं उनके पास व्यक्तित्व की शक्ति होती है, यह शक्ति ही नेतृत्व को स्थापित करती है।

(v) नेता-अनुयायी सम्बन्ध:

मेक्ग्रेगर और फालेट जैसे व्यवहारवादी विचारक मानते हैं कि नेतृत्व की प्रमुख विशेषता नेता-अनुयायी सम्बन्धों में निहित है। नेतृत्व वही होता है, अनुयायी जिसके लक्ष्यों के साथ अपने को एकीकृत कर लेते हैं।

वस्तुतः परम्परावादी विचारक नेतृत्व की उन विशेषताओं पर अधिक बल देते है जिनके द्वारा नेता अधीनस्थों को प्रभावित करने में सफल होता है। इसके विपरीत व्यवहारवादी अनुयायियों की स्वीकृति पर नेतृत्व का अस्तित्व और उसकी सफलता मानते है।

नेतृत्व की शैलियाँ – नेतृत्त्व की प्रमुख शैलियाँ निम्न हैं-

1. कथनी शैली -

1. औसत से अधिक कार्य- अभिमुखी और औसत से कम सम्बन्ध-अभिमुखी।
2. इस शैली के लिए 'कथनी' शब्द का अर्थ है कि अनुयायियों से कहना या उन्हें आदेश देना कि उन्हें क्या, कहां और कैसे करना है।
3. यह शैली तब सर्वाधिक उपयुक्त है जब अनुयायियों की तत्परता का स्तर औसत से बहुत कम है अर्थात उनमें योग्यता और सहयोगशील दोनों की कमी है। ऐसे में उन्हें निदेशित किए जाने की जरूरत है।
4. इसे मार्गदर्शक, निदेशक या संरचक (guidancing, directing or structuring) शैली भी कहा जा सकता है।

2. विक्रयी शैली -

1. औसत से अधिक कार्य-अभिमुखी और सम्बन्ध-अभिमुखी।

2. इस शैली के लिए 'विक्रयी' शब्द का अर्थ है कि यहां अनुयायियों को सिर्फ मार्गदर्शन नही दिया जाता, बल्कि उन्हें अपनी बात कहने और स्पष्टीकरण मांगने का अवसर भी दिया जाता है। यहां क्या, कहां और कैसे के साथ-साथ 'क्यों' भी जुडा है। यहां 'क्यो' का स्पष्टीकरण ही इसे कथनी शैली से अलग करता है।
3. यह शैली तब सर्वाधिक उपयुक्त है जब अनुयायियों की तत्परता का स्तर औसत से कम है अर्थात् यद्यपि वे सभी अयोग्य हैं लेकिन प्रयासरत भी है और अपने इस प्रयत्न पर आश्वस्त है।
4. इसे व्याख्यापरक, सम्मतिपरक या स्पष्टीकृत(explaining, persuading or clarifying) शैली भी कह सकते है।

3. सहभागी शैली -

1. औसत से कम कार्य-अभिमुखी और औसत से अधिक सम्बन्ध-अभिमुखी व्यवहार।
2. इस शैली के जिए 'सहभागी' शब्द का आशय है कि यहां नेता के निदेशित व्यवहार की तुलना में समर्थित व्यवहार का महत्तव बढ जाता है। यहां नेता की भूमिका अपने अनुयायियों को सम्प्रेरषित करने और उन्हें प्रोत्साहित करने की बन जाती है।

4.3.6. नेतृत्व के नियम-

उद्योग में नेता की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि वह अपने व्यवहार में कुछ मूलभूत नियमों को भी शामिल करे। इससे कर्मचारी और नेता के बीच सन्तुलन बना रहता है। कुछ नियम इस प्रकार हैं-

1. **समस्याओं को धैर्यपूर्वक सुनना**- कर्मचारियों की अपनी समस्याएं होती हैं जिन्हें नेता के सम्मुख रखते हैं। ऐसे में यदि नेता उत्तेजित हो जाता है तो कर्मचारी अपनी बात को पूरा नहीं बता पाता है। इससे कर्मचारी हतोत्साहित हो जाता है। इसलिए कर्मचारी को बात करते समय बीच में भी नहीं टोकना चाहिए या उसे रोकना नहीं चाहिए। इससे कर्मचारी के मन में उपेक्षा का भाव पैदा होता है। इसके विपरीत कर्मचारी की बातों को शांतिपूर्वक एवं धैर्यता से सुनना चाहिए। इससे कर्मचारी का विश्वास अपने नेता के प्रति बना रहता है। वे नेता की अवहेलना भी नहीं करते हैं।
2. **सोच समझकर निर्णय लेना** - नेता को चाहिए कि वह कोई भी निर्णय लेने में जल्दबाजी न करे। सोच-समझकर लिया हुआ निर्णय बाधक नहीं बनता है। इससे कई समस्याओं को उचित तरीके से सुलझाया जा सकता है।
3. **कर्मचारियों को हतोत्साहित न करना** - यदि नेता कर्मचारियों को हतोत्साहित करेगा तो निश्चित ही उसका प्रभाव उद्योग में पड़ेगा। कर्मचारियों को समय-समय पर उत्साहित करना

चाहिए ताकि कर्मचारी अपने कार्य के प्रति जागरूक रह सकें। यदि कर्मचारी अपनी समस्या लेकर आता है तो भी उसे डांट-फटकार नहीं देनी चाहिए। वरन् उनका मनोबल बढ़ाना चाहिए।

4. **नेता कम से कम संवेदनशील व संवेगशील हो** - उद्योग में प्रायः नेता के सामने सम तथा विषम परिस्थिति आती रहती है। यदि नेता इन परिस्थितियों में ही अपने को समाहित कर ले तो वह उद्योग के लिए अच्छा नहीं होगा। नेता की शिकायत अधिकतर संवेगपूर्ण होती है। ऐसे में यदि नेता स्वयं पर नियंत्रण न रखकर कर्मचारियों के साथ संवेगपूर्ण ढंग से व्यवहार करे तो समस्या और भी उलझ सकती है। इसके विपरीत यदि कर्मचारी पर आवश्यकता से अधिक संवेदना करता है तो भी कर्मचारी इसका लाभ उठा सकते हैं। इसलिए नेता को विवेकपूर्ण व्यवहार करना चाहिए।
5. **नेता स्वयं वाद-विवाद से बचा रहे** - प्रायः देखा जाता है कि वाद-विवाद वैमनस्यता पैदा करता है। इसलिए नेता को कर्मचारियों के साथ वाद-विवाद से बचना चाहिए। अधिक वाद-विवाद से कर्मचारी भी अपने को असुरक्षित महसूस करने लगते हैं। कर्मचारियों को आज्ञाएं दी जा सकती हैं। उन्हें थोपने का प्रयास नहीं करना चाहिए, इससे कर्मचारी एक अतिरिक्त बोझ समझने लगता है।
6. **कर्मचारियों की प्रशंसा करना**- कर्मचारी उद्योग में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। नेता को चाहिए कि वह समय आने पर उसकी प्रशंसा करे। प्रशंसा सबके सामने हो। इससे कर्मचारी प्रसन्नता का अनुभव करता है। उसका मनोबल इससे बढ़ता है। वह अपने कार्य को मेहनत तथा लगन से करने लगता है। इसके विपरीत यदि कर्मचारी की बुराइयों को सबके सामने कहा जाय तो कर्मचारी की स्थिति तनावपूर्ण होगी। उसका प्रभाव उद्योग पर पड़ेगा। इसलिए नेता कर्मचारी की बुराइयों को एकान्त में कहे इससे कर्मचारी का अहम सुरक्षित रहता है।

4.3.7. नेतृत्व के कार्य-

नेतृत्व के कार्यों के सम्बन्ध में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। अलग-अलग विद्वानों ने नेतृत्व की कार्य सूची में भिन्न-भिन्न कार्यो। को सम्मिलित किया है, जो इस प्रकार हैं: -

A. डाल्टन ई. मैक्फारलैण्ड ने नेतृत्व के कार्यों में भिन्न बातों को सम्मिलित किया है :

(1) समूह लक्ष्यों का निर्धारण करना,

(2) योजना का निर्माण करना

(3) नीति तथा क्रियाविधि निर्धारित करना

(4) अधीनस्थों का पक्ष-प्रदर्शन करना,

(5) कार्यकुशल कर्मचारियों का समूह तैयार करना तथा उनका संरक्षण करना,

(6) अधीनस्थों के व्यवहार का उनकी उपलब्धियों के सन्दर्भ में मूल्यांकन करना,

(7) अनुयायियों के लिए एक आदर्श प्रदान करना।

B. नॉरमैन एफ. वाशबर्न ने एक अच्छे नेता द्वारा किये जाने वाले निम्न आठ कार्यों का वर्णन किया है :

(1) क्रियाओं का सूत्रपात करना,

(2) आदेश प्रदान करना,

(3)अपने समूह में स्थापित वाहिकाओं का प्रयोग करना,

(4) अपने समूह के नियमों एवं प्रयाओं को जानना और उनकी अनुपालन करना,

(5) अनुशासन बनाये रखना,

(6) अधीनस्थों को सूनना,

(7) अधीनस्थों की आवश्यकताओं के प्रति जागरूक रहना, तथा

(8) अधीनस्थों की सहायता करना।

उक्त आधारों पर कहा जा सकता है कि एक नेता को प्रमुख कार्य करने पड़ते हैं :

1. **अधीनस्थों की भावनाओं एवं समस्याओं को समझना-** सफल नेतृत्व के लिए यह आवश्यक है कि नेता को अपने समूह के सदस्यों एवं अपने अधीनस्थों की भावनाओं एवं समस्याआं को अच्छी तरह से समझना चाहिए। लोकतान्त्रिक समाज में कर्मचारियों की भावनाओं एवं समस्याओं की अवहेलना नहीं की जा सकती।
2. **सहयोग प्राप्त करना-** एक प्रशासनिक संगठन के उद्देश्यों एवं लक्ष्यों की प्राप्ति समस्त कर्मचारियों के सहयोग से ही सम्भव हो सकती है। अत: आवश्यक है कि एक नेता को सफल होने के लिए अपने समूह के कर्मचारियों का सहयोग प्राप्त हो। इसके लिए उसे प्रशासक के रूप में अपने अधीनस्थों का सहयोग प्राप्त करना आवश्यक है। इसके लिए यह आवश्यक दिलाये कि उपक्रय की सफलता उनके हित में है।
3. **समन्वय एवं निदेशन-** एक सफल नेता का तृतीय प्रमुख कार्य अपने अधीनस्थों के कार्यों में आदेश एवं निदेशक द्वारा समन्वय स्थापित करना है। इसके लिए उसे संप्रेक्षण प्रक्रिया को प्रभावी बनाना होगा तथा आदेश एवं निदेशन की प्रक्रिया में भी मानवीय सम्बन्धों को विशेष रूप से ध्यान में रख्ना होगा।
4. **अनुशासन बनाये रखना -** नेता का चौथा कार्य अपने समूह में अनुशासन बनाये रखना भी है क्योंकि अनुशासन द्वारा ही अपने अधीनस्थों को निर्धारित नियमों का पालन करने के लिए प्रेरित कर सकता है। और कार्य को सुचारु रूप से संचालित करने के लिए अनुशासन में निहित शक्ति का प्रयोग कर सकता है।
5. **आदेश देना-** नेता स्वयं कार्य न करके अपने अधीनस्थों से कार्य लेता है। अत: उनके द्वारा कार्य को सम्पादित कराने हेतु उसे आदेश देना पड़ता है। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि आदेश देना ही नेता का एक महत्वपूर्ण कार्य है।
6. **प्रभावी संप्रेक्षण की व्यवस्था करना-** संगठन की गतिविधियों में सामंजस्य एवं सन्तुलन बनाये रखने के लिए और कर्मचारियों में मधुर सम्बन्धों एवं भाईचारे का वातावरण स्थापित करने लिए प्रबन्धकों अर्थात् समूह नायकों को संप्रेषण की उचित व्यवस्था करनी चाहिए। इस

दिशा में नेता ही इस प्रकार की संप्रेषण प्रक्रिया की व्यवस्था करता है, जिससे अधीनस्थों और उसके मध्य विचारों, आदेशों, आदि का आदान-प्रदान निरन्तर होता रहे।

7. **संगठन के प्रति निष्ठा बनाये रखना -** एक कुशल नेता का यह भी प्रमुख कार्य है कि वह अपने अधीनस्थों से सम्बन्धित निर्णय आम सहमति से लें।
8. **सहयोग प्राप्त -** नेता अपने समूह से सहयोग प्राप्त करता है। सहयोग द्विमार्गीय प्रक्रिय होती है। अधिकारी और समूह दोनों के सहयोग से ही कार्य को सर्वश्रेष्ठ ढंग से पूरा करना सम्भव होता है। सहयोग की प्राप्ति के लिए नेता निम्न कार्य करता है : (i) वह अपने प्रत्येक अनुयायी को विश्वास दिलाताहै कि संगठन का सफल परिचालन और उसके लिए अपने समूह के हितों को जानना और समझना आवश्यकता होता है। (ii) नता के लिए एक कुशल मनोवैज्ञानिक होना भी आवश्यक है। उसके लिए अपने समूह के हितों को जानना और समझना आवश्यक होता है (iii) सहयोग विश्वास पर आश्रित होता है। लोग तभी सहयोग करते हैं, जब उनको अपने नेता में पूर्ण विश्वास होता है।
9. **शक्ति का प्रयोग -** नेतृतव के साथ शक्ति जुड़ी होती है। इस शक्ति का प्रयोग न्यायिक एवं सहानुभूतिपूर्ण तरीके से भी तय किया जा सकता है और बल एवं उत्पीड़न के द्वारा भी किया जा सकता है। वस्तुत: एक नेता अपनी शक्ति, काप्रयोग उपक्रम ओर समूह के हित साधन में करता है।
10. **समन्वय एवं आदेश-** वांछित परिणाम की प्राप्ति के लिए नेता आदेशों के माध्यम से अपने अधीनस्थों के कार्यों में समन्वय स्थापित करता है। लिविंग्स्टन के अनुसार नेता द्वारा दिये जाने वाले आदेश स्ुनिश्चित क्रमबद्ध, लोचपूर्ण और स्पष्ट होने चाहिए।
11. **अनुशासन अनुरक्षण -** अनुशासन एक प्रकार का बल है, जो समूह के प्रत्येक सदस्य को समूह के नियमों, प्रथाओं, आदतों, परम्पराओं, आदि के अनुसार उत्पन्न परिस्थितिमें वैयक्तिक एवं सामूहिक रूप से प्रतिक्रिया को जन्म देता है। कुछ अनुशासन नियमों एवं कानूनों द्वारा आरोपित और कुछ स्वयं द्वारा आरोपति होता है। अनुशासन को बनाये रखने की दृष्टि से नेता द्वारा किये जाने वाले अनुरक्षण और अनुमोदन दोनों सुसंगत होने चाहिए।
12. **उच्च समूह मनोबल का विकास-** नेता निरन्तर अपने समूह के सदयों का मनोबल ऊंचा बनाये रखता है, क्योंकि मनोबल बढ़ने के साथ लक्ष्य प्राप्ति की दिशा में किये जाने वाले प्रयासों में प्रबलता आती है और मनोबल के गिरने के साथ यह प्रबलता क्षीण हो जाती है।

जनतांत्रिक नेता के कार्य

1. **समस्याओं की ओर ध्यान देना-** नेता को चाहिए कि वह कर्मचारी की समस्याओं पर ध्यान दे, इससे कर्मचारी में निराशा की स्थिति पैदा नहीं होती। यदि उनकी समस्याओं को नजरअन्दाज किया जाता है या उन्हें दबाने का प्रयास किया जाता है तो कर्मचारी पर इसका विपरीत प्रभाव पड़ता है। इसलिए उनकी समस्याओं पर उचित विचार-विमर्श करना चाहिए।

2. **सामूहिक बैठक** - नेता को कर्मचारियों के साथ में सामूहिक बैठक का आयोजन करना चाहिए। जिसमें कर्मचारियों के विचारों को ध्यानपूर्वक सुनना चाहिए तथा अपने सुझाव देने चाहिए। कर्मचारियों को सामूहिक कार्य करने की प्रेरणा देनी चाहिए। समूह में बैठकर कर्मचारियों की समस्याओं पर विचार-विमर्श का आदान-प्रदान करना चाहिए।
3. **निश्चित उद्देश्य की जानकारी देना** - कर्मचारियों को उनके समूह के उद्देश्य की भलीभांति जानकारी देनी चाहिए। साथ में यह भी आवश्यक है कि उद्देश्य तक पहुंचने वाले साधनों में किसे, किस तरह अपनाया जाय आदि कार्य जन तांत्रिक नेता को करने चाहिए। इससे कर्मचारी को लक्ष्य प्राप्ति के लिए उचित कार्यों की जानकारी हो जाती है।
4. **कार्यक्षमता के मापदण्ड निश्चित करना** - जनतांत्रिक नेता को चाहिए कि वह कर्मचारियों की कार्यक्षमता के मापदण्ड निश्चित कर दे और उससे परिचित करा दे।
5. **उचित निर्णय** - नेता को चाहिए कि वह उचित निर्णय ले और कर्मचारियों को भी वे निर्णय मान्य हों। कर्मचारी वर्ग यदि निर्णयों में शंका व्यक्त करे तो उसे यह भी बताना चाहिए कि वे अपनी शंका का समाधान सामूहिक बैठक में कर सकते हैं।
6. **प्रेरणा देना** - कर्मचारी को इस बात का आभास करना चाहिए कि उसकी कठिन मेहनत, ईमानदारी आदि से उत्पादन पर विशेष प्रभाव पड़ता है। इससे संस्था की प्रगति होती है। जिसमें कर्मचारियों की ही प्रगति है। इस प्रगति के लिए कर्मचारियों को विशेष पारितोषिक, आर्थिक लाभांश, पदोन्नति आदि दिए जाने की चर्चा करना, जनतांत्रिक नेता का कार्य है। इससे कर्मचारी को एक प्रकार की राहत मिलती है, वह कार्य के प्रति उत्साहित होता है।

4.3.8. सारांश

प्रत्येक समूह के लिए नेतृत्व की आवश्यकता होती है। चाहे वह राजनैतिक हो या सामाजिक, धार्मिक हो या औद्योगिक। कोई भी समूह बिना नेतृत्व के आस्तित्वहीन होता है। औद्योगिक क्षेत्र में मालिक या कर्मचारी ही नेता का चयन करते है। होना यह चाहिए कि मालिक और कर्मचारी दोनों मिलकर नेता का चुनाव करें। इस प्रकार की आदर्श चयन प्रणाली के द्वारा मालिक और कर्मचारी के बीच के छोटे-छोटे झगड़ों को रोका जा सकता है। इससे समस्याओं का समाधान भी जल्दी हो सकता है। मालिकों तथा प्रबंधकों द्वारा चुना व्यक्ति अधिक स्वामि-भक्ति रखता है और कर्मचारियों के हितों को उपेक्षित कर सकता है। इसके विपरीत कर्मचारियों द्वारा चुना व्यक्ति कर्मचारियों के प्रति उत्तरदायी होता है। इस प्रकार नीति संघर्ष बढ़ने लगता है। इसलिए प्रभावशाली नेतृत्व के लिए आवश्यक है कि मालिक और कर्मचारी दोनों मिलकर योग्य, अनुभवी और व्यवहार कुशल व्यक्ति को नेता चुनें। नेतृत्व को तीन स्तर पर तीन वर्गों में बांटा गया है-

(1) उच्चतम स्तर का प्रबंध (Top management),

(2) मध्यम स्तर का प्रबंध (Middle management),

(3) सम्मुख व्यक्ति का प्रबंध (Front line management)।

प्रथम स्तर के प्रबंध में उच्च श्रेणी के बिग बॉस (Big Boss), मध्यम स्तर में केवल बॉस (Boss) तथा तीसरी श्रेणी में फोरमैन या सुपरवाइजर आते है। ये तीनों प्रकार के नेता भिन्न-भिन्न स्तरों पर कार्य करते है। इनके उत्तरदायित्व व कर्त्तव्य भी भिन्न होते है। नेता को अपने पद पर बने रहने के लिए आवश्यक होता है कि वह अपने समूह के प्रत्येक पक्ष पर संबंध बनाए रखने में समर्थ हो। इसलिए सुचारू कार्य के लिए यह आवश्यक होता है कि नेता अपने समूह के कर्मचारियों से हमेशा निकट के संबंध बनाए रखें, इससे नेता और कर्मचारियों के बीच तनाव की स्थिति नहीं आएगी और न ही कोई अन्य समस्याएं उत्पादन को प्रभावित करेंगी।

4.3.9. स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. नेतृत्त्व के अर्थ को समझाइए?
2. नेतृत्त्व विशेषताओं का वर्णन कीजिये?
3. नेता के विभिन्नकार्यों का वर्णन करें?
4. नेतृत्त्व के उद्भव को समझाईये?
5. समूह की संरचना एवं उसके आवश्यक तत्वों का वर्णन कीजिये?
6. नेतृत्त्व की प्रकृति को समझाईये?
7. नेतृत्त्व के नियमों की उदहारण सहित व्याख्या करे?

4.3.10. शब्दावली : नेतृत्त्व, नेता,

4.3.11. संदर्भ ग्रंथ सूची :

- बैरन एंड बैरनी(2000). सोशल साइकोलॉजी. पियर्सन एजुकेशन.एनडी सिंह, ए.के.(2008). समाज मनोविज्ञान की रुपरेखा. मोतीलाल बनारसीदास पब्लिकेशन.एनडी.
- जैकोन, जे.एम.(1993). सोशल साइकोलॉजी, पास्ट एंड प्रेजेंट. हिल्सडेल,एनजे सेमिन,जी. एंड फिडलर, के.(1996). एप्लाइड सोशल साइकोलॉज.सीए: सेज स्पेंसर, एच.(1841).द स्टडी ऑफ़ सोशियोलॉजी.डी.ए. अप्लेटोन.एनवाई.
- रोनाल्ड, एच.(1994). लीडरशिप विदाउट इजी अंसरस. हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस. कैम्ब्रिज

इकाई- 4 नेतृत्त्व के प्रकार एवं सिद्धांत

इकाई की रूपरेखा

4.4.0. उद्देश्य

4.4.1. प्रस्तावना

4.4.2. नेतृत्त्व के प्रकार

4.4.3. नेतृत्त्व के सिद्धांत

- **4.4.3.1. विशेषता-सिद्धांत-**
- **4.4.3.2. व्यवहार और शैली सिद्धांत**
- **4.4.3.3. परिस्थितिवश और आकस्मिकता सिद्धांत**
- **4.4.3.4. हेर्सेय-बलानचार्ड स्थितिजन्य सिद्धांत**
- **4.4.3.5. कार्य सिद्धांत**
- **4.4.3.6. कार्यवाही और रूपांतरण सिद्धांत**
- **4.4.3.7. संगठनों में नेतृत्व**

4.4.4. सारांश

4.4.5. स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

4.4.6. शब्दावली

4.4.7. संदर्भ ग्रंथ सूची

4.4.0. उद्देश्य

- नेतृत्त्व के प्रकारों की समुचित व्याख्या समझ सकेंगे.
- नेतृत्त्व के विभिन्न सिद्धांतों से परिचित हो सकेंगे.
- नेतृत्त्व सम्बंधित विभिन्न महत्तवपूर्ण शोधों को जान सकेंगे.

4.4.1. प्रस्तावना-

प्रायः प्रत्यक्ष रूप सभी शक्तियां के नेता के हाथों में केंद्रित होती हैं, वह समूह के लिए उपयोगी एवं उचित लक्ष्यों का चयन करते हैं और उन्हें प्राप्त करने के तरीके चुनते हैं। समूह के सदस्यों के बीच कम से कम, उन्हें नेता द्वारा भी नियंत्रित किया जाता है नियंत्रित करने के लिए मुख्य हथियार सजा, कठोरता और डर आदि का प्रयोग नेता द्वारा किया जाता है। नेतृत्त्व की कुछ शैलियाँ समय बचाती हैं, लेकिन उनमें निष्कर्षों की पहल को नजरंदाज किया जाता है। नेता अपने समूह के सदस्यों का सम्मान करते हैं। नेतृत्त्व का आधार आदमी की विशिष्टता में विश्वास है. नेता अपने अनुयायियों का समर्थन करते हैं अक्सर, नेता का व्यक्तित्व इस प्रक्रिया में एक माध्यमिक भूमिका निभाता है।

4.4.2. नेतृत्व के प्रकार-

शक्ति के उपयोग, अधीनस्थों से व्यवहार तथा नेतृत्व शैली के आधारों पर नेतृत्व के अनेक प्रकार विद्वानों ने सुझाए है। वस्तुत: ओहियो विश्वविद्यालय का वर्गीकरण अधिक मान्य है।

जिसने अनुसंधान के बाद 5 प्रकार के नेता बताए:

1. **नौकरशाह-** जो वरिष्ठ अधिकारियों को खुश रखता है, तथा अधीनस्थों को कार्य पर लगाये रखता है। सरकारी प्रशासन विशेषकर विकासशील देशों के प्रशासन में यह मुख्यतः पाया जाता है। यह व्यक्तिवादी नेता है जो औपचारिक प्राधिकार के बल पर नेता होता है। कानून, नियम-प्रक्रिया की अधिक परवाह करता है। ऐसे नेता के प्रति अधीनस्थों में सम्मान मात्र उसके प्राधिकार के कारण होता है अन्यथा पीठ पीछे वे उसकी बुराई करते है और अवसर मिलने पर अवज्ञा भी कर देते हैं।
2. **अधिनायक-** जो दण्ड या दबाव (प्राधिकार) के बल पर लक्ष्य प्राप्ति पर विश्वास रखता है।
3. **कुटनीतिज्ञ-** यह अवसरवादी और शोषणवादी प्रकार का नेता है। विदेश मंत्रालय, प्रतिनिधि मण्डल आदि में इनकी जरूरत महसूस होती है। लेकिन ये विकास प्रशासन के सवर्था प्रतिकूल माने जाते है, जनता से जुड़ना इन्हें पसंद नहीं होता और अधीनस्थों पर ये विश्वास नहीं करते।
4. **विशेषज्ञ-** यह अपने ज्ञान के आधार पर अधीनस्थों का विश्वासपात्र होता है लेकिन अपने ज्ञान तक सीमित दृष्टिकोण रखता है। बढ़ते विशेषीकरण ने इसके महत्व को प्रशासन में बढ़ाया है। अधीनस्थों से सहयोग करने वाला और अधीनस्थों में लोकप्रिय ''विशेषज्ञ नेता'' जब परिवर्तन की बात करता है तो अधीनस्थ साथ नहीं देते।
5. **सहभागी -** इसे अधीनस्थों के साथ सम्बन्ध बनाना अच्छा लगता हैं।

अन्य प्रकार

हेराल्ड गार्टनर ने नेता के तीन प्रकार बताए- अधिनायकवादी, करिश्मायी और प्रजातांत्रिक। उसने भी प्रजातांत्रिक नेता को सबसे श्रेष्ठ बताया जो अधीनस्थों से चर्चा उपरांत कोई निर्णय लेता है।

फालेट ने नेतृत्व के तीन प्रकार बताये:

1. पद का नेतृत्व- इसमें नेता के पास औपचारिक प्राधिकार मात्र होता है।
2. व्यक्तित्व का नेतृत्व- इसमें नेता के पास शक्तिशाली व्यैक्तिक गुण होते है।
3. कार्य का नेतृत्व- इसमें नेता के पास औपचारिक प्राधिकार और व्यैक्तिक गुण दोनों होते है।

वस्तुतः परिस्थितियों के अनुरूप नेतृत्व का प्रकार उभरना चाहिये अन्यथा सामान्यकाल में सहभागी या प्रजातांत्रिक नेतृत्व तुलनात्मक दृष्टि से श्रेयस्कर हैं।

4.4.3. नेतृत्व के सिद्धांत-

समाज मनोवैज्ञानिकों ने नेतृत्व के निम्न सिद्धांत बताए हैं-

4.4.3.1.विशेषता-सिद्धांत-

विशेषता सिद्धांत व्यवहार के विभिन्न प्रकार और प्रभावशाली व्यक्तित्व से सम्बंधित प्रवृत्तियों का वर्णन करने की कोशिश करता है। यह शायद नेतृत्व का प्रथम शैक्षणिक सिद्धांत है। थॉमस कार्लाइल(1841), को हम विशेषता सिद्धांत के अग्रदूत कह सकते हैं। जिन लोगों ने अपनी प्रतिभा, कौशल और शारीरिक विशेषताओं का प्रयोग कर अधिकार प्राप्त किया है उनका वर्णन यहाँ किया गया है। रोनाल्ड हेफेटेज़(1994) ने उन्नीसवीं शताब्दी की परम्परा को दृष्टीपात करते हुए समाज के इतिहास को महान पुरुषों के इतिहास से जोड़ने की कोशिश की है।

विशेषता सिद्धांत के समर्थकों ने नेतृत्व की विशेषताओं को दृष्टिपात किया और कहा कि कुछ निश्चित विशेषताओं के पालन करने से प्रभावशाली नेतृत्व कायम हो सकता है।

एडमिन ए लोके(1991) ने विशेषता सिद्धांत के उदाहरण दिए। वे तर्क करते हैं कि "प्रमुख नेता में कुछ और गुण शामिल हैं: ड्राइव (एक व्यापक शब्द है, जिसमें उपलब्धि, प्रेरणा, महत्वाकांक्षा, शक्ति, तप और पहल भी शामिल है), नेतृत्व प्रेरणा (नेतृत्व करने की इच्छा तो रखते हैं पर अधिकार प्राप्त करना नहीं चाहते है); (क्योंकि यह अपने आप में एक अंत है), ईमानदारी, अखंडता, आत्मविश्वास (जो भावनात्मक स्थायित्व के साथ आता है), संज्ञानात्मक क्षमता और व्यापार की जानकारी से जुड़ा है। उनके शोध के अनुसार, "करिश्मा, रचनात्मकता और नम्यता के लिए कम स्पष्ट सबूत है".

विशेषता-सिद्धांत की आलोचना-

हालांकि विशेषता सिद्धांत के लिए एक सहज ज्ञान युक्त अपील की गयी है, इन सिद्धांतों को साबित करने में अनेक कठिनाईयां उत्पन्न हो सकती है और ये विपक्षियों को बार बार इस की चुनौती देते हैं।

विशेषता सिद्धांत के सबसे "मजबूत" संस्करण के अनुसार, "नेतृत्व विशेषताएँ " सहज हैं और कुछ लोग नेतृत्व विशेषताओं से युक्त होकर अपनी मनोवैज्ञानिक विशेषताओं से "जन्मतः नेता' होते हैं। इस सिद्धांत के अध्ययन से हम बता सकते हैं कि नेतृत्व विकास करने के साथ-साथ नेतृत्व गुणों को मापता है, सक्षम नेताओं को अक्षम नेताओं के बीच फर्क को पहचानता है और फिर सक्षम लोगों को प्रशिक्षण देता है।

4.4.3.2. व्यवहार और शैली सिद्धांत-

विशेषता दृष्टिकोण की आलोचना के जवाब में, सिद्धांतकारों ने नेतृत्व को व्यवहारों का एक समूह कहा है, 'सफल नेताओं' के व्यवहार का अनुसंधान करते हुए, उनकी व्यवहार कुशलता और उनके नेतृत्व की व्यापक शैली को पहचानना हैं।

डेविड मंक्लील्लैंड मरावड़ी ने नेतृत्व प्रतिभा को सिद्धांतों के एक समूह के रूप में देखा है न कि एक प्रेरक रूप में उन्होंने कहा कि सफल नेताओं को अधिकार की आवश्यकता हो सकती है, संबद्धता कम मात्रा में और उच्च मात्रा में गतिविधि निषेध (कुछ इसे आत्म नियंत्रण भी कहते हैं) की आवश्यकता हो सकती हैं।

कर्ट लेविन, रोनाल्ड लिपित्त और राल्फ व्हाइट ने 1939 में नेतृत्व शैली और नेतृत्व प्रदर्शन के प्रभाव पर थोडा बहुत काम किया था। शोधकर्ताओं ने ग्यारह वर्षीय लड़कों के समूह पर विभिन्न प्रकार के कार्य क्षेत्रों में उनके प्रदर्शन का मूल्यांकन किया। प्रत्येक समूह में, नेता का प्रभाव, उनके निर्णय, उनकी

प्रशंसा और आलोचना, समूह कार्यों के प्रबंधन(प्रबंधन परियोजना) में तीन शैलियों को देखा गया है :(1) सत्तावादी (2) लोकतांत्रिक (3) अहस्तक्षेप.

सत्तावादिता में नेता हमेशा निर्णय अकेले लेते हैं, उसके आदेशों का सख्त अनुपालन करने की मांग करते हैं और उठाये गए प्रत्येक कदम के लिए आदेश देते हैं ; भविष्य के कदम एक बड़े पैमाने पर अनिश्चित थे। जरूरी नहीं है नेता हर काम में भागीदार बने, पर वे प्रायः काम करने में अलग होते है और सामान्यतः व्यक्तिगत प्रशंसा और काम के लिए आलोचना भी प्रदान करते हैं।

लोकतांत्रिक कार्य को सामूहिक निर्णय प्रक्रिया कह कर नेताओं द्वारा सहायता प्रदान की गयी विशेषता कहा गया है। काम ख़तम करने से पहले, नेता से, सामूहिक चर्चाओं से, तकनीकी सलाह के परिप्रेक्ष्य से लाभ प्राप्त कर सकते हैं। सदस्य अपनी पसंद के अनुसार सामूहिक रूप से परिश्रम-विभाजन का फैसला ले सकते थे। इस स्थिति में प्रशंसा और आलोचना वस्तुनिष्ठ हैं और वास्तविक रूप से काम किये बिना, उद्देश्य की पूर्ति किसी भी सदस्य द्वारा होती हैं। अहस्ताक्षेपवादिता ने बिना नेता के भागीदारी के सदस्यों को सामूहिक नीति निर्धारण में आजादी दे दी है। नेता श्रम विभाजन में भाग नहीं लेते हैं, वे जब तक कहा नहीं जाता तब तक काम में भाग नहीं लेते और बहुत कम स्तुति करते हैं।इसका परिणाम यह हुआ कि लोकतांत्रिक शैली को सबसे ज्यादा पसंद किया गया।

प्रबंधकीय ग्रिड नमूना भी व्यवहार सिद्धांत पर आधारित है। इस नमूने को रॉबर्ट ब्लेक और जेन मौतोन ने 1964 में पांच अलग नेतृत्व शैलियों के सुझाव अनुसार बनाया है, यह लोगों के लिए नेताओं के प्रति जो व्याकुलता है और लक्ष्य प्राप्ति के लिए उनकी व्याकुलता है उस के आधार पर बनाई गयी थी।

4.4.3.3. परिस्थितिवश और आकस्मिकता सिद्धांत-

स्थितिजन्य सिद्धांत भी नेतृत्व के लक्षण सिद्धांत की एक प्रतिक्रिया के रूप में दिखाई देता है। जैसा कि कार्लाईल ने सुझाव दिया, सामाजिक वैज्ञानिकों का तर्क था कि इतिहास महान पुरुषों के हस्तक्षेप के परिणाम से भी अधिक था।हरबर्ट स्पेन्सर (1884) का कहना था कि व्यक्ति समय की उपज है। यह सिद्धांत बताती है कि विभिन्न परिस्थितियों में विभिन्न विशेषताएँ दिखाई देतीं हैं। सिद्धांतों के इस समूह से, किसी भी नेता की कोई एक इष्टतम मनोवैज्ञानिक रूपरेखा नहीं होती.इस सिद्धांत के अनुसार एक व्यक्ति वास्तव में जब एक नेता के रूप में व्यवहार करता है, उसका एक सबसे बडा कारण उस स्थिति पर निर्भर करता है जिसमें वह कार्य करता है।"

कुछ सिद्धांतकारों ने विशेषता और स्थितिजन्य दृष्टिकोण का विश्लेषण करना शुरू किया। लेविन एट. अल. के अनुसंधान के आधार पर यह कहा जा सकता है कि शिक्षाविदों ने नेतृत्व विधान के वर्णनात्मक ढंग को सामान्य बनाने को कोशिश की, उन्होंने उनकी तीन नेतृत्व शैलियां बताईं और किस सन्दर्भ में वे कैसे काम करते है उसकी पहचान भी की. इस सत्तावादी नेतृत्व शैली, ने उदाहरण के लिए, संकट के समय तो मंजूरी दी, पर दैनंदिन प्रबंधन में अपने अनुयायियों का मन और दिल नहीं जीत पाये. लोकतांत्रिक नेतृत्व शैली को आवश्यक परिस्थिति में और अधिक आम सहमति प्राप्त है। अहस्तक्षेप सिद्धांत को उसे प्राप्त स्वतन्त्रता के कारण सराहा जाता है। क्योंकि इसमें नेता भाग नहीं लेता इसीलिये उसे दीर्घ कालीन और संगठानात्मक समस्याओं के समय 'विफल' कहा जाता है। इस कारण सिद्धान्तकारों ने

नेतृत्व शैली को परिस्थितिवश आकस्मिक कहा है और इसे कभी-कभी आकस्मिक सिद्धांत भी कहा है।आजकल चार मुख्य आकस्मिकता नेतृत्व सिद्धांत दिखाई देते हैं: फीड्लर आकस्मिकता, वरूम-येत्तोन निर्णय पथ-लक्ष्य सिद्धांत और

4.4.3.4. हेर्सेय-बलानचार्ड स्थितिजन्य सिद्धांत.

इस फीड्लर आकस्मिकता नमूना में नेता की प्रभावशीलता को मुख्य माना जाता है, इसी कारण फ्रेड फीद्लर ने इसे परिस्थितिवश आकस्मिक सिद्धांत कहा. यह नेतृत्व शैली और स्थितिजन्य अनुकूल बातचीत के परिणाम (बाद में इसे "स्थिति नियंत्रण"कहा जाता है) से उत्पन्न होता है। यह सिद्धांत हमें दो प्रकार के नेताओं के बारे में बताता है : वे जो लोगों के साथ अच्छे सम्बन्ध विकसित कर कार्य पूरा करते हैं, (रिश्ता उन्मुख) और दूसरे वे जो कार्य को पूरा करने को ही अपना मुख्य कर्तव्य समझते है (कार्य उन्मुख) .फीड्लर के अनुसार, कोई आदर्श नेता नहीं हैं। कार्य उन्मुख नेता और रिश्ता उन्मुख नेता दोनों भी प्रभावी हो सकते हैं यदि उनका नेतृत्व स्थितिवश हो. जब वहाँ एक अच्छे नेता-सदस्यीय रिश्ता है, एक उच्च संरचित कार्य है और उच्च नेता की स्थिति में अधिकार है, तो इस स्थिति को एक "अनुकूल स्थिति" माना जाता है। फीड्लर का मानना था कि कार्य उन्मुख नेता अनुकूल और प्रतिकूल परिस्थितियों में प्रभावी होते है। जबकि रिश्ता उन्मुख नेता मध्यवर्ती परिस्थितियों में सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन करते हैं।

विक्टर वरूम, ने फिलिप येत्तोन (1973)और बाद में आर्थर जागो (1988), के सहयोग से नेतृत्व स्थितियों, का वर्णन करने के लिए एक वर्गीकरण किया। यह मानक निर्णय सिद्वांत में प्रयोग किया गया, जहाँ वह नेतृत्व शैली की स्थितियों के कारकों से जुडा और जो यह बताता था कि कौन सा प्रस्ताव किस स्थिति में उपयोगी होता है। यह प्रस्ताव निराला था क्योंकि यह प्रबंधक के उन विचारों से सहमत था जो विभिन्न वर्गों, उनके विचारों और स्थितियों पर निर्भर था। बाद में यही सिद्धांत आपात स्थिति सिद्धांत कहा गया।

पथ-लक्ष्य सिद्धांतका नेतृत्व रॉबर्ट हाउस (1971) द्वारा विकसित किया गया। यह सिद्धांत विक्टर वरूम कीप्रत्याशा सिद्धांत पर आधारित था। और समर्थन ये सभी पर्यावरण के कारक और अनुयायी विशेषताओं के लिए प्रासंगिक हैं। इसफीड्लर आकस्मिकता सिद्धांत में, पथ-लक्ष्य सिद्धांत के विपरीत चार नेतृत्व व्यवहार तरल होते हैं, नेता स्थिति और आवश्यकतानुसार किसी भी सिद्धांत का पालन कर सकते हैं। पथ-लक्ष्य सिद्धांत कोसापेक्ष सिद्धांत और व्यावहारिक नेतृत्व सिद्धांत दोनों कहेंगे क्योंकि यह परिस्थितियों पर निर्भर करता है और नेता और अनुयायियों के बीच परस्पर व्यवहार पर बल देता है।

हेर्सेय और बलानचार्ड द्वारा प्रस्तावित परिस्थिति नेतृत्व नमूनेने चार नेतृत्व शैलियों और चार अनुयायी-विकास स्तरों को प्रस्तावित किया है। प्रभावशीलता के लिए, नमूने की निश्चितता, नेतृत्व शैली अनुयायीता-विकास को पूरी तरह मेल खाना चाहिए। इस नमूने में, नेतृत्व का व्यवहार केवल नेता के लक्षण ही नहीं लेकिन अनुयायियों की विशेषताएँ बन जाती हैं।

4.4.3.5. कार्य सिद्धांत –

हकक्मन और वाल्टन, (1986) तथा मेक्ग्राथ (1962) ने इसे एक विशेष और उपयोगी सिद्धांत माना है, जो विशिष्ट नेता व्यवहारों को संबोधित करने के लिए उपयोगी है जो संगठनात्मक या इकाई प्रभावशीलता में योगदान देता है। यह सिद्धांत यह तर्क देता है कि नेता का मुख्य काम है कि समूह की आवश्यकता के लिए जो भी जरूरी है उसका ध्यान रखना, इसलिए एक नेता ने समूह की प्रभावशीलता और एकता के लिए हमेशा अच्छा काम किया है।

नेता संगठन की प्रभावशीलता को बढाने के लिए पाँच व्यापक कार्य करता है। इन कार्यों में शामिल हैं: (1) पर्यावरण निगरानी, (2) आधीनस्थ गतिविधियों का आयोजन, (3) आधीनास्थों का शिक्षण और प्रशिक्षण, (4) दूसरों को प्रेरित करना और (5) समूह कार्यों में सक्रिय रूप से भाग लेना.

विभिन्न नेतृत्व व्यवहार इन कार्यों को सुविधाजनक रूप से करने की उम्मीद रखते हैं। प्रारंभिक काम में नेता ने व्यवहार की पहचान, अधीनस्थ कर्मचारियों के व्यवहार को दो व्यापक श्रेणियों के संदर्भ में विचार करने के लिए और संरचना की शुरुआत के रूप में माना है। इसमें विचार व्यवहार प्रभावी संबंधों को बढ़ावा देना भी शामिल हैं। इस तरह के व्यवहार के उदाहरण एक अधीनस्थ या दूसरों के प्रति एक सहायक तरीके से अभिनय के लिए चिंता का प्रदर्शन होता है। शुरुआती संरचना में नेता की कार्रवाई और विशेष रूप से कार्य सिद्धि केंद्रित है। इसमें भुमिका स्पष्टीकरण, प्रदर्शन के मानकों को निर्धारित करना और उन मानकों के प्रति जवाबदेही शामिल हो सकते हैं।

4.4.3.6. कार्यवाही और रूपांतरण सिद्धांत-

कार्यवाही नेता (बर्न्स,1978)के पास इतने अधिकार होते हैं कि वह अपने दल के प्रदर्शन या अप्रदर्शन के लिए कुछ विशेष कार्य कर सकता है और इनाम या सज़ा दे सकता है। प्रबंधक को यह अवसर देता है कि वह अपने समूह का नेतृत्व करे और उसका समूह उसके नेतृत्व का पालन करने को सहमत होता है ताकि एक निर्धारित लक्ष्य पूरा हो सके और उसके बदले में उनको कुछ मिले.नेता को अधिकार इसलिए दिया जाता है कि वह मूल्यांकन कर सके, अपने अधीनस्थ कर्मचारियों से सही कार्य करवाते हुए उनको प्रशिक्षण दें, ऐसे समय में जब कि उत्पादकता वांछित स्तर से कम है और इनाम प्रभावशीलता परिणाम मिलने पर दिया जाता हो। रूपांतरण नेता (बर्न्स, 2008)अपने दल को प्रभावी और कुशल होने को प्रेरित करता है। लक्ष्य प्राप्त करने के लिए संचार ही आधार है जब तक समूह अंतिम इच्छित परिणाम या लक्ष्य प्राप्ति नहीं कर लेता.यह नेता ज्यादातर प्रत्यक्ष दिखाई देता है और काम करवाने के लिए आदेशों की श्रृंखला का उपयोग करता है। रूपांतरण नेता बड़ी वस्तुओं पर ध्यान केन्द्रित करते हैं, जो उन लोगों की देखभाल के लिए है जो उनके घेरे में रहते हैं। नेता हमेशा उपायों के लिए देखते हैं जो संगठन की सहायता से कंपनी के लक्ष्य को प्राप्त कर सके।

4.4.3.7. संगठनों में नेतृत्व

एक संगठन जो साधन के रूप में स्थापित है या परिभाषित उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए गठित है तो उसे औपचारिक संगठन कहा जा सकता है। इसका नमूना इस बात को निर्दिषित करता है कि किस तरह एक संगठन में लक्ष्यों को वर्गीकृत और निर्दिष्ट करते हैं जो संगठन के उपविभागों में परिलक्षित होता है। प्रभागों, विभागों, वर्गों, स्थिति, रोजगार और कार्य, काम संरचना बनाते हैं। इस प्रकार, औपचारिक संगठन को ग्राहकों या अपने सदस्यों के साथ अव्यक्तिगत रूप से पेश आना चाहिए. वेबर की परिभाषा के अनुसार, प्रवेश और बाद की प्रगति योग्यता या वरिष्ठता के द्वारा होती है। प्रत्येक कर्मचारी एक वेतन प्राप्त करता है और कार्यकाल का एक डिग्री हासिल करता है जो वरिष्ठों या शक्तिशाली ग्राहकों का मनमाने प्रभाव से निगरानी करता है। पदानुक्रम में जैसे उसकी स्थिति होगी वैसी ही संगठन के निम्न स्तर के कार्य को सम्पन्न करने में उसकी अनुमानित विशेषज्ञता समस्याओं को सुलझाते समय उत्पन्न हो सकती है। यह एक नौकरशाही संरचना है जो संगठन में प्रशासनिक प्रभागों के प्रमुखों की नियुक्ति के लिए आधार होता है और अपने प्राधिकारों से जुडा रहता है. एक इकाई के नियत प्रशासनिक अध्यक्ष या प्रमुख के विपरीत एक नेता औपचारिक संगठन के अधीन स्थित अनौपचारिक संगठन से उभर कर आता हैं। अनौपचारिक संगठन व्यक्तिगत सदस्यता के निजी उद्देश्यऔरलक्ष्य को व्यक्त करता है। उनके उद्देश्य और लक्ष्य औपचारिक संगठन के साथ मेल खा भी सकते हैं या नहीं भी खा सकते हैं। अनौपचारिक संगठन एक विकसित सामाजिक ढांचों का प्रतिनिधित्व करता है जो प्रायः मानव जीवन में अचानक उद्भूत होने वाले समूहों और संगठनों के समान उद्भव होते हैं और अपने आप में ही समाप्त हो जाते हैं।

प्रागैतिहासिक काल में, आदमी अपनी व्यक्तिगत सुरक्षा, रखरखाव, सुरक्षा और जीवन निर्वाह करने में व्यस्त था। अब आदमी अपने जीवन का एक बड़ा हिस्सा संगठनों के लिए काम करने में बिताता है। उसको सुरक्षा, संरक्षण, अनुरक्षण प्रदान करने वाले एक समुदाय को पहचानने की उसकी चाह और अपनेपन की भावना प्रागैतिहासिक काल से अपरिवर्तित ही बनी हुई है। यह जरूरत अनौपचारिक संगठन और इसकी, आकस्मिक या अनधिकृत, नेताओं के द्वारा पूरी होती है. अनौपचारिक संगठन के ढांचे के भीतर से ही नेता उभरते हैं। उनके व्यक्तिगत गुण, स्थिति की मांग, या इन दोनों का संयोजन और अन्य पहलू अनुयायियों को आकर्षित करते हैं जो एक या कई उपरिशायी संरचनाओं में उनके नेतृत्व को स्वीकार करते हैं। एक प्रधान या अध्यक्ष द्वारा नियुक्त होकर एक आकस्मिक नेता अपने अधिकारों के बजाय, प्रभाव और शक्ति को संभालता है। प्रभाव एक व्यक्ति की क्षमता है जो दूसरों के सहयोग, अनुनय और पुरस्कार पर नियंत्रण के माध्यम से हासिल किया जाता है। अधिकार प्रभाव का एक मजबूत विधान है क्योंकि यह एक व्यक्ति की क्षमता, उसके कार्यों से सज़ा को नियंत्रण करता है।

नेता एक ऐसा आदमी है जो एक विशिष्ट परिणाम के प्रति लोगों के एक समूह को प्रभावित करता है। यह अधिकार या औपचारिक अधिकार पर निर्भर नहीं है। (एलिवोस, नेताओं के रूपांतरण, बेन्निस और नेतृत्व की उपस्थिति, हल्पेर्ण और लुबर). नेताओं की पहचान, अन्य लोगों की देखभाल के लिए उनकी क्षमता, स्पष्ट संचार और एक प्रतिबद्धता से होती है। एक व्यक्ति जो एक प्रबंधकीय स्थिति के

लिए नियुक्त किया जाता है उसके पास अधिकार होता है कि वह आज्ञा दे सकें और वह अपने अधिकार की स्थिति को लागू करता है। उसके अधिकारों से मेल खाती हुई उसकी पर्याप्त व्यक्तिगत विशेषताएँ होनी चाहिए, क्योंकि अधिकार से ही उसमे सक्रियता होती है। पर्याप्त व्यक्तिगत योग्यता के अभाव में एक प्रबंधक जो एक आपात नेता द्वारा जिस भूमिका को चुनौती दे सकता है उस संगठन में उसकी भूमिका को उसके कल्पित सरदार से कम सामना किया होता है। बहरहाल, पद का अधिकार औपचारिक प्रतिबंधों का समर्थन करता है। ऐसा लगता है कि जो कोई भी व्यक्तिगत पद या अधिकार संभालता है, वह न्यायसंगत रूप से केवल पदानुक्रम में औपचारिक स्थिति, अनुरूप प्राधिकारी रूप से, प्राप्त करता है। नेतृत्व की परिभाषा दूसरे लोगों की इच्छानुसार चलाने की क्षमता है। हर संगठन को हर स्तर पर नेताओं की जरूरत है।

संगठनात्मक नेतृत्व के रूप की व्याख्या के लिए संगठनात्मक मनोवैज्ञानिकों तथा संगठनात्मक विशेषज्ञों द्वारा प्रारंभ से ही कोशिश की जा रही है जिसका परिणाम यह हुआ है कि आज संगठनात्मक नेतृत्व के कई सिद्धांत उपलब्ध हैं. इन सिद्धांतों पर प्रकाश डालने के पहले कुछ ऐसे प्रमुख अध्ययनों पर यहां प्रकाश डालना उचित होगा जिनके स्रोत से आधुनिक सिद्धांतों का प्रादुर्भाव हुआ है. ऐसे अध्ययनों में निम्नांकित तीन तरह के अध्ययनों को संगठनात्मक मनोवैज्ञानिकों द्वारा अधिक महत्वपूर्ण बतलाया गया है.

(1) आयोवा नेतृत्व अध्ययन (The lova leadership studies)

(2) ओहियो स्टेट नेतृत्व अध्ययन(the Ohio state leadership studies)

(3)प्रारंभिक मिशिगन नेतृत्व अध्ययन(the early Michigan leadership studies)

(1) आयोवा नेतृत्व अध्ययन - आयोवा विश्वविद्यालय में कर्ट लेविन(Kurt Levin) के सामान्य दिशा निर्देश में लिपिड तथा वाइट(Lipid & White) ने 1930 वाले दशक में नेतृत्व से संबंधित महत्वपूर्ण अध्ययन किए. इन अध्ययनों में 10 साल के बच्चों ने विभिन्न तरह के कार्यो को विभिन्न तरह के नेतृत्व शैली अर्थात एकतंत्र शैली, प्रजातंत्र शैली तथा अधिशासी शैली के अंतर्गत किया. परिणाम में पाया गया कि इन तीन तरह के नेतृत्व शैलियों का बच्चों के समूह के उत्पादकता व्यवहार पर काफी सार्थक प्रभाव पड़ा. आयोवा विश्वविद्यालय में किए गए इन अध्ययनों का महत्व यह है कि इनके द्वारा प्रथम बार नेतृत्व के विश्लेषण करने में वैज्ञानिक विधियों को अपनाया गया और इसमें भी महत्वपूर्ण इस तथ्य को दिखलाया जाना था कि एक ही समूह या समान समूह द्वारा विभिन्न नेतृत्व शैली में कार्य करने पर उनके द्वारा विभिन्न तथा जटिल प्रतिक्रियाएं की जाती हैं.

(2) ओहियो स्टेट नेतृत्व अध्ययन - 1945 में ओहियो स्टेट विश्वविद्यालय के ब्यूरो ऑफ बिज़नेस रिसर्च में शोधकर्ताओं के अंतरानुशासनिक समूह द्वारा नेतृत्व पर गहन अध्ययन किया गया. इन लोगों द्वारा एक विशेष तरह का प्रश्नावली तैयार कर विभिन्न तरह के समूह एवं परिस्थितियों में नेतृत्व का विश्लेषण किया गया और नेतृत्व की दो विमाएं अर्थात मनन संरचना का आयाम तथा पहल संरचना का

आयाम सतत रूप से स्पष्टत: देखा गया. ओहियो स्टेट अध्ययन भविष्य में नेतृत्व के क्षेत्र में होने वाले अध्ययनों के लिए काफी महत्वपूर्ण साबित हुआ नेतृत्व के क्षेत्र में ओहियो स्टेट अध्ययन पहले ऐसे अध्ययन थे जिनमें नेतृत्व को मापने के कार्य तथा मानवीय पहलुओं पर बल डाला गया. इस द्विआयामी (two dimensional) दृष्टिकोण का वैज्ञानिक प्रबंधन आंदोलन के कार्य उन्मुखता तथा उस समय के लोकप्रिय आंदोलन जिसे मानवीय संबंध आंदोलन कहा जाता है, के बीच की दूरी कम हो गई. इसके बावजूद इन अध्ययनों का एक दुष्परिणाम यह निकला कि नेतृत्व व्यवहारोंके बारे में आंकड़ा संग्रहण करने की दिशा में प्रश्नावली के उपयोग करने में एक होड़ सी मच गई.

(3) आरंभिक मिशीगन नेतृत्व अध्ययन - मिशिगन विश्वविद्यालय के सर्वे रिसर्च सेंटर में शोधकर्ताओं द्वारा नेतृत्व व्यवहार पर ठीक उसी समय शोध किया जा रहा था जिस समय ओहियो स्टेट विश्वविद्यालय में किया जा रहा था. इस अध्ययन में 12 उच्च निम्न उत्पादकता वाले इकाइयों को चुना गया जिनमें से 25 विभागीय पर्यवेक्षकों तथा 419 लिपिकीय कार्यकर्ताओं का अनुदेशात्मक साक्षात्कार लिया गया. परिणाम में देखा गया कि उच्च उत्पादकता विभाग वाले पर्यवेक्षकों में कर्मचारी उन्मुख मनोवृति अधिक पाई गई इन लोगों में अपने कर्मचारियों के प्रति पर्याप्त श्रद्धा एवं स्नेह भी पाया गया. इनका पर्यवेक्षण शैली अधिक लचीला तथा खुला हुआ पाया गया. परंतु निम्न उत्पादकता वाले पर्यवेक्षकों में इनके विपरीत गुण पाए गए. उनका पर्यवेक्षण शैली भी काफी संकीर्ण था. इन अध्ययनों में यह भी देखा गया कि कार्यकर्ताओं के कार्य तुष्टि का संबंध उत्पादकता से नहीं था. इन आरंभिक मिशीगन अध्ययनों का परिणाम यह हुआ कि कर्मचारी उन्मुख पर्यवेक्षक नेतृत्व के मानव संबंध उपागम के लिए एक मानक बिंदु हो गया. इस मानक बिंदु को आदर्श मानते हुए विभिन्न उद्योगों, अस्पतालों तथा अन्य सरकारी संगठनों में बाद में काफी अध्ययन हुए.

4 - शीलगुण सिद्धांत - (Trait Theory)

नेतृत्व की व्याख्या करने के लिए सबसे प्रथम प्रयास शील गुण सिद्धांत द्वारा किया गया. इसे नेतृत्व का महान व्यक्ति सिद्धांत (Greatman Theory)भी कहा जाता है. इस सिद्धांत के अनुसार व्यक्ति में कुछ जन्मजात शील गुण होते हैं जो उन्हें एक प्रभावी नेता बनने में मदद करता है. इस सिद्धांत का मत है कि व्यक्ति में जन्म से ही कुछ ऐसे शील गुण मौजूद होते हैं जो उन्हें एक प्रभावी नेता बनाने में मदद करते हैं. यहां परिस्थिति जिसमें नेता को कार्य करना पड़ता है, उसे महत्वपूर्ण नहीं समझा जाता है. नेतृत्व के सिद्धांत की प्रबलता 1940 से 50 वाले दशक में सबसे अधिक है. विशेषज्ञों द्वारा आज की लड़कियांइस क्षेत्र में कई शोध करके नेता के शील गुणों की पहचान करने की कोशिश की गई है. एवं प्रयोगों का मुख्य संबंध व्यक्तित्व शील गुण, दैहिक शील गुण, क्षमता आदि से है. 1948 से किए गए शोधों की समीक्षा करने के बाद स्टॉगडील (Stogedeel, 1950) ने प्रभावी नेतृत्व के शील गुणों को निम्नांकित 6 भागों में बांटा है.

(1) दैहिक गुण - (physical characteristic) - कई प्रारंभिक शोधों में कुछ दैहिक गुणों जैसे उम्र, रंग रूप, ऊंचाई, भार आदि को नेता का प्रमुख गुण माना गया तथा इनका संबंध नेता की प्रभावशीलता से जोड़ने का प्रयास किया गया. कुछ लोगों का आज भी मत है कि एक उत्तम पर्यवेक्षक होने के लिए उसकी

लंबाई सामान्य से अधिक, जैसे 6 फिट या इससे ऊपर, शरीर भारी हो, आवाज में मोटापन एवं भारीपन हो तथा उसकी गुरु शारीरिक उर्जा स्तर अपने अधीनस्थओं से काफी अधिक हो. हालांकि इन दैहिक गुणों से नेतृत्व प्रभावशीलता मैं थोड़ी वृद्धि अवश्य होती है, परंतु सच्चाई यह है कि नेता की प्रभावशीलता के लिए अन्य परिस्थितिजन्य कारक भी है जो महत्वपूर्ण हो सकते हैं जिसकी चर्चा इन दैहिक गुणों में आवश्यक नहीं है.

(2) सामाजिक पृष्ठभूमि (social background) - पहले के कई शोधों में नेता के सामाजिक आर्थिक पृष्ठभूमि से संबद्ध कारकों, अर्थात शिक्षा, सामाजिक स्तर, गतिशीलता आदि का अध्ययन किया गया है. इन अध्ययनों का सामान्य निष्कर्ष हो रहा है -

(i) उच्च सामाजिक-आर्थिक स्तर से नेतृत्व-प्रभावशीलता में वृद्धि होती है.

(ii) 50 वर्ष पहले की तुलना में आज उद्योगों में अधिक लोग निम्न सामाजिक-आर्थिक स्तर में उच्चस्तरीय पदों पर आ जाते हैं.

(iii) पहले की तुलना में नेता अब अधिक शिक्षित होते हैं.

परंतु उस समय के कई शोध ऐसे भी हुए जिनमें नेतृत्व की प्रभावशीलता तथा सामाजिक पृष्ठभूमि के कारकों में कोई संगत संबंध नहीं पाया गया.

(3) बुद्धि (Intelligence)- कई अध्ययनों में नेतृत्व स्तर एवं बुद्धि के बीच संबंधों का अध्ययन किया गया और इससे यह स्पष्ट रूप से पाया गया कि उत्तम नेता में निर्णय करने की क्षमता, ज्ञान, भाषण प्रवाह आदि निश्चित रूप से होते हैं. हालांकि यह संबंध संगत अवश्य है, परंतु एक कमजोर संबंध है जो अपने आप यह बताता है कि इसके अलावा भी कुछ कारक हैं जो नेतृत्व-प्रभावशीलता के लिए उपयोगी हो सकते हैं.

(4) व्यक्तित्व (Personality)- व्यक्तित्व कारको से संबंध अध्ययनों के आधार पर बताया गया है कि प्रभावी नेता में कुछ विशेष व्यक्तित्व शील गुण जैसे सतर्कता, आत्मविश्वास, व्यक्तिगत अखंडता, आत्म-आश्वासन तथा प्रभुत्व आवश्यकता आदि का होना अनिवार्य है. कि हम आप सभी समूह तथा उद्योगों में पूर्णत: संगत नहीं पाया गया, फिर भी इससे इतना तो स्पष्ट है कि नेतृत्व के अध्ययन के किसी भी उपागम में व्यक्तित्व शील गुणों की उपेक्षा नहीं की जा सकती है. इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण समस्या यह है कि इन व्यक्तित्व शील गुणों को मापने का कोई वैध तरीका या साधन उपलब्ध नहीं है.

(5) कार्य से संबद्ध गुण (Task-related characteristics)- कार्य से संबद्ध गुणों का अध्ययन करने के लिए जो शोध किए गए हैं, आधार पर यह कहा जाता है कि नेता में उपलब्धि एवं उत्तरदायित्व से संबंधित उच्च आवश्यकता होती है तथा उसमें पहन सकती एवं उच्च स्तर के कार्य-उन्मुखता भी होती है. यह परिणाम तब स्पष्टत: यह भी बताता है कि नेता को सामान्यतः एक व्यक्ति होना चाहिए जिसमें उच्च अभिप्रेरणा, प्रणोद तथा कार्य-निष्पादन की आवश्यकता तीव्र होती है.

(6) सामाजिक विशेषताएं (Social characteristics)- सामाजिक विशेषताओं से संबद्ध अध्ययनों के आधार पर यह तथ्य देखने को मिलता है कि नेता विभिन्न तरह के क्रियाओं में सक्रिय रूप से भाग लेते हैं, कई तरह के लोगों के साथ अंतः क्रिया करते हैं तथा अन्य लोगों के साथ सहयोगी होते हैं. समूह

द्वारा उनके अंतर व्यक्ति कौशलों का जिक्र किया जाता है जिससे समूह में संगतता, विश्वास एवं मनोबल भी बढ़ता है.

बॉस (Boss, 1982) ने इधर हाल के कुछ वर्षों में नेतृत्व के शील गुण सिद्धांत में किए गए अध्ययनों की समीक्षा की है और वह इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि एक प्रभावी नेता के लिए जितने गुणों की आवश्यकता हो सकती है, उसे मोटे तौर पर निम्नांकित तीन भागों में सारणीकरण किया जा सकता है.

(1) व्यक्तित्व शील गुण (Personality Traits)- किसी उद्योग या अन्य संगठन में नेता को प्रभावी होने के लिए अन्य गुणों के अलावा कुछ खास-खास शील गुण जैसे समायोजन शीलता, प्रभुत्व, संतुलन एवं नियंत्रण, स्वतंत्रता, मौलिकता एवं सर्जनात्मकता, व्यक्तिगत अखंडता तथा आत्मविश्वास का होना आवश्यक है.

(2) क्षमताएं (Abilities)- नेता में कुछ खास- खास क्षमताओं, जैसे बुद्धि, निर्णय करने की क्षमता, ज्ञान एवं भाषण प्रवाह का होना अनिवार्य है. इन क्षमताओं के होने पर नेता को प्रभावी होने की उम्मीद अधिक होती है.

(3) सामाजिक कौशल (Social skills) - नेता को प्रभावी होने के लिए उसमें कुछ सामाजिक कौशल जैसे सहयोग प्राप्त करने का गुण, प्रशासनिक क्षमता, लोकप्रियता एवं प्रतिष्ठा, सामाजिकता तथा सामाजिक भागीदारी, आत्मविश्वास आदि का गुण होना अनिवार्य है.

आधुनिक अध्ययनों में नेतृत्व के इस शील गुण सिद्धांत को अधिक समर्थन नहीं मिला है. अध्ययनों से जो एक तथ्य सामने उभर कर आया है, वह यह है कि मात्र शील गुणों के आधार पर ही नेता की प्रभावशीलता का वर्णन नहीं किया जा सकता है. नेतृत्व - प्रभावशीलता में परिस्थिति जन्य कारकों की भूमिका की उपेक्षा नहीं की जा सकती है. अतः जरूरत ऐसे अध्ययन की है जिसके द्वारा कुछ ऐसे खास - खास शील गुणों की पहचान की जा सके जिसके द्वारा सभी नेतृत्व परिस्थितियों में नेता की प्रभावशीलताका वर्णन किया जा सके.

नोअम चोमस्की(Noam Chomsky) ने नेतृत्व की अवधारणा की आलोचना की और कहा कि यह लोगों को अपने अधीनस्थ आवश्यकताओं से अलग किसी और को शामिल करना है। जबकि नेतृत्व का परंपरागत दृष्टिकोण यह है कि लोग चाहते है कि 'उनको यह बताया जाए कि उन्हें क्या करना है। व्यक्ति को यह सवाल करना चाहिए कि वे क्यों कार्यों के अधीन हैं जो तर्कसंगत और वांछनीय है। जब 'नेता', 'मुझ पर विशवास कीजिए', 'विशवास रखिए' कहते हैं तो उसमें प्रमुख तत्व -तर्कशक्ति की कमी होती है। यदि तर्कशक्ति पर ज्यादा ध्यान नहीं दिया जाता है तो लोगों को 'नेता' का अनुसरण चुपचाप करना पड़ता है। नेतृत्व की अवधारणा की एक और चुनौती यह है कि यह दलों और संगठनों के 'अनुसरण की भावना' को बनाता है। कर्मचारिता की अवधारणा हालाँकि, एक नयी विकसित जिम्मेदारी है जो उसके कार्य क्षेत्र में उसके कौशल और नजरिये को उजागर करते हैं, जो सभी लोगों में आम होते हैं और नेतृत्व को एक अस्तित्व रूप में अलग रखता है।

4.4.4. सारांश-

नेतृत्त्व हमेशा से बहस का मुद्दा रहा है. उपरोक्त इकाई से हमें स्पष्ट होता है की नेतृत्त्व की जो सामान्य छवि हम दैनिक अख़बारों के माध्यम से बनाते हैं वास्तव में वह सच्चाई नहीं है. नेतृत्त्व के पीछे अनेक तकनीकी सिद्धांत कार्य करते हैं. नेतृत्त्व को किसी पार्टी विशेष में कार्य करने वाला व्यक्ति समझना उसके अर्थ को संकुचित करने जैसा है. वास्तव में किसी भी दल, समूह या परिवार में कुशल नेतृत्त्व की आवश्यकता होती है. अतः उपरोक्त इकाई में नेतृत्त्व के विभिन्न सिद्धांन्तों के माध्यम से आपके सोच पटल को और विस्तृत एवं व्यापक समझ प्राप्त होगी.

4.4.5. स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. नेतृत्त्व के विभिन्न प्रकारों को बिस्तार से समझाईये?
2. नेतृत्त्व के कार्यवाही रूपांतरण सिद्धांत का वर्णन कीजिये?
3. नेतृत्त्व के व्यवहार एवं शैली सिद्धांत का वर्णन करें?
4. नेतृत्त्व के कार्य सिद्धांत को व्याख्यायित कीजिये?
5. नेतृत्त्व के हेर्सेय-बलानचार्ड स्थितिजन्य सिद्धांत का समालोचनात्मक वर्णन करें?

4.4.6. शब्दावली : नेतृत्त्व, नेता,

4.4.7. संदर्भ ग्रंथ सूची :

- बैरन एंड बैरनी(2000). सोशल साइकोलॉजी. पियर्सन एजुकेशन.एनडी
- सिंह, ए.के.(2008). समाज मनोविज्ञान की रुपरेखा. मोतीलाल बनारसीदास पब्लिकेशन.एनडी.
- जैकोन, जे.एम.(1993). सोशल साइकोलॉजी, पास्ट एंड प्रेजेंट. हिल्सडेल,एनजे
- सेमिन,जी. एंड फिडलर, के.(1996). एप्लाइड सोशल साइकोलॉज.सीए: सेज
- स्पेंसर, एच.(1841).द स्टडी ऑफ़ सोशियोलॉजी.डी.ए. अप्लेटोन.एनवाई.
- रोनाल्ड, एच.(1994). लीडरशिप विदाउट इजी अंसरस. हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस. कैम्ब्रिज

नोट – इस कृति का कोई भी अंश विश्वविद्यालय से लिखित अनुमति लिए बिना पुन: प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

पाठ्यपुस्तक को यथासम्भव त्रुटिहीन रूप से प्रकाशित करने का प्रयास किया गया है। संयोगवश यदि इसमें कोई भी कमी या त्रुटि रह गई हो तो इसके लिए संपादक, संयोजक, प्रकाशक एवं मुद्रक का कोई दायित्व नहीं होगा। अवगत कराए जाने पर सुधार करने का प्रयास किया जाएगा।